

# वक्तृत्वकला के बीज

## चौथा भाग

---

### समन्वय प्रकाशन

प्र० स०

मोतीलाल पारख  
ब्रह्मदेवसिंह

प्रकाशक

एस० वी० एण्ड कंपनी  
c/o भगवतप्रसाद रणछोडदास  
४४, न्यू क्लोथ मार्केट  
अहमदाबाद-२

★

प्रथम आवृत्ति : २०००

वसन्त पंचमी वि० स० २०२८

जनवरी १९७२

★

मूल्य पाच रुपये पचास पैसे

७ - ००

---

संपर्क सूत्र

सजय साहित्य सगम,  
दासविल्डिंग न०-५  
विलोचपुर, आगरा-२

मुद्रक

रामनारायण मेडतवाल  
श्रीविष्णु प्रिंटिंग प्रेस  
राजा की मंडी, आगरा-२

उन जिज्ञासुओं को,  
जिनकी उर्वर मनोभूमि में  
ये बीज  
अंकुरित  
पुष्पित  
फलित हो,  
अपना विराट् रूप प्राप्त कर सकें !

---

## प्राप्तिकेन्द्र

---

- १ एस० वी० एंड कंपनी  
c/o भगवतप्रसाद रणछोडदास  
४४, न्यूक्लोथ मार्केट  
अहमदाबाद-२
  
- २ श्री सम्पतराय घोरड  
c/o मदनचंद सम्पतराय  
४०, धानमठी,  
श्री गगानगर (राजस्थान)
  
- ३ मोतीलाल पारख  
दि अहमदाबाद लक्ष्मी कॉटनमिल्स क० लि०  
पो० बा० न० ४२  
अहमदाबाद-२२

## प्राक्कथन

मानव जीवन में वाचा की उपलब्धि एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। हमारे प्राचीन आचार्यों की दृष्टि में वाचा ही सरस्वती का अधिष्ठाता है, वाचा सरस्वती भिषग्<sup>१</sup>—वाचा ज्ञान की अधिष्ठात्री होने से स्वयं सरस्वती रूप है, और समाज के विकृत आचार-विचार-रूप रोगों को दूर करने के कारण यह कुशल वैद्य भी है।

अन्तर के भावों को एक दूसरे तक पहुँचाने का एक बहुत बड़ा माध्यम वाचा ही है। यदि मानव के पास वाचा न होती तो, उसकी क्या दशा होती? क्या वह भी मूकपशुओं की तरह भीतर ही भीतर घुटकर समाप्त नहीं हो जाता? मनुष्य, जो गूँगा होता है, वह अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए कितने हाथ-पैर मारता है, कितना छटपटाता है फिर भी अपना नहीं आशय कहा समझा पाता है दूसरों को?

बोलना वाचा का एक गुण है, किंतु बोलना एक अलग चीज है, और वक्ता होना वस्तुतः एक अलग चीज है। बोलने को हर कोई बोलता है, पर वह कोई कला नहीं है, किंतु वक्तृत्व एक कला है। वक्ता साधारण में विषय को भी कितने सुन्दर और मनोहारी रूप में प्रस्तुत करता है कि श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। वक्ता के बोल श्रोता के हृदय में ऐसे उतर जाते हैं कि वह उन्हें जीवन भर नहीं भूलता।

कर्मयोगी श्रीकृष्ण, भगवान्महावीर, तथागतबुद्ध, व्यास और भद्रबाहु आदि भारतीय प्रवचन-परम्परा के गेने महान् प्रवक्ता थे,

जिनकी वाणी का नाद आज भी हजारो-लाखो लोगो के हृदयों को आप्यायित कर रहा है। महाकाल की तूफानी हवाओं में भी उनकी वाणी की दिव्य ज्योति न बुझी है और न बुझेगी।

हर कोई वाचा का धारक, वाचा का स्वामी नहीं बन सकता। वाचा का स्वामी ही वाग्मी या वक्ता कहलाता है। वक्ता होने के लिए ज्ञान एव अनुभव का अभ्यास बहुत ही विस्तृत होना चाहिए। विशाल अध्ययन, मनन-चिंतन एव अनुभव का परिपाक वाणी को तेजस्वी एव चिरस्थायी बनाता है। विना अध्ययन एव विषय की व्यापक जानकारी के भाषण केवल भ्रमण (भोकना) मात्र रह जाता है, वक्ता कितना ही चीखे-चिल्लाये, उछले-कूदे यदि प्रस्तावित विषय पर उसका सक्षम अधिकार नहीं है, तो वह सभा में हास्यास्पद हो जाता है, उसके व्यक्तित्व की गरिमा लुप्त हो जाती है। इसीलिए बहुत प्राचीनयुग में एक ऋषि ने कहा था—वक्ता शतसहस्रेषु, अर्थात् लाखों में कोई एक वक्ता होता है।

शतावधानी मुनि श्री धनराज जी जैनजगत के यशस्वी प्रवक्ता हैं। उनका प्रवचन, वस्तुतः प्रवचन होता है। श्रोताओं को अपने प्रस्तावित विषय पर केन्द्रित एव मग्न-मुग्ध कर देना उनका महज कर्म है। और यह उनका वक्तृत्व—एक बहुत बड़े व्यापक एव गभीर अध्ययन पर आधारित है। उनका संस्कृत-प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओं का ज्ञान विस्तृत है, साथ ही तलस्पर्शी भी! मान्य होता है, उन्होंने पांडित्य को केवल छुआ भर नहीं है, किंतु ममग्रशक्ति के साथ उसे गहराई में अधिग्रहण किया है। उनकी प्रस्तुत पुस्तक 'वक्तृत्वक्ता के बीज' में यह स्पष्ट परिलक्षित होता है।

प्रस्तुत कृति में जैन आगम, बौद्धवाङ्मय, वेदों में लेकर उपनिषद ब्राह्मण, पुराण, स्मृति आदि वैदिक साहित्य तथा लोककथानक, कथा-वर्ण, नाटक, ऐतिहासिक घटनाएँ, ज्ञान-विज्ञान की उपयोगी चर्चाएँ—

इसप्रकार शृङ्खलावद्ध रूप में सकलित है कि किसी भी विषय पर हम बहुत कुछ विचार-सामग्री प्राप्त कर सकते हैं। सचमुच वक्तृत्व-कला के अगणित बीज इसमें सन्निहित हैं। सूक्तियों का तो एक प्रकार से यह रत्नाकर ही है। अंग्रेजी साहित्य व अन्य धर्मग्रन्थों के उद्धरण भी काफी महत्वपूर्ण हैं। कुछ प्रसंग और स्थल तो ऐसे हैं, जो केवल सूक्ति और सुभाषित ही नहीं है, उनमें विषय की तलस्पर्शी गहराई भी है और उमपर से कोई भी अध्येता अपने ज्ञान के आयाम को और अधिक व्यापक बना सकता है। लगता है, जैसे मुनि श्री जी वाङ्मय के रूप में विराट् पुरुष हो गए हैं। जहाँ पर भी दृष्टि पड़ती है, कोई-न-कोई वचन ऐसा मिल ही जाता है जो हृदय को छू जाता है और यदि प्रवक्ता प्रसंगत अपने भाषण में उपयोग करे, तो अवश्य ही श्रोताओं के मस्तक झूम उठेंगे।

प्रश्न हो सकता है—‘वक्तृत्वकला के बीज’ में मुनि श्री का अपना क्या है? यह एक सग्रह है और सग्रह केवल पुरानी निधि होती है, परन्तु मैं कहूँगा—कि फूलों की माला का निर्माता माली जब विभिन्न जाति एवं विभिन्न रंगों के मोहक पुष्पों की माला बनाता है तो उसमें उसका अपना क्या है? बिखरे फूल, फूल हैं, माली नहीं। माला का अपना एक अलग ही विलक्षण सौन्दर्य है। रंग-विरंगे फूलों का उपयुक्त चुनाव करना और उनका कलात्मक रूप में संयोजन करना—यही तो मालाकार का कर्म है, जो स्वयं में एक विलक्षण एवं विशिष्ट कलाकर्म है। मुनि श्री जी वक्तृत्वकला के बीज में ऐसे ही विलक्षण मालाकार हैं। विषयों का उपयुक्त चयन एवं तत्सम्बन्धित सूक्तियों आदि का सकलन इतना शानदार हुआ है कि इस प्रकार का सकलन अन्यत्र इस रूप में नहीं देखा गया।

एक बात और—श्री चन्दनमुनि जी की संस्कृत-प्राकृत रचनाओं में मुझे यथावसर काफी प्रभावित किया है। मैं उनकी चिह्नता का प्रशंसक रहा हूँ। श्री घनमुनि जी उनके बड़े भाई हैं—जब यह मुझे

ज्ञात हुआ तो मेरे हृष की सीमाओं का और भी अधिक विस्तार हो गया । अब मैं कैसे कहूँ कि इन दोनों में कौन बड़ा है और कौन छोटा ? अच्छा यही होगा कि एक को दूसरे से उपमित कर दूँ । उनकी बहुश्रुतता एवं इनकी सग्रह-कुशलता ने मेरा मन मुग्ध हो गया है ।

मैं मुनि श्री जी, और उनकी इस महत्त्वपूर्णकृति का हृदय से अभिनन्दन करता हूँ । विभिन्न भागों में प्रकाशित होने वाली इस विराट् कृति से प्रवचनकार, लेखक एवं स्वाध्यायप्रेमीजन मुनि श्री के प्रति ऋणी रहेंगे । वे जब भी चाहेगे, वक्तृत्व के बीज में से उन्हें कुछ मिलेगा ही, वे रिक्तहस्त नहीं रहेंगे ऐसा मेरा विश्वास है ।

प्रवक्तृ-गमाज—मुनि श्री जी का एतदर्थ आभारी है और आभारी रहेगा ।

जैन भवन

आश्विन शुक्ला-३

आगरा

—उपाध्याय अमरमुनि



## प्रस्तावना

वक्तृत्वगुण एक कला है, और वह बहुत बड़ी साधना की अपेक्षा करता है। आगम का ज्ञान, लोकव्यवहार का ज्ञान, लोकमानस का ज्ञान और समय एवं परिस्थितियों का ज्ञान तथा इन सबके साथ निस्पृहता, निर्भयता, स्वर की मधुरता, ओजस्विता आदि गुणों की साधना एवं विकास से ही वक्तृत्वकला का विकास हो सकता है, और ऐसे वक्ता वस्तुतः हजारों लाखों में कोई एकाध ही मिलते हैं।

तेरापथ के अधिशास्ता युगप्रधान आचार्य श्रीतुलसी में वक्तृत्वकला के ये विशिष्ट गुण चमत्कारी ढंग से विकसित हुए हैं। उनकी वाणी का जादू श्रोताओं के मन-मस्तिष्क को आन्दोलित कर देता है। भारतवर्ष की सुदीर्घ पदयात्राओं के मध्य लाखों नर-नारियों ने उनकी ओजस्विनी वाणी सुनी है और उसके मधुर प्रभाव को जीवन में अनुभव किया है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक मुनि श्री धनराजजी भी वास्तव में वक्तृत्वकला के महान गुणों के धनी एक कुशल प्रवक्ता सत हैं। वे कवि भी हैं, गायक भी हैं, और तेरापथ शासन में सर्वप्रथम अवधानकार भी हैं, इन सबके साथ-साथ बहुत बड़े विद्वान तो हैं ही। उनके प्रवचन जहाँ भी होते हैं, श्रोताओं की अपार भीड़ उमड़ आती है। आपके विहार करने के बाद भी श्रोता आपकी याद करते रहते हैं।

आपकी भावना है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी वक्तृत्वकला का विकास करे और उमका सदुपयोग करे, अतः जन-समाज के लाभार्थ आपने वक्तृत्व के योग्य विभिन्न सामग्रियों का यह विशाल संग्रह प्रस्तुत किया है।



वहुत समय से जनता की, विद्वानों की और वक्तृत्वकला के अभ्यासियों की माँग थी कि इस दुर्लभ सामग्री का जन-हिताय प्रकाशन किया जाय तो बहुत लोगों को लाभ मिलेगा। जनता की भावना के अनुसार हमने मुनिश्री की इस सामग्री को धारणा प्रारम्भ किया। इस कार्य को सम्पन्न करने में श्री डूंगरगढ़, मोमासर, भादरा, हिसार, टोहाना, नरवाना कैथल, हासी, भिवानी, तोसाम, ऊमरा, सिसाय, जमालपुर, सिरसा और भटिंडा आदि के विद्यार्थियों एवं युवकों ने अथक परिश्रम किया है। फलस्वरूप लगभग सौ कापियों व १५०० विषयों में यह सामग्री सकलित हुई है। हम इस विगल संग्रह को विभिन्न भागों में प्रकाशित करने का मकल्प लेकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हुए हैं।

वक्तृत्वकला के बीज का यह चौथा भाग पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। इसके प्रकाशन का समस्त अर्थभार श्री एस० वी० एड कंपनी, अहमदाबाद ने वहन किया है। इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम उनके हृदय से आभारी हैं।

इसके प्रकाशन एवं प्रूफ सञ्चोधन आदि में श्रीचन्द्र जी सुराना 'सरस' तथा श्री ब्रह्मदेवसिंह जी आदि का जो हार्दिक सहयोग प्राप्त हुआ है—उसके लिए भी हम हृदय से कृतज्ञता-जापित करते हैं। आशा है यह पुस्तक जन-जन के लिए, वक्ताओं और लेखकों के लिए एक इन्साईक्लोपीडिया (विश्वकोश) का काम देगी और युग-युग तक इसका लाभ मिलता रहेगा ...



## आत्मनिवेदन

‘मनुष्य की प्रकृति का बदलना अत्यन्त कठिन है’—यह सूक्ति मेरे लिए सवा सोलह आना ठीक साबित हुई। वचपन में जब मैं कलकत्ता—श्री जैनेश्वेताम्बर-तेरापथी-विद्यालय में पढता था, जहाँ तक याद है, मुझे जलपान के लिए प्रायः प्रति-दिन एक आना मिलता था। प्रकृति में सग्रह करने की भावना अधिक थी, अतः मैं खर्च करके भी उसमें से कुछ न कुछ वचा ही लेता था। इस प्रकार मेरे पास कई रुपये इकट्ठे हो गये थे और मैं उनको एक डिब्बी में रखा करता था।

विक्रम सवत् १९७६ में अचानक माताजी की मृत्यु होने से विरक्त होकर हम (पिता श्री केवलचन्द जी, मैं, छोटी बहन दीपाजी और छोटे भाई चन्दनमल जी) परमकृपालु श्री कालुगणीजी के पास दीक्षित हो गए। यद्यपि दीक्षित होकर रुपयो-पैसो का सग्रह छोड़ दिया, फिर भी सग्रहवृत्ति नहीं छूट सकी। वह धनसग्रह से हटकर ज्ञानसग्रह की ओर झुक गई। श्री कालुगणी के चरणों में हम अनेक बालक मुनि आगम-व्याकरण-काव्य-कोष आदि पढ रहे थे। लेकिन मेरी प्रकृति इस प्रकार की बन गई थी कि जो भी दोहा-छन्द-श्लोक-ढाल-व्याख्यान-कथा आदि सुनने या पढने में अच्छे लगते, मैं तत्काल उन्हें लिख लेता या ससार-पक्षीय पिताजी से लिखवा लेता। फलस्वरूप उपरोक्त सामग्री का काफी अच्छा सग्रह हो गया। उसे देखकर अनेक मुनि विनोद की भाषा में कह दिया करते थे कि “धन्न् तो न्यारा में जाने की (अलग विहार करने की) तैयारी कर रहा है।” उत्तर में मैं कहा करता—“क्या आप गारटी दे सकते हैं कि इतने (१० या १५) साल तक आचार्य श्री हमें अपने साथ ही रखेंगे? क्या प्रता, कल ही अलग विहार करने

सकी है। कहीं प्राकृत-संस्कृत, पारसी, उर्दू एवं अंग्रेजी भाषा है तो कहीं हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, पंजाबी और बंगाली भाषा के प्रयोग हैं, फिर भी कठिन भाषाओं के श्लोक, वाक्य आदि का अर्थ हिन्दी भाषा में कर दिया गया है। दूसरे प्रकार से भी इस ग्रन्थ में भाषा की विविधता है। कई ग्रन्थों, कवियों, लेखकों एवं विचारकों ने अपने सिद्धान्त निरवद्यभाषा में व्यक्त किए हैं तो कई साफ-साफ सावद्यभाषा में ही बोले हैं। मुझे जिस रूप में जिसके जो विचार मिले हैं, उन्हें मैंने उसी रूप में अंकित किया है, लेकिन मेरा अनुमोदन केवल निर्वद्य-सिद्धान्तों के साथ है।

ग्रन्थ की सर्वोपयोगिता—इस ग्रन्थ में उच्चस्तरीय विद्वानों के लिए जहाँ जैन-बौद्ध आगमों के गम्भीर पद्य हैं, वेदों, उपनिषदों के अद्भुत मंत्र हैं, स्मृति एवं नीति के हृदयग्राही श्लोक हैं वहाँ सर्वसाधारण के लिए सीधी-सादी भाषा के दोहे, छन्द, सूक्तियाँ, लोकोक्तियाँ, हेतु, दृष्टान्त एवं छोटी-छोटी कहानियाँ भी हैं। अतः यह ग्रन्थ निःसंदेह हर एक व्यक्ति के लिए उपयोगी सिद्ध होगा—ऐसी मेरी मान्यता है। वक्ता, कवि और लेखक इस ग्रन्थ में विशेष लाभ उठा सकेंगे, क्योंकि इसके सहारे वे अपने भाषण, काव्य और लेख को ठोस, सजीव, एवं हृदयग्राही बना सकेंगे एवं अद्भुत विचारों का विचित्र चित्रण करके उनमें निखार ला सकेंगे, अस्तु !

ग्रन्थ का नामकरण—इस ग्रन्थ का नाम 'वचनत्वकला के बीज' रखा गया है। वचनत्वकला की उपज के निमित्त यहाँ केवल बीज इकट्ठे किए गए हैं। बीजों का वपन किमलिए, कैसे, कब और कहा करना—यह वक्ता (बीज बोनेवाला) की भावना एवं वृद्धिमत्ता पर निर्भर करेगा। फिर भी मेरी मनोकामना तो यही है कि वक्ता परमात्मपदप्राप्ति रूप फल।

के लिए शास्त्रोक्तविधि से अच्छे अवसर पर उत्तम क्षेत्रों में इन बीजों का वपन करेंगे । अस्तु ।

यहाँ मैं इस बात को भी कहे बिना नहीं रह सकता कि जिन ग्रन्थों, लेखों, समाचार पत्रों एवं व्यक्तियों से इस ग्रन्थ के सकलन में सहयोग मिला है—वे सभी सहायक रूप से मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेंगे ।

यह ग्रन्थ कई भागों में विभक्त है एवं उनमें सैकड़ों विषयों का सकलन है । उक्त सग्रह वालोतरा मर्यादा-महोत्सव के समय मैंने आचार्य श्रीतुलसी को भेंट किया । उन्होंने देखकर बहुत प्रसन्नता व्यक्त की एवं फरमाया कि इसमें छोटी-छोटी कहानियाँ एवं घटनाएँ भी लगा देनी चाहिये ताकि विशेष उपयोगी बन जाए । आचार्य श्री का आदेश स्वीकार करके इसे सक्षिप्त कहानियाँ तथा घटनाओं से सम्पन्न किया गया ।

मुनिश्री चन्दनमलजी, डूंगरमलजी, नथमलजी, नगराज जी, मधुकरजी, राकेशजी, रूपचन्दजी आदि अनेक साधु एवं साध्वियों ने भी इस ग्रन्थ को विशेष उपयोगी माना । वीदासर-महोत्सव पर कई सतों का यह अनुरोध रहा कि इस सग्रह को अवश्य धरा दिया जाए ।

सर्व प्रथम वि० सं० २०२३ में श्री डूंगरगढ़ के श्रावको ने इसे धारणा शुरू किया । फिर थली, हरियाणा एवं पंजाब के अनेक ग्रामो-नगरों के उत्साही युवकों ने तीन वर्षों के अथक-परिश्रम से धारकर इसे प्रकाशन के योग्य बनाया ।

मुझे दृढविश्वास है कि पाठकगण इसके अध्ययन, चिन्तन एवं मनन से अपने बुद्धि-वैभव को क्रमशः बढ़ाते जायेंगे—

वि० सं० २०२७ मृगसर वदी ४

मंगलवार, रामामढी, (पंजाब)

—धनमुनि 'प्रथम'

# अनुक्रमणिका

पहला फोष्ठक

पृष्ठ १ से ७७

१ विवेक, २ विवेक-महिमा, ३ विवेकी, ४ अविवेकी, ५ विवेक-हीन, ६ चिन्तन-भनन, ७ विचार, ८ सम्मति-मलाह, ९ आवश्यक-मलाह, १० सलाह के विषय में विविध, ११ उपदेश, १२ कला, १३ विविध कलाएँ, १४ कविता, १५ कविता का महत्व, १६ अच्छी कविता, १७ कविता-विरोध, १८ कवि, १९ कवि-प्रणना, २० कवियों की प्रकृति, २१ कवियों की शक्ति, २२ कवियों के लिये विचारणीय बातें, २३ निन्दनीय कवि, २४ विभिन्न भाषाओं के महान् कवि, २५ रमिक श्रोताओं के अभाव में कवि, २६ निर्भीक कवि गग, २७ प्राचीन एवं आधुनिक कवि, २८ महान् कवि, २९ कल्पना, ३० कल्पना के उदाहरण, ३१ कथावर्तें, ३२ माहित्य, ३३ इतिहास, ३४ मसौदा, ३५ लेखक, ३६ बुद्धि लेखक, ३७ लेखनी, ३८ अध्ययन, ३९ व्याख्या, ४० खनाख्या, ४१ अधिक अध्ययन।

## दूसरा कोष्ठक

पृष्ठ ७८ से १४७

१ पुस्तक शास्त्र, २ पुस्तको का चयन, ३ विभिन्न दर्शनों के धर्मग्रन्थ, ४ प्रामाणिक ग्रन्थ, ५ युक्ति एव न्याय से ग्रन्थों की प्रामाणिकता, ६ पुस्तक प्रकाशन, ७ विश्व के प्रख्यात पुस्तकालय, ८ अनुभव, ९ अनुभवहीन, १० परीक्षा, ११ परीक्षा आवश्यक, १२ परीक्षा-विधि, १३ परीक्षा का समय, १४ दर्शन, १५ आस्तिक, १६ नास्तिक, १७ नास्तिकों का कथन, १८ सम्यग्दर्शन-सम्यक्त्व, १९ सम्यक्त्व की दुर्लभता, २० सम्यक्त्व से लाभ, २१ सम्यक्त्व का महत्व, २२ सम्यग् दृष्टि, २३ श्रद्धा, २४ श्रद्धावान्, २५ अश्रद्धावान् (शकाशील) २६ सशय (शका), २७ विश्वास, २८ विश्वास के अयोग्य, २९ विश्वासघात, ३० मिथ्यादर्शन (मिथ्यात्व), ३१ मिथ्यात्व के भेद ३२ मिथ्यादृष्टि ।

## तीसरा कोष्ठक

पृष्ठ १४८ से २२१

१ तत्व, २ द्रव्य, ३ नय-प्रमाण, ४ निश्चय व्यवहार नय, ५ स्याद्वाद, ६ उत्सर्ग-अपवाद, ७ सिद्धान्त, ८ चारित्र्य, ९ चारित्र्य का महत्व, १० ज्ञान के साथ चारित्र्य आवश्यक, ११ चारित्र्य की रक्षा, १२ चरित्र से लाभ, १३ त्याग, १४ त्याग के भेद, १५ त्यागी, १६ प्रत्याख्यान, १७ आचार (आचरण), १८ आचरण विना ज्ञान, १९ आचारवान्, २० आचारहीन, २१ कथन के नमान आचरण आवश्यक, २२ शील, २३ व्रत, २४ महाव्रत, २५ नभ्यता, २६ योग, २७ योग महिमा, २८ योगी, २९ योगियों के चमत्कार ।

## चौथा कोष्ठक

पृष्ठ २२२ से ३३६

१ समय, २ समय से लाभ, ३ समय की दुष्करता, ४ समय में सुख-दुःख, ५ समय दीक्षा का समय आदि, ६ समय में भ्रष्ट होने के अठारह स्थान, ७ समय के भेद, ८ नायना, ९ नायु, १० मुनि,

११ अन्नगार, १२ भिक्षु, १३ श्रमण, १४ निर्ग्रन्थ, १५ स्वचिर,  
१६ तापस, १७ फकीर, १८ संत, १९ कतिपय जगत्प्रसिद्ध संत  
महात्मा, २० साधुओं के गुण, २१ साधु सगति, २२ नतो का सताप,  
२३ साधुओं की गोचरी, २४ गोचरी के भेद, २५ गोचरी के नियम,  
२६ साधु का आहार, २७ आहार किसलिए, २८ साधुओं का निवास  
स्थान, २९ साधुओं के वस्त्र ३० साधुओं के पात्र ३१ साधुओं का  
विहार, ३२ साधु की भाषा, ३३ साधुओं के लिए कल्प-अकल्प,  
३४ साधुओं के मुख, ३५ साधुओं के वारह सभोग और उनका विच्छेद  
३६ साधुओं को शिक्षा, ३७ नामधारी साधु, ३८ पापी साधु,  
३९ कदर्पादि में लीन साधुओं की गति ।

---

चार कोष्ठको में कुल १४१ विषय तथा दस भागों में

लगभग १५०० विषय हैं ।

---

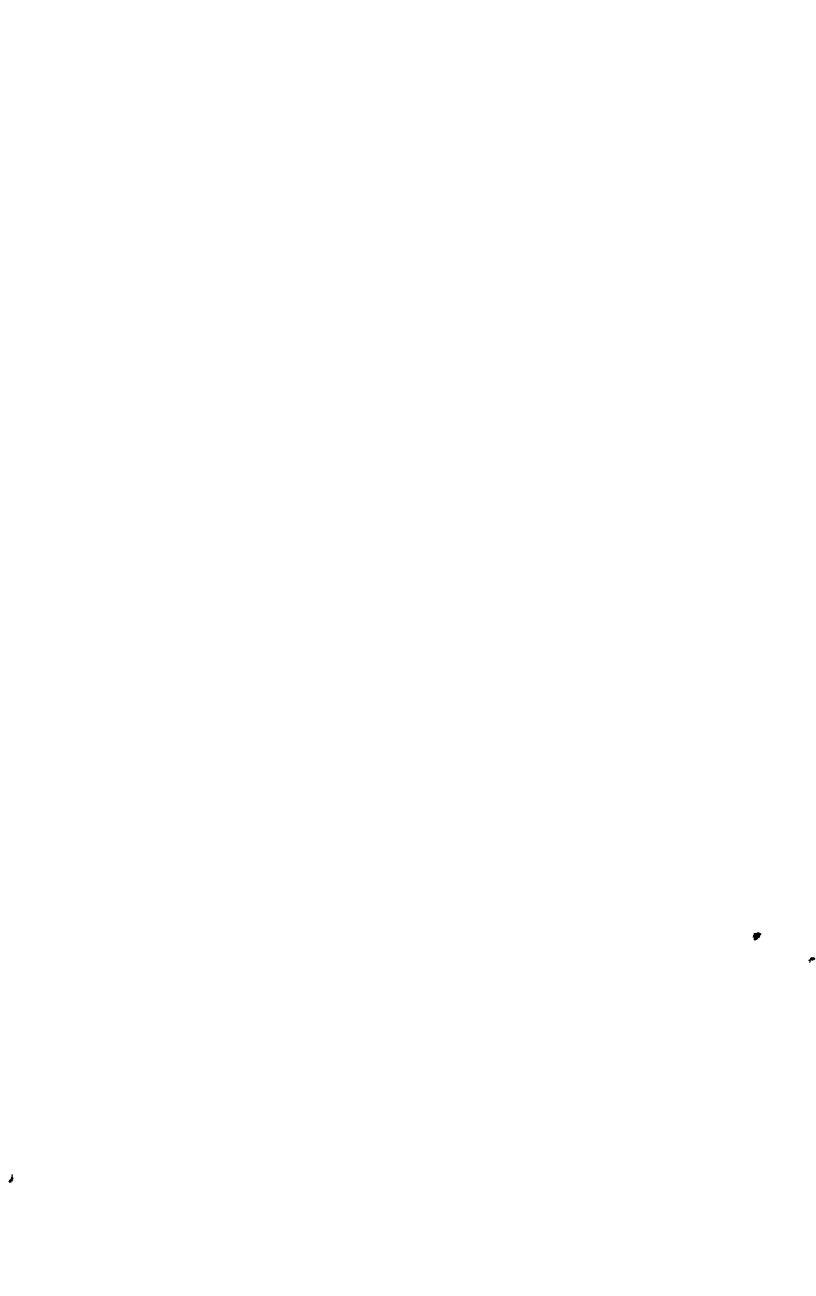
चौथा भाग

---

वक्तृत्व कला के बीज

---





# पहला कोष्ठक

१

## विवेक

१. हेयोपादेयज्ञान विवेक ।  
त्यागने योग्य एव ग्रहण करने योग्य वस्तु के ज्ञान को विवेक कहते हैं ।
२. विवेक केवल सत्य में पाया जाता है । —नेते
३. उडने की अपेक्षा जब हम झुकते हैं, तब विवेक के अधिक निकट होते हैं । —वर्ड्सवर्थ
४. अपने विवेक को अपना शिक्षक बनाओ ! शब्दों का कर्म से और कर्मों का शब्दों से मेल कराओ । —शेक्सपीयर
५. विवेक के नियमों को सीखकर, जो उन्हें जीवन में नहीं उतारता, उसने खेत में मेहनत करके भी बीज नहीं डाला । —शेखसादी
६. समझा-समझा एक है, अनसमझा सब एक ।  
समझा सो ही जानिए, जाके हृदय विवेक ॥ —कबीर
७. ईर्ष्या हि विवेकपरिपन्थिनी । —क्यासरित्सागर  
ईर्ष्या ही विवेक की शत्रु है ।
८. मदमूढ-बुद्धिपु विवेकिता कुत । —शिमुपालवध  
मद में मोहित बुद्धियानों में विवेक बहा ।
९. जीवन और सौन्दर्य में विवेक कदाचित् ही होता है ।  
—होमर

## विवेक-महिमा

१. विवेगे धम्ममाहिए ।  
विवेक मे धर्म कहा गया है ।
२. विवेको मुक्तिसाधनम् ।  
विवेक मुक्ति का साधन है ।
३. विवेको गुरुवत् सर्व, कृत्याकृत्य प्रकाशयेत् ।  
विवेक गुरु की तरह कृत्य-अकृत्य का मार्ग दिखाता है ।
४. निर्वातहृद्-गेहगत. प्रकाशयेत्,  
सर्वेप्सित वस्तुविचारदीपक. । —**ब्रह्मानन्द**  
चञ्चलतारूप वायु से रहित हृदयमंदिर मे विवेकरूप दीपक  
समस्त इच्छित वस्तुओं को प्रकाशित करता है ।
५. एको हि चक्षुरमलः सहजो विवेकः ।  
विवेक एक स्वाभाविक निर्मल नेत्र है ।
६. कोर्टसी कोस्टस् नथिंग एडवाइज एन्नीथिंग ।  
—**अंप्रेजी कहावत**  
विवेक के लिए एक पाई भी नहीं लगती, किन्तु इससे हरएक  
चीज एरीदी जा सकती है ।
७. न विवेक विना ज्ञानम् ।  
विवेक के बिना ज्ञान नहीं होता ।

८ अग्नि के अश विना फूंक नही लगती, श्वास के विना दवा नही लगती और कान आदि के विना सुनना-देखना आदि कार्य नही होता—ऐसे ही विवेक के विना व्यवहारिक या धार्मिक उन्नति नही होती । खाना, पीना, पहनना, ओढना, सोना, उठना, बैठना, बोलना, चलना, पढना, लिखना, हसना, रोना आदि व्यवहारिक कार्य तथा ज्ञानचर्चा, व्याख्यान, सामायिक, पौषध, गुरुवन्दन, सेवा-भक्ति, तपस्या-एव दान, आदि धार्मिककार्य करना, इन सभी कार्यों मे विवेक की जरूरत है । किसी ने कहा भी है—

आलस्य मे पशुता, क्रिया मे जीवन और विवेक मे मनुष्यता है । अविवेकी को उपदेश नही लगता ।



१ काय परोपकाराय, धारयन्ति विवेकिन ।

—धर्मकल्पद्रुम

विवेकी पुरुष परोपकार के लिए ही शरीर धारण करता है ।

२. विवेक दृष्ट्या चरता जनाना,  
श्रियो न किञ्चिद् विपदो न किञ्चिद् ।

विवेकपूर्वक आचरण करनेवालों के लिए मपत्ति हर्षदायक नहीं होती और विपत्ति दुःखदायक नहीं होती ।

३ विवेकिनमनुप्राप्ता, गुणा यान्ति मनोज्ञताम् ।  
सुतरा रत्नमाभाति, चामीकरनियोजितम् ॥

—चाणक्यनीति १६।६

सोने में जड़े हुए रत्नों की तरह गुण विवेकी को पाकर अत्यधिक नमवने लगते हैं ।

४ विवेकिना विवेकस्य, फल ह्यौचित्यवर्तनम् ।

—प्रियवृत्तिशलाका० ३।१

उचित व्यवहार करना ही विवेकियों के विवेक का फल है ।

✱

४

## अविवेक

- १ अविवेक परमापदां पदम् । —महाकवि भारवि  
अविवेक आपत्तियो का मुख्य स्थान है ।
- २ नास्त्यविवेकात् पर प्राणिना शत्रुः ।  
—नीतिवाक्यामृत १०।४५  
अविवेक से बढकर प्राणियो का कोई शत्रु नहीं है ।
- ३ जड जडता के बश पडे, करते क्रिया अनेक ।  
क्रिया विक्रिया हो रही, चन्दन विना विवेक ॥  
—तात्त्विकत्रिशती
- ४ घन जोवन अरु ठाकरी, तिण ऊपर अविवेक ।  
ऐ च्यारूं मेला हुवं, (तो) अनरथ करै अनेक ॥



१. काय परोपकाराय, धारयन्ति विवेकिन ।

—धर्मफलपद्म

विवेकी पुरुष परोपकार के लिए ही शरीर धारण करता है ।

२. विवेक दृष्ट्या चरता जनाना,

श्रियो न किञ्चिद् विपदो न किञ्चिद् ।

विवेकपूर्वक आचरण करनेवालो के लिए सपत्ति हर्षदायक नहीं होती और विपत्ति दुःखदायक नहीं होती ।

३. विवेकिनमनुप्राप्ता, गुणा यान्ति मनोज्ञताम् ।

सुतरा रत्नमाभाति, चामीकरनियोजितम् ॥

—चाणक्यनीति १६।६

सोने में जड़े हुए रत्नों की तरह गुण विवेकी को पाकर अत्यधिक नमकने लगते हैं ।

४. विवेकिना विवेकस्य, फल हीचिन्त्यवर्तनम् ।

—त्रिपिटिशलाका० ३।१

उचित व्यवहार करना ही विवेकियों के विवेक का फल है ।

✱

४

## अविवेक

- १ अविवेक परमापदा पदम् । —महाकवि भारवि  
अविवेक आपत्तियो का मुख्य स्थान है ।
- २ नास्त्यविवेकात् पर प्राणिना शत्रुः ।  
—नीतिवाक्यामृत १०।४५  
अविवेक से बढकर प्राणियो का कोई शत्रु नहीं है ।
- ३ जड जडता के वश पडे, करते क्रिया अनेक ।  
क्रिया विक्रिया हो रही, चन्दन विना विवेक ॥  
—तात्त्विकत्रिशती
- ४ धन जोवन अरु ठाकरी, तिण ऊपर अविवेक ।  
ऐ च्यारु मेला हुवं, (तो) अनरथ करै अनेक ॥





१ विवेकान्धो हि जात्यन्धः । —योगवाशिष्ठ १४।४१  
जो पुरुष विवेकान्ध (विवेकरूपी नेत्रों से हों) है, वह जन्मान्ध है ।

२. गिर. शार्व स्वर्गात् पतति गिरसस्तत्क्षितिधरं ।  
माहीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम् ॥  
अधो गङ्गा मेय पदमुपगता स्तोकमथवा ।  
विवेकभ्रष्टाना भवति विनिपातः गतमुखः ॥

—भर्तृहरि-नीतिशतक १०

स्वर्ग से च्युत होकर शिवजी के सिर पर, शिवजी के सिर से हिमालय पर, हिमालय से पृथ्वी पर और फिर पृथ्वीतल से समुद्र में गिरती हुई वही गंगा लघुपद को प्राप्त हुई । वास्तव में विवेकभ्रष्ट पुरुषों का पतन सैकड़ों प्रकार से होता है ।

३ पु सा विवेकहीनाना, सेवया न धनार्जनम् ।

विवेकहीन पुरुषों की सेवा करने में धन नहीं हुआ करता ।

४. फूटी आख विवेक की, लखै न सन्त-असन्त ।

जाके मग दस-धीम है, ताको नाम महन्त ॥

★

६

## चिन्तन-मनन

- १ आत्मा का अपने साथ बात-चीत करना ही मनन है ।  
—प्लेटो
- २ मनन विचार की परिचारिका है और विचार मनन का भोजन ।  
—सी० सिमन्स
- ३ धर्मशास्त्रो का मात्र पाठ करना दूसरो की गाये गिनने के समान है ।  
—बुद्ध
- ४ कालेण य अहिज्जित्ता, तओ झाइज्ज एगगो ।  
—उत्तराध्ययन १।१०

यथासमय अध्ययन करके फिर उसके तत्त्व का ध्यान-चिन्तन-मनन करना चाहिए ।

५. चिन्तन की तीन भूमिकाएँ—

- १ जो सोच नहीं सकता, वह मूर्ख है ।
- २ जो सोचना नहीं चाहता, वह अन्धविश्वासी है ।
- ३ जिसमे सोचने का साहस नहीं, वह गुलाम है ।

१ कोह कथमय दोष , ससाराख्य उपागत ।  
न्यायेनेति परामर्शो, विचार इति कथ्यते ॥

— योगवाशिष्ठ २।५०

मैं कौन हूँ ? मेरे में यह मसारूपी दोष कैसे आया ? शास्त्रिक-  
न्याय से—ऐसे सोचने को विचार कहा जाता है ।

२. श्रोतव्ये च कृतौ कर्णौ, वाग्वुद्धिञ्च विचारणे ।  
यः श्रुत न विचारेत्, स कार्यं विन्दते कथम् ॥

कान सुनने के लिए किए गये हैं और वाणी एव बुद्धि विचारने  
के लिए । जो मनुष्य सुनी हुई बात पर विचार नहीं करता,  
उसे कार्यरूप फल कैसे मिल सकता है ।

३ विचाराद् ज्ञायते तत्त्व, तत्त्वाद्धिश्रान्तिरात्मनि ।

— योगवाशिष्ठ २।१४।५३

विचार में तत्त्वज्ञान होता है और उसमें आत्मा को विश्राम  
मिलता है ।

४ बलं बुद्धिञ्च तेजश्च, प्रतिपत्तिः क्रियाफलम् ।  
फलन्त्येत्तानि सर्वाणि, विचारेणैव धीमताम् ॥

— योगवाशिष्ठ २

विद्वानों के बल, बुद्धि, तेज, मग्न के योग्य स्फूर्ति, क्रिया एव  
उसके फल—ये सभी भाग्य विचार में ही मफल होते हैं ।

- ५ महान् विचार जब कार्य के रूप में परिणत होते हैं तो वे महान् कार्य बन जाते हैं । —हैजलिट
- ६ ससार न कुछ भला है, न कुछ बुरा है । हमारे विचार ही उसे भला-बुरा बनाते हैं । —शेक्सपियर
- ७ आत्मा के विचार पानी है । उसमें गन्दगी मिलना पाप एव सुगन्धि मिलना पुण्य है ।
- ८ मनुष्य वैसा ही बन जाता है, जैसे उसके विचार होते हैं । —वाइविल
- ९ विचार जब आचार की देहली में प्रविष्ट होते हैं, तब सुरक्षित बन जाते हैं । —जीवनसौरभ
- १० विचार मर्यादापूर्ण, सहानुभूतिमूलक और परिमित होने से ही समादृत होता है । —हरिऔध
- ११ हमारे सर्वोत्तम विचार दूसरों की देन हैं । —एमसन
- १२ वह मुझे मुन्दर उपहार देता है, जो मुझे अपूर्व विचार सुनाता है । —ब्रवी
- १३ जैसे आप महान् विचारवान हैं, वैसे ही करके दिखाने वा । बने । —शेक्सपियर
- १४ सोचना शान्ति से और करना तेजी से । —जवाहरलाल नेहरू

- १ सद्विचार नमक है और आचार भोजन है, सद्विचार सिकोरा है और दानादि क्रियाएँ उसमें तेल-घत्ती हैं ।
- २ सद्विचारों की दृढता से शारीरिक विकारों का नाश, सत्कर्म में प्रेम और दृढ विश्वास होता है ।
- ♦ सद्विश्वास की दृढता में मलिनवासनाओं का नाश, क्षमा, दया, धीरज, अनुराग की उत्पत्ति और सन्निदध्यास-प्रभुनाम की स्मृति में दृढ प्रयत्न होता है ।
- ♦ सन्निदध्यास की दृढता से अशुभकामनाओं का नाश, निष्कामभाव में वृद्धि, नश्वर-भोगों में पूर्ण वैराग्य और सत्तत्त्वों का अनुभव होता है ।
- ♦ सत्तत्त्वानुभव की दृढता में समर्पणबुद्धि, अहंभाव का मवनाश होता है और सत्स्थिति की प्राप्ति होती है व स्थूलसंसार का मोह नष्ट होता है ।
- ♦ सत्स्थिति में तमाम दुर्मति नष्ट होकर आत्मा केवल ज्ञानस्वरूप में लीन हो जाती है । यह अवस्था निर्द्वन्द्व, गुणातीत, अतर्क व अद्वैत कहलाती है ।

—एक वैदिक विद्वान

**असद्विचार—**

३. हमे अपने फोडो-गिल्टियो से छुटकारा पाने की चिन्ता न करके अपने गलत विचारो से पिंड छुड़ाने की परवाह करनी चाहिए ।  
—वार्षनिक-एपिक्टेट्स
४. खुराक की वदहजमी के लिए तो दवा है, पर विचारो की वदहजमी आत्मा को विगाड़ देती है ।  
—गाधी
५. विचारो की शुद्धि तब हो सकती है, जब वे हवा की तरह उडकर, सबके हृदय लगे, चादनी की तरह सबकी आँखे ठडी करदे ।  
—एकविचारक

**विचारो का परिवर्तन—**

६. अनुभव, ज्ञान, उन्मेष और वयस् मनुष्य के विचारो को बदलते है ।  
—हरिऔध
७. केवल मूर्ख और मृतक दो ही अपने विचारों को नही बदल सकते ।  
—लावेल



१. एकश्चार्थान्न चिन्तयेत् । —बिदुरजीति १।५१  
मनुष्य को चाहिए कि अकेला किसी विषय का निश्चय न करे । अर्थात् दूसरे की सलाह लें ।
२. वन स्वालो डज नाँट मेक ए समर । —अंग्रेजी कहावत  
अकेला चना भाउ नहीं फोडता ।
३. एक ही एक सो एकला, वे मिल बावन वीर ।  
सहु कहै अन्न ऊपर मुदो, पिण न सरै विण नीर ।
४. एक पर एक-ग्यारह । —हिन्दी कहावत
५. पुराने जमाने में पगडी सूँघने का रिवाज था । तत्त्व यह था—कोई सलाह देनेवाला न हो तो पगडी ने ही सलाह ले लो अर्थात् काम करने से पहले कुछ समय सोचलो ।
६. सलाह तो अनेक लेते हैं, पर उससे लाभ उठाना तो बुद्धिमान ही जानता है । —साइरस

★

११

## सलाह के विषय में विविध

१ अनायुक्तो मन्त्रकाले न तिष्ठेत् ॥

—नीतिवाक्यामृत १०।३२

कोई भी व्यक्ति मन्त्रणा के समय विना बुलाया हुआ उस स्थान पर न ठहरे ।

२ न तै सह मन्त्र कुर्यात्, येषा पक्षीयेष्वपकुर्यात् ।

— नीतिवाक्यामृत १०।३१

जिसने जिनके बन्धु आदि कुटुम्बियों का अपकार-अनिष्ट (वध-घटनादि) किया है, उसे उन विरोधियों के साथ गुप्तमलाह नहीं करनी चाहिए ।

३. आकाशे प्रतिशब्दवति चाश्रये मन्त्र न कुर्यात् ।

—नीतिवाक्यामृत १०।२६

जो स्थान चारों तरफ से खुला हो, ऐसे स्थान पर तथा पर्वत व गुफा आदि में जहाँ प्रतिध्वनि निकलती हो, वहाँ मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए ।

४ दिवा नक्त वाऽपरीक्ष्य मन्त्रयमाणस्याभिमत. प्रच्छन्नो वा भिनत्ति मन्त्रम् ।

—नीतिवाक्यामृत १०।२६

जो व्यक्ति दिन या रात्रि में योग्य स्थान की परीक्षा किए बिना ही मन्त्रणा करता है, उसका गुप्तमन्त्र प्रकाशित हो जाता है ।



१. एकश्चार्थान् चिन्तयेत् । —बिदुरनीति १।५१  
मनुष्य को चाहिए कि अकेला किसी विषय का निश्चय न करे । अर्थात् दूसरे की सलाह लें ।
२. वन स्वालों डज नाँट मेक'ए समर । —अंग्रेजी कहावत  
अकेला चना भाड नहीं फोडता !
३. एक ही एक सो एकला, वे मिल वावन वीर ।  
सहु कहै अन्न ऊपर मुदो, पिण न सरै विण नीर ।
४. एक पर एक-ग्यारह । —हिन्दी कहावत
५. पुराने जमाने में पगड़ी सू घने का रिवाज था । तत्त्व यह था—कोई सलाह देनेवाला न हो तो पगड़ी में ही सलाह ले लो अर्थात् काम करने से पहले कुछ समय सोचलो !
६. सलाह तो अनेक लेते हैं, पर उससे लाभ उठाना तो बुद्धिमान ही जानता है । —साइरस

★

१ अनायुक्तो मन्त्रकाले न तिष्ठेत् ॥

—नीतिवाक्यामृत १०।३२

कोई भी व्यक्ति मन्त्रणा के समय बिना बुलाया हुआ उस स्थान पर न ठहरे ।

२ न तै सह मन्त्र कुर्यात्, येषा पक्षीयेष्वपकुर्यात् ।

—नीतिवाक्यामृत १०।३१

जिम्हने जिनके बन्धु आदि कुटुम्बियों का अपकार-अनिष्ट (बध-बधनादि) किया है, उसे उन विरोधियों के साथ गुप्तसलाह नहीं करनी चाहिए ।

३. आकाशे प्रतिशब्दवति चाश्रये मन्त्र न कुर्यात् ।

—नीतिवाक्यामृत १०।२६

जो स्थान चारों तरफ से खुला हो, ऐसे स्थान पर तथा पर्वत व गुफा आदि में जहाँ प्रतिध्वनि निकलती हो, वहाँ मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए ।

४ दिवा नक्त वाऽपरीक्ष्य मन्त्रयमाणस्याभिमत. प्रच्छन्नो वा भिनत्ति मन्त्रम् ।

—नीतिवाक्यामृत १०।२६

जो व्यक्ति दिन या रात्रि में योग्य स्थान की परीक्षा किए बिना ही मन्त्रणा करता है, उसका गुप्तमन्त्र प्रकाशित हो जाता है ।

५. इ गितमाकारो मद प्रमादो निद्रा च मन्त्रभेदकारणानि ।  
—नीतिबानधामृत १०।३५

गुप्तमन्त्र का भेद निम्नप्रकार पाच बातों से होता है, अतएव उनमें सदा सावधान रहना चाहिए यथा—(१) इ गित (गुप्त-मन्त्रणा करनेवाले की मुखचेष्टा), (२) शरीर की सौम्य या रौद्र आकृति (३) शराव पीना, (४) प्रमाद (असावधानियाँ करना) (५) निद्रा ।

६. पट्कर्णो भिद्यते मन्त्रञ्चतुष्कर्ण स्थिरो भवेत् ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पट्कर्णं वर्जयेत् सुधीः ॥

—पञ्चतन्त्र १।१०८

'छ कन्ती' (तीन व्यक्तियों के सम्मुख की हुई) बात फूट जाती है किंतु 'चौकन्ती' गुप्त रह सकती है । अतः बुद्धिमान लोगों को चाहिए कि वे तीन व्यक्तियों के सामने कोई गुप्तमन्त्रणा न करे !

७. दो व्यक्ति सलाह करते ही तो तीसरे को वहाँ बिना बुलाये नहीं जाना चाहिए ।

- राजा भोज एक दिन अचानक महल में चला गया । रानी उस समय दार्दी में ध्यान कर रही थी । राजा को आला देखकर वह बोली—आओ मूर्ख ! राजा क्रुद्ध एवं विन्मत्त होकर लौट पड़ा । दरवार में पण्डित आते गए और राजा उन्हें कहता गया—“आओ मूर्ख ! आओ मूर्ख !” अन्त में कालिदाम ने निम्ननिम्नित श्लोक कह कर राजा का नमाधान किया ।

खादन्न गच्छामि हसन्न जल्पे,  
 गत न शोचामि कृत न मन्ये ।  
 द्वाभ्या तृतीयो न भवामि राजन् ।  
 किं कारण भोज ! भवामि मूर्खं ॥

—भोजप्रबन्ध

(१) मैं खाता हुआ चलता नहीं, (२) बोलते समय हसता नहीं,  
 (३) गई बात को सोचता नहीं, (४) किए उपकार को स्मरता  
 नहीं, (५) दो व्यक्तियों की बात के बीच में जाता नहीं, फिर  
 हे राजा भोज ! मैं मूर्ख कैसे हुआ ? मूर्ख बनने के तो ये ही  
 पांच कारण हैं । वान्तविकता को समझकर राजा प्रसन्न हुआ ।



१. जो उपदेश आत्मा से निकलता है, वही आत्मा पर सबसे ज्यादा कारगर होता है । —फुलर
२. वह उपदेश उत्तम नहीं, जिसे सुनकर श्रोता लोग बातें एव वक्ता की तारीफ करते जाएँ, बल्कि उत्तम तो वह है, जिसे सुनकर विचारपूर्ण एव गभीर होकर जाएँ, तथा एकान्तवास की तलाश करे । —विशप वॉट
३. मेरे उपदेशों में खाम बात यह है कि मैं सस्त दिल को तोड़ता हूँ, और टूटे हुए को जोड़ता हूँ । —जॉनरूटन
४. मुझे वह उपदेश पसन्द है, जो मेरे लिए बोलता है, न कि अपने लिए । जिसे मेरी मुक्ति वाछनीय है, न कि अपनी थोड़ी शान । —मंसोलन
५. किसी उपदेशक के दोषों पर प्रायः जल्दी ही ध्यान आकर्षित होता है । —तूवर
६. कोई अच्छा उपदेश दे, उसका मानो ! लेकिन वह क्या करता है, उसे मत देखो ! जैसे हलवाई की मिठाई लेते हैं, किन्तु यह नहीं देखते ही हलवाई खाता है या नहीं ।  
उपदेशदान—
७. उपदेश पापियों और धर्मियों-दोनों को देना चाहिए ।

पापियो को इसलिए कि वे पाप से निवृत्त हो, और धर्मियो को इसलिए कि वे धर्म मे सदा सुदृढ रहे ।

—आचार्य श्रीतुलसी

८. नीति का उपदेश दो तो सक्षेप मे दो । —हारेस

९ आधा घटा से ज्यादा उपदेश देने के लिए आदमी या तो खुद फरिस्ता हो या सुनने के लिए फरिस्ता रखे ।

—ह्वाइट फील्ड

१०. हजार टन उपदेश देने की अपेक्षा एक ओस पालन करना श्रेष्ठ है । — विवेकानन्द

११ हम उपदेश देते हैं टन भर, मुनते हैं मन भर, और ग्रहण करते हैं कण भर । —अलजर

१२ जैसा हम कहते हैं, वैसा करना चाहिए, जैसा करते हैं, वैसा नही । — वाँक्केशियो

१३ परोपदेशे पाडित्य से ही दरिद्रता आती है । — रामतीर्थ

१४. एक पढे-लिखे वावू नाव द्वारा नदी पार कर रहे थे ।  
उन्होंने नाविक से पूछा—

क्या तुम व्याकरण जानते हो ?

नाविक—नही ।

वावू—तुम्हारी चार आने जिन्दगी निकम्मी है ।

घोटी देर बाद—क्या तुम्हें काव्य करना आता है ?

नाविक—नही ।

बाबू—फिरतो तुम्हारी जिन्दगा आठ आने बेकार हो गई ।

अच्छा तो—तुम्हे गणित आता है ?

नाविक—नहीं ।

बाबू—तब तो तुम्हारी वारह आने जिन्दगी व्यर्थ ही है ।

मयोग से नदी में तूफान उठा और नाव डगमगाने लगी ।

नाविक ने पूछा—बाबू जी ! आप तैरना जानते हैं ?

बाबू—नहीं ।

नाविक ने कहा—फिर तो आपकी जिन्दगी इस समय सोलह आने पानी में है ।

अन्ततः तूफान की चपेट में बाबूजी को अपने जीवन से हाथ धोना पडा ।



- १ कला वही है जो सीन्दर्य का सवक सिखाती है ।
- २ कला विचार को मूर्तिमान् करती है । —एमर्सन
- ३ सच्ची 'कला' ईश्वर का भक्तिमय अनुसरण है ।  
—ट्राईन एण्डवर्ड्स
- ४ जो कला आत्मा के दर्शन की शिक्षा नहीं देती, वह कला कला ही नहीं है । —गान्धी
- ५ सर्वोच्च कला हमेशा धर्ममय होती है और महत्तम कलाकार भक्त होता है ।
- ६ कला तो सत्य का केवल शृंगार है । —हरिभाऊ उपाध्याय
- ७ कला—कला के लिए नहीं, बल्कि समाज को उन्नत बनाने के लिये है ।
- ८ कला की परिपूर्णता कला को छिपाने में है ।
- ९ उपयोगी कलाओं की जननी है 'आवश्यकता' और ललित कलाओं की जननी है 'विलासिता' । पहली बुद्धि से उत्पन्न हुई है और दूसरी प्रतिभा में पैदा हुई है ।  
— शोपेनहोर
- १० सत्य की भूमि पर मायानृजन यही है ललितकलाओं का रहस्य । निरा सत्य उनका ध्येय नहीं हो सकता ।
- ११ नोगों को छश करने की कला दुनिया में आगे बढ़ने की कुंजी है ।



(क) लेखनकला—

१. ऋषभ प्रभु ने ब्राह्मी के बाएँ हाथ पर अपने दाहिने हाथ से अ-आ-इ-ई आदि वर्णमाला के ४४ अक्षर लिखे एव लेखनकला का प्रारंभ किया। ब्राह्मी के हाथ पर लिखने से ब्राह्मीलिपि कहलाई। सुन्दरी के दाहिने हाथ पर अपने बाँये हाथ में १, २, ३, आदि अक्षर लिखे अतः अक्षरों की वामगति हुई, कहा भी है—अङ्कानां वामतो गतिः ।
२. बम्बई-निवासी अनन्त भट्ट ने एक पास्टकार्ड में जवाहर-जीवनचरित्र लिखा। उसमें लगभग २ लाख अक्षर हैं।
३. जेम्स जाहारी ने १९२६ में दो सेंट (अमेरीका का एक सिक्का) की टिकिट पर २० हजार अक्षर लिखे। १९३५ में एक चावल पर ६००७ अक्षर लिखे। फिर वालो पर उसमें भी वारोक्ष अक्षर लिखे। ये चावलों वाले अक्षरों में १/३ सूक्ष्म थे।

१. १९ नवम्बर १९४४ (नेहरू जन्म-दिवस) पर प्रधानमंत्री श्रीनेहरूजी ने ११ पर पाठ भेंट किया था।

- ४ भूतपूर्व नैममुनि ने स० २००२ में ऐनक की सहायता के बिना एव लकड़ी की कलम से चार इ च चौड़ा और नौ-इ च लम्बा एक पत्र लिखा । उसके दोनों ओर ८० हजार अक्षर थे । उससे भी सूक्ष्मअक्षरों वाले दो पत्र पुन लिखे । उनके एक वर्ग-इ च में करीब १४०० अक्षर हैं ।  
—धनमुनि

- ५ आशुलिपिकर्ता हिन्दी में प्रति मिनट २३० शब्द तक लिख सकते हैं । नई दिल्ली ३० जून केन्द्रीय सचिवालय-हिन्दीपरिषद् द्वारा आयोजित हिन्दी-आशुलिपिकर्ताओं की मातवी प्रतियोगिता में यह प्रमाणित हुआ ।  
—हिन्दुस्तान २१ जनवरी १९७०

(ख) वस्त्र बुनने की अद्भुत कला—

- १ टाके-चन्देरी आदि की, कारीगरी अब है कहा ? हा ! आज हिन्दुनारियों की, कुशलता सब हैं कहा ? थी वह कला या क्या कि, ऐसी सूक्ष्म थी अनमोल थी । नौ हाथ लम्बे सूत की, बस आध रत्ती तोल थी । रक्खा नली में बास की, जो थान कपड़े का नया ।

- 
- १ टाका जिले के मुनारी गाँव में हाथ के जूने हुए १७५ हाथ लम्बे का बज्रन एव रत्ती था, तथा आधे रत्ती में २५० मीन लम्बा सूत बनाया गया था—

—टाका रजिस्ट्रार, सन् १८४६ से उद्धृत

आश्चर्य ! अवारीसहित हाथी उसीसे ढक गया ।  
वे वस्त्र कितने मूक्षम थे, करलो कई उनकी तहे ।  
शहजादियों के अग, फिर भी झलकते उनमे रहे ।<sup>१</sup>

—मैथिलीशरण गुप्त (भारत-भारती)

२ वस्त्र बुनने की कला से राजा अपने घर पहुँचा—

प्रसंग—राजकन्या से मोहित एक राजा ने उसकी माग की, कन्या ने कुछ कला सीखने की शर्त रखी । राजा ने वस्त्र बुनने की कला सीखी एव विवाह हुआ । वक्र-शिक्षित अश्व के कारण एक बार राजा भीषण वन में पहुँचा । भीलो ने वहाँ उसे कैद कर लिया । इधर मन्त्री खोज कर रहे थे, किन्तु पता न चल सका । बुद्धिमान राजा ने कई रुमाल बुने एव उनमें गुप्तरूप में अपना नाम लिखा । भील बेचने शहर में गये । पता पाकर सेनासहित मन्त्री आया और राजा को छुड़ाकर ले गया ।

(ग) गायन कला—

५. नास्ति नादसमो रसः ।

संगीत के समान कोई रस नहीं है ।

१. हाथी की मजबूत १० गज लम्बी एव १ हाथ लंबी होनी पती, जिसका वजन ८ तोले ४॥ मांस होता था । अजब जो एक कारीगर ने वास्तु की कला में राजकर एक मजबूत का शान भेट दिया था, जिम्मे होशमति हाथी दया जा मरता था ।
२. आग्नेय की शक्ति ने मजबूत की कई नई नई उस वस्तु को आँझा किन्तु भी उनका रस दोगुना ही रहा ।

- २ कहा जाता है कि फारस में मिरजा मुहम्मद वीन बजाकर बुलबुलो को सचेत तथा अचेत कर देते थे ।
- ♦ बैजूबाबरा मालकोश राग गाकर हिरणो का आकृष्ट कर लेते थे ।
- ◊ तानसेन मेघमल्हार गाकर पानी बरसा देते थे एवं दीपकराग से दीपक जला देते थे ।
- ३ तानसेन के गुरु स्वामो हरिदासजी ने प्रभुभक्ति में लीन होकर एक बार ऐसा गीत गाया, जिसे सुनकर शहनशाह अकबर आनन्दमग्न होकर मूर्च्छित हो गया ।
- ४ मदनमोहन चटर्जी ने तीन वर्ष दो महीने की आयु में ताल-स्वर संयुक्त सर्वप्रथम गाना गाया एवं श्रोता-विस्मित हुए । सात वर्ष की आयु में वे अच्छे गवये बन गये ।
- ५ गोगो गायो र गीता रो छेह आयो ।

—राजस्थानी फहायत

### ६ गीत के १=५ अङ्ग—

नप्त न्वरास्त्रयो जामा, मूच्छंनार्चकविगति ।  
 तालास्त्वेकानपञ्चाशत्, तिस्रो मात्रा लयाम्त्रय ॥  
 स्थानत्रय यतीना च, पडाभ्यानि रसा नव ।  
 रागा षट्त्रिगतिर्भावा-श्चत्वारिगत्तत न्मृता ॥  
 पञ्चाशीत्यधिक ह्येतद्, गीताङ्गाना शत न्मृतम् ।  
 स्वयमेव पुरा प्रोक्त भर्तृन श्रुतः परम् ॥

—पञ्चतन्त्र ५।५३-५४-५५

गीत के स्वर सात होते हैं—(१) पङ्ज (२) ऋषभ (३) गान्धार (४) मध्यम (५) पचम (६) धैवत (७) निषध ।

ग्राम (स्वर समूह) तीन होते हैं—(१) पङ्जग्राम (२) मध्यम-ग्राम (३) निषादग्राम ।

स्वर का आरोह—अपरोह-द्वारा सम्यक् प्रकार में मूर्छित हो जाना मूर्च्छना कहलाती है । उसके २१ भेद हैं । ताल उनचास हैं । मात्राएँ तीन हैं—(१) ह्रस्व (२) दीर्घ (३) प्लुत । लय तीन होते हैं । (गीत-नृत्य-वाद्य की एतानता रूप साम्य-भाव का नाम लय है) यति (विराम-स्थान) तीन हैं । आस्य छ हैं । रम षगार आदि नौ हैं । राग भैरव, कोशिकी, हिण्जोल, दीपक, श्री, और मेघ आदि ३६ हैं । माय ४४ है । इस प्रकार नाट्याचार्य भरत ने गीत के १८५ अंग कहे हैं ।

७. बाह्यार्थालम्बनो यस्तु, विकारो मानसो भवेत् ।

म भाव कथ्यते सद्भि-स्तस्योत्कर्षो रसः स्मृत ॥

बाह्यवस्तुओं के सहारे में जो मन में विकार उत्पन्न होते हैं, उन्हें भाव कहते हैं । भाव जब उत्कर्ष को प्राप्त कर लेते हैं तो वे रस बहे जाते हैं ।

८ रम नौ है—(१) वीर, (२) गृह्णार, (३) अद्भुत (४) रौद्र, (५) व्रीडा, (६) वीभत्स, (७) हास्य, (८) करुण, (९) प्रगान्त ।

अनुयोगद्वारा गाथा ६३ में ८१, सूत्र १२६

(घ) नृत्य-कला—

• अक्राका में आङ्गुरी-होस्ट को आदिम जाति, लोचो, में नर्तक एक हाथ में एक कटार और दूसरे हाथ में एक गुजर लेकर उन तीक्ष्ण दृष्टिगो की नोक पर एक

लडके को सतुलित कर घटो तक विद्युत्गति से नाचता रहता है ।

- ◆ गोलकुडा (भारत) के शासक, अबुलहसन तानाशाह के दरवार मे एक अनोखी नर्तकी थी, तारामती वह प्रति दिन शाह को अपना नृत्य दिखाती थी । लेकिन यह नृत्य बडा अद्भुत होता था । पहाड पर बने शाह के महल से नर्तकी का निवास करीब आधा मील दूर नीचे पडता था । एक मजदूर रस्सा महलसे नर्तकी के निवास तक तान दिया जाता था । इस रस्से पर नाचती हुई तारामती अपने निवास की छत मे महल की छत पर पहुच जाती थी । यह क्रम सन् १६७२ मे १-७७, पाँच वर्षों तक चलता रहा ।

—विचित्रा, दर्प ३, अंक ४, १९७१

(घ) तैरने की कला—

गत रविवार की साय को सबसे छोटा तैराक साटेचार माल का था, जो एक ऊँचे पत्थर ने तेज यमुनाप्रवाह मे छलाग लगाता था । नव वर्ष की एक लडकी नदी के पाट को पार कर गई । चार लडकिया तैरती हुई फूलों के आकार बना रही थी एव नृत्य कर रही थी । एक लडकी के हाथ-पैर रस्मी से बाँधकर उसे पानो मे फँका गया फिर भी वह तैरकर बाहर आ गई । एक लडकी ने खड़ी तारी दिखाई, वह ऐसी नग रही थी, मानो ! पानो पर चढ़ रही ह । एक उस्ताद ने आधे

दजंन वच्चो को कधो पर विठाकर खडी तारी का प्रदर्शन किया। तैराको के उम्ताद ८० वर्षीय पंडित लल्लु भाई का कहना है कि तैरना सब रोगो की अचुक दवा है। —नवभारत टाइम्स १२ अक्टूबर १९६१ से।

छः मास का एक वच्चा नौ मिनट तक बिना किमी और के सहारे पानी में तैरता रहा। पाच महीने की एक लडकी साढे तीन मिनट तक पानी में तैरती रही।

—मिलाप १६ नवम्बर ७१

### (छ) वाणकला—

१ बडादा आर्यकन्या—महाविद्यालयकी कन्याओं ने राज्यपाल संगलदान पकवासा के स्वागत में, सोकर पैरो में तीर चलाए। उन तीरां ने सामने रखी हुई पुष्पमाला लेकर राज्यपाल के गले में पहना दी।

२ अमरापुर का लक्ष्यवेधी चम्पा वणिक ऊँट पर चढा हुआ परदेश में धन कमाकर आ रहा था। तीन डाकू मिले, धन मागा। उसने कहा—दानरूप में दे सकता हूँ।  
डाकू—हो जा लडने को तैयार।

वणिक नीचे उतरा एव दो तीर तोड़ डाले। (उसके पान कुल पाच तीर थे) पृष्ठने पर बोला—तुम पैदल हो और तीन हो, एक जाल में अधिक न मार्गन की प्रतिज्ञा है।

विन्मिन्न डाकू बोले—पक्षी मारकर परीक्षा दे।

वणिक—धर्म जितना फोन करे।

यो कहकर अपनी मोतियो की माला एक डाकू के सिर पर रखो, बाण चलाया, वह माला को ले गया, लेकिन सिर के बाल हिले तक नहीं ।

- ३ मुहम्मद गौरी ने कारगरनदी के किनारे भीषण युद्ध में हराकर पृथ्वीराज चौहान को पकड़ लिया और हथकड़ी बेड़ी एव गले में तोक पहनाकर गजनी में कैद कर लिया । इतना ही नहीं उसको दोनों आँसे भी निकलवा दी । पृथ्वीराज के परमसखा चन्द्रकवि भी योगी के रूप में ब्रह्मा जा पहुँचे । अपने अद्भुत व्यक्तित्व और बुद्धिमत्ता में बादशाह के प्रीतिपात्र बने । मौका लगाकर अपने स्वामी में मिले और दुःख-मुख की बातें की ।

बैर का बदला लेने की ठानकर एक दिन बादशाह से कहने लगे—कि पृथ्वीराज जैसे बहादुर नरेश को इस प्रकार दुःख देना आप जैसे बादशाह को जोशा नहीं देता । उनमें अनेक अद्वितीय - शस्त्रविद्याएँ सीखनी चाहिए । वे रतने अद्भुत शस्त्रवेत्ता हैं कि मात्सी मन के साथ तवे तलाऊ पर रखकर ककर मारने के साथ ही उन्हें फाँट सकते हैं । दुर्भाग्यवश गौरी के जँच गई एव एक तरफ तलाऊ पर भात तवे रखे गये । तथा एक तरफ ऊँचे मंचान पर बादशाह बैठा । पृथ्वीराज प्रायः, हथकड़ी-बेड़ी हटा दी गई । प्रत्येक चढ़ाते नमस्कार धनुष टूट गए । आश्रित उन्हें उनका मूल धनुष वापस



दिया गया। तुरन्त प्रत्यचा चढ़ाई एव धनुष-बाण लेकर तैयार हुए। उस समय चन्द्रकवि ने अपनी भाषा में यह दोहा सुनाया—

चार बांस चौईस गज, अगुल अष्ट प्रमाण।  
मार-मार मोटे तवे, मत चूके चौहान ।

चौहान सारा मर्म समझ गया। ज्योंही तबों पर ककर मारे गये और वादशाह ने उत्साह-वर्धक शावाश शब्द कहा, शब्दवेधी वीर पृथ्वीराज ने उसी शावाश शब्द के आधार पर इतना जोरदार बाण मारा कि वादशाह मरकर ओधे मुह गिर पडा। रंग में भग हो गया और हाहाकार मच गया। मुसलमान ज्योंही पृथ्वीराज को मारने दीडे। चन्द्र-पृथ्वीराज परस्पर एक-दूसरे की तलवार में मर गये।

—राजपूती कथाओं ने

(ज) धर्मकला—

१ सच्चा कला धम्मकला जिणाड ।

धर्मरत्ना सब कलाओं को जीतनेवाली है ।

२. वाचत्तरिकलाकुसला, पटियपुरिसा अपटिया चैव ।

सर्वकलाओं पवरं, धम्मकला जे न जाणंति ॥

एकतर कलाओं में निपुण पण्डित पुरुष भी यदि सब कलाओं में श्रेष्ठ धर्मकला को नहीं जानते तो वे गाम्भव में अस्तित्व ही हैं ।

(क्ष) कलाकार—

- १ जीवन सब कलाओं मे श्रेष्ठ है। जो अच्छी तरह जीना जानता है, वही सच्चा कलाकार है। —महात्मा-गांधी
- २ कलाकार बनने के लिए शर्त है—मानव मात्र के प्रति प्रेम, न कि कला-प्रेम। —टालस्टाय
- ३ कलाकार जैसी वस्तुएँ हैं, वैसी नहीं देखता, अपितु वैसी देखता है, जैसा वह स्वयं है। — अल्फ्रेडडानेन
- ४ इस भरतक्षेत्र के आदि कलाकार श्री आदिनाथ भगवान् थे। उन्होंने ही पुरुषों की २ तथा स्त्रियों की ६४ कलाएँ बतलाई हैं।

(समवादाग ७२ तथा कल्पवृक्ष मे कलाओं का वर्णन है)



१ वाक्य रसात्मक काव्यम् ।

—साहित्यदर्पण

रमयुक्त वाक्य को काव्य-कविता कहते हैं ।

२ कविता भावनाओं से मजी हुई बुद्धि है ।

—प्रो० विल्सन

३ कविता सर्वोत्तम मनस्वियों के सर्वाधिक आनन्द के क्षणों का रिकार्ड है ।

—शैली

४ कविता केवल कहने का सुन्दर और प्रभावशाली तरीका है ।

- मेय्यु आर नोल्ड

५ कविता थोड़े शब्दों में महान् जक्ति बनाती है ।

—एमसन

६ च उच्चिद्रे कव्ये पणजने, त जहा—गद्रे, पद्रे, कत्ये, गेए ।

—स्यानाम ८।४।३७६

कविता चार प्रकार की रहती है—(१) गद्य, (२) पद्य, (३) त्र्यामय, (४) गेय—(गायें योग्य) ।

★

१. नरत्त्व दुर्लभ लोके, विद्या तत्र सुदुर्लभा ।  
कवित्व दुर्लभ लोके, शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा ॥  
जैसे—मनुष्यजन्म दुर्लभ है, और उसमें विद्याप्राप्ति सुदुर्लभ है—उसी प्रकार कवित्व दुर्लभ है, लेकिन कवित्वशक्ति का मिलना तो बहुत ही दुर्लभ है ।
२. कविता सू ससार में, अमर वणै है नाम,  
कवि मरै, पणनही मरै, कविवाणी अभिराम ।  
—सावधानी से समुद्र १८५
३. का विद्या कविता विना ।  
कविता के बिना विद्या में क्या है ।
४. कविता का जामा पहनकर नृत्य और भी चमक उठता है ।  
—पोष
५. केषा नैषा कथय कविता-कामिनी कौतुकाय ?  
बताओ ! यह कवितारूपी कामिनी किनके लिए कौतुक का कारण नहीं मंगती ?

★

१ सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ।

—मर्तृहरि-नीतिशतक २१

यदि श्रेष्ठ कविता है तो फिर राज्य में क्या है ।

२ सरसा सालङ्कारा, सुपदन्यासा सुवर्णमयमूर्ति ।

आर्या तथैव भार्या, न लभ्यते पुण्यहीनेन ॥

—प्रसंगरत्नावली

मरस, अलङ्कारसहित अर्थात् अच्छे वाक्य को समझानेवाली गुणमहिन, अच्छे पदों की रचनावाली एव अच्छे वर्णों— अक्षरोवाली ऐसी आर्या (एक प्रकार की पद्यमय कविता) और भार्या पुण्यहीन को नहीं मिलती । भार्या के पक्ष में अलंकार का अर्थ आभूषण है, सुपद का अर्थ अच्छे पद हैं और सुवर्णमयमूर्ति का अर्थ नोने की-भी पुतली है । (यह द्वयर्प काव्य है) ।

३. सा कविता सा वनिता, यस्या. श्रवणेन दर्शनेनापि ।

कविहृदय विद्हृदयं, सरल तरलं च सत्त्वर भवति ॥

वही कविता, कविता है, जिसे सुनने में कवियों का हृदय मरम हो जाये । वही वनिता, वनिता है, जिसको देखते ही मनुष्य का हृदय चंचल हो जाय ।

४ महज और मोधी हूँ, ऊँचा भाव यद्येष्ट ।

रग वर्ग मुन्य बोलता, वाणी कविता श्रेष्ठ ।

स्वर पूरा बैठे नहीं, तुक्का मिलण न पाय ॥

भटकै भाव जग्या विना, तो फिर कविता नाय ॥

—साबधानी रो समुद्र १८११-२२

५ कूर्पासकेनार्धतिरोहिती कुचौ,

रम्यौ रमण्या. कविताक्षराणि च ।

अर्ध निगूढानि सुशोभितान्यल,

नात्यन्तगूढानि न वा स्फुटानि ॥

कचुकी से आधे ढके हुए म्त्री के म्न्नवत् कविता के अक्षर भी अर्ध-आच्छादित हो शोभा देते है । अत्यन्त-गूढ अथवा अत्यन्त-स्पष्ट अच्छे नहीं लगते ।

६ कविता ऐसी चाहिए, ज्यो कासे का थाल ।

तनिक ठेस से अति सरस, ध्वनि गू जे चिरकाल ॥

७. वास्तविक हार्दिकता मे पैदा हुड कविता हमेशा शरीफ और ऊची बनती है । —ऐ ए हाफिन्स

८ किसी उत्कृष्ट कवि की कविता भी यदि रामनाम मे रहित हो तो नग्न म्त्री की तरह वह शोभा नहीं देती ।

— रामचरितमानस

९ पुराणमित्येव न माधु सर्वं,

न चापि काव्य नवमित्यवयम् ।

सन्त परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते,

सूट. परप्रत्ययनेयवृद्धि ॥

— मानदिफाग्निमित्र नाटक ११२

पुराणा होने मे नभो काव्य अच्छा नहीं होता और नया होने मात्र मे शक्य नहीं होता । एत म्स्वगुण दोनों को परीक्षा

करके अच्छे को स्वीकार करते हैं, किन्तु भ्रूख व्यक्ति दूसरो के विश्वास पर चलता है ।

१०. किं कवेस्तस्य काव्येन, किंकाण्डेन धनुष्मता ।  
परस्य हृदये लग्न, न घूर्णयति यच्छिरः ॥

—शाङ्गधर

क्या है उस कवि के काव्य में और क्या है उस धनुष्य-बाण में,  
जो हृदय में लगकर दूसरे का मिर न हिला सके ।

- ११ कविता समझनेवालो की अपेक्षा करनेवाले ज्यादा हैं ।  
एक अच्छा पद्य समझने की अपेक्षा एक रद्दी-सा पद्य  
लिखना आसान है ।

—मान्देन

★

- १ काव्य करोपि किमु ते सुहृदो न सन्ति,  
ये त्वामुदीर्णपवन न निवारयन्ति ।  
गव्य घृत पिव ' निवातगृह प्रविश्य,  
वाताधिका हि पुरुषा कवयो भवन्ति ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार ३६

क्या बहती हुई वायु को रोबनेवाने तेरे कोई मित्र नहीं है,  
जो तू कविता करने लगा है । जहा इया न लगती हो, ऐसे  
मकान में घुमकर गाय का घी पाने ' अधिक वायुवाने पुरुष  
ही कवि होते हैं ।

काव्य में दोष देखनेवाले व्यक्ति—

- २ अतिरमणीये काव्ये, पिशुनो दूषणमन्वेपयति ।  
अतिरमणीये वपुषि, घ्नणमिव मक्षिकानिकर ॥

—इन्दुमोस प्रुड

जैसे अति सुन्दर स्त्री में भी मच्छिका का घ्न-वाप को गौत्रती  
है, उसी प्रकार चाहे काव्य कितना ही मनोहर क्यों न हो,  
वृत्तव्यक्ति उसमें दोष देगा करता है ।

- ३ अतिरमणीये काव्ये, पिशुनो दूषणमन्वेपयति ।  
सुन्दरमणिमयभुवने, पश्यति रन्ध्र पिपीलिका सततम् ॥  
जैसे रत्नों के सुन्दर गहन में भी चींटिया कियों को देखती



रहती हैं, उसी प्रकार सुन्दर काव्य में दुष्टव्यक्ति दोष ही देखता है।

४. कर्णामृत काम्यरसं विहाय, दोषेषु यत्नो सुमहान् खलस्य ।  
अवेक्षते केलिवन प्रविष्टः, क्रमेलकः कण्टकजालमेव ॥  
कानो में अमृततुल्य लाच्यरस को न लेकर दुष्टपुरुष दोष देखने का ही महान् प्रयत्न करते हैं। जैसे—केलिवन में घुसकर भी ऊट काटोवाले वृक्ष की ही खोज करता है।
५. जानाति हि पुनः सम्यक्, कविरेव कवे. श्रमम् ।  
कविता करने में कवियों को कितना परिश्रम करना पड़ता है,  
वह कवि ही जानता है।

- १ हमारी अन्तस्थ भावनाओं को जागृत करने की जिनमें शक्ति हो, वे कवि हैं । —गांधी
२. कवि वे हैं—जो फूलों से महकते विचारों को उतने ही रंगीन शब्दों में लिखते हैं । —श्रीमती क़ूडनर
- ३ वे कवि हैं—जो प्रेम करते हैं, जो महान् सत्यों की अनुमति करते हैं और उन्हें कहते हैं । —बेली
- ४ कवि का सबसे बड़ा गुण नई-नई बातों का सूझना है ।  
—महावीरप्रसाद द्विवेदी
५. कवि बणाया नहि वणै, सहज - स्वभावी होय ।  
स्वाभाविकता कवि तणी, अजब चीज जग जोय ॥  
—सावधानी रो समुद्र १८।१
- ६ कोई भी अच्छा आदमी हुए बिना अच्छा कवि नहीं हो, सकता । —बेनजॉन्सन
- ७ ऐमा कोई भी व्यक्ति आज तक महान् कवि नहीं हुआ, जो कवि होने के साथ-साथ दार्शनिक न हुआ हो ।  
—बोत्तरिज
८. कवि करोति पद्यानि, लालयत्युत्तमो जनः ।  
तरु प्रचूते पुष्पाणि, मस्त्वहति नीरभम ॥  
—प्रमदरत्नावली

कवि पद्यो को बनाता है और उत्तम व्यक्ति उन्हें लखाता है ।  
जैसे—वृक्ष पुष्पो को उत्पन्न करता है और हवा उनकी  
नुरभि को फैलाती है ।

६. सग्रामेषु भटेन्द्राणां, कवीना कविमण्डले ।

दीप्तिर्वा दीप्तिहानिर्वा, मुहूर्तेनैव जायते ॥

सोजप्रबन्ध १५०

सुभटो का सग्राम में और कवियों की कवि-मण्डल में शोभा या  
कुशोभा मुहूर्तमात्र में ही हो जाती है ।

- १ जयन्ति ते सुकृतिनो, रमसिद्धा कवीश्वरा ।  
नास्ति येषा यश - काये, जरा-मरणज भयम् ॥  
—शाङ्गधर १६६ तथा मत्तृहरि-नीतिशतक २४  
वे पुण्यशान्ति एव रमसिद्ध कविराज विश्व मे विजयी होते हैं,  
जिनके यश रूप शरीर को कभी जरा-मरण का भय नहीं है ।
- २ अपारे काव्यनसारे, कविरेक प्रजापति ।  
यथाऽस्मै रोचते विष्णु, तथेद परिवर्तते ॥  
—उत्तर-रामचरित उदाहार, पृ० ६  
इस अपारकाव्य-नसार मे कवि एक प्रजापति हैं । इन्ने जैसा  
रुचता हैं, नगार वैसा ही बन जाता हैं ।
- ३ कवयो ह्यर्थ विनापीश्वरा ।  
कवि लोग धन के बिना भी ईश्वर हैं ।
- ४ सच्चा कवि बहुत कुछ पैगम्बर के समान है ।
- ५ कवि आत्मा का चित्रकार है ।  
—आरजफ टिजाइगी
- ६ रामायण-महाभारत के रचयिता शब्द के चित्रकार नहीं  
थे, मानव-स्वभाव के चित्रकार थे । —गाथी
- ७ कवि को अगुनियों ने शब्द नामक उट्टन है । —जोबर्ट

१ वर्तमान का आनन्द लेना, भविष्य के प्रति लापरवाही, समझदार की-सी बातें और बेवकूफ की-सी हरकतें, हर देश में कवि का यह एक ही स्वरूप है ।

—गोल्डस्मिथ

२. चरन धरत चिन्ता करत, चित्त न भावत और ।  
सुवर्ण को शोधत फिरै कवि व्यभिचारी चोर ॥

३ कवय किं न पश्यन्ति, किं न कुर्वन्ति योषितः ।  
मद्यपा किं न भाषन्ते, किं न भक्षन्ति वायसाः ॥

—चाणक्यनीति १०१४

कवि क्या नहीं देखते, स्त्रियाँ क्या नहीं करती, रागवी क्या नहीं बहते तथा काक (कीटा) क्या नहीं खाते ?

★

१. कवि की आँख स्वर्ग से भूतल और भूतल से स्वर्ग तक को देख लेती है । —शेक्सपियर

२. जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि । —हिन्दी कहावत

३. स्तनी मासग्रन्थी कनककलशावित्युपमिती ।

मुख श्लेष्मागार तदपि च शशाङ्केन तुलितम् ॥

त्रवन्मूत्रक्लिन्न करिवरकरस्पर्धि जघन-

महो ! निद्य रूप कविजनविशेषैर्गुरु कृतम् ॥

—भर्तृहरि-वैराग्यशतक २०

स्त्रियों के स्तन घान की गांठें हैं, उन्हें स्वर्ण-कलश के समान कह दिया । मुग मूत्र-ग्रन्थार का घर है, उसे चन्द्रमा तुल्य कह दिया तथा जाघें, जो मूत्र में भीगी रहती हैं, उन्हें हाथी की सूट में भी बटकर बतला दिया । अहो ! कविजनों ने ऐसे निदनीय रूप को भी कितना बड़ा-बड़ाकर बताया है ?

४. लक्ष्मापते संकुचित यशो यद्,

यत्कीर्ति पात्र रघुराजपुत्र ।

स सर्वमेवादिकथे प्रभावो,

न कोपनीया कवय क्षितीन्द्रैः ॥

—पितृहृषपि

रावण का यम नकुचित रहा और राम सुयम के पात्र बने ।  
यह मारा आदिकवि श्री वाल्मीकि का ही प्रभाव है । अतः  
राजाओं को चाहिए कि वे कवियों को कभी नाराज न करें ।

५. भीमा तू भाठोह, मोटा भाखर मायलो ।

कर राखू कठोह, शकर ज्यू सेवा कह ॥

६. राणा तू तो राख, मोटा चूल्हा मायली ।

कुल उजवालण काख, कासी ज्यू करणो शरा ॥

७. घर सूं भूखा नीकल्या, चूक गया सल्ला ।

खाटू भाटा नीपजै, अन्न कठै अल्ला ॥

—राजस्थानी सोरठे

८. यह काम है केवल कवियों का, पानो मे आग लगा देना ।

पत्थर को मोम बना देना और आग में वाग लगा देना ॥

—पृथ्वीराज नाटक

## २३ कवियों के लिए विचारणीय बातें

- १ कविता करणी खेल नहिं, खरो खिलाणो साँप ।  
 भूल कर्या मुख पर लगै, आ चनपट चुपचाप ॥  
 दग्धाक्षर रो राखणो, पूरो-पूरो ह्याल ।  
 रतनचन्दजी नी परै हुवै अन्यथा हाल' ॥  
 नही करणी ले झ-ह-र-भ-ख, गन्या की गुरुआत ।  
 पण स्तुतिया मे खासकर, नहिं राखीजै ह्यात ॥

—सावधानी मे समुद्र, १८-४-५-६

१. "रतनचन्द नागोर मे रे चेतनिया ।"—इस पद्य की रचना के बाद मुनि रतनचन्द जी ने विहार किया एवं जङ्गल में योगों में उनके रूप छीन लिए । यहाँ नागोर मे अर्थात् नागोर नहर मे—यह अर्थ है, तैतिन 'नागो-ग्मे' अर्थात् नङ्गा गेन ग्हा है—यह अर्थ भी नियमता है । इस प्रकार अनिष्ट ज्यं निवारण सगे—ऐसी पद्यरचना में कवि को रचना चाहिए ।

★



- १ विद्वत्कवयः कवयः, केवलकवयस्तु केवल कवयः ।  
कुलजा या सा जाया, केवलजाया तु केवल माया ॥

—प्रमग-रत्नावली

विद्वान् कवि ही वास्तव में कवि है। नाम के कवि तो कवि अर्थात् बन्दर के तुल्य हैं। कुलीन-पत्नी ही पत्नी है, दूगरी तो केवल माया रूप हैं।

- २ गणयन्ति नापशब्दं, न वृत्तभङ्गं क्षयं न चार्थग्नयं ।  
रसिकत्वेनाकुनिता, वेद्यापतयः कुकवयश्च ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६

जो रसिकता में आवृत्त होकर अपशब्द, वृत्तभङ्ग एवं अर्थक्षय को नहीं गिनते, वे या तो वेद्यापति हैं या कुकवि हैं।

३. कविरनुह्रति च्छाया, पदमेक पादमेकमर्थं वा ।  
सकलप्रबन्धहर्षं, कविताकर्षं नमस्तस्मै ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६

कवि छाया का हरण करता है, ममस्वाप्ती आदि में एक पद अथवा आधा पद भी छत्रण करने सेना है, किन्तु वह कवि तो नमस्कार करने के ही योग्य है, जो दूसरों के वाक्य में ममता प्रबन्ध ही उठा सेना है।

४. इनै-विनै रा हर्फं ले, अपणो नाम लगाय ।  
जे जग मे वाजै कवि, ते तो चोर कहाय ॥  
दूजारा काव्या तणी, नकल करो मत कोय ।  
नकल करणवाला कवि, जग मे नकली होय ॥

—सावधानी से समुद्र १८१३-२२



१ विद्वत्कवय कवयः, केवलकवयस्तु केवल कवयः ।

कुलजा या सा जाया, केवलजाया तु केवल माया ॥

—प्रसंग-रत्नावली

विद्वान् कवि ही वास्तव में कवि है । नाम के कवि तो तपि अर्थात् बन्दर के तुल्य हैं । कुलीन-पत्नी ही पत्नी है, दूनरी तो केवल मायारूप है ।

२ गणयन्ति नापशब्द, न वृत्तभङ्ग क्षय न चार्थन्य ।

रसिकत्वेनाकुलिता, वेण्यापतय कुकवयश्च ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६

जो रसिकता में आवुल होकर अपशब्द, वृत्तभङ्ग एवं अर्थक्षय को नहीं गिनते, वे या तो वेण्यापति हैं या कुकवि हैं ।

३. कविरनुहरति च्छायां, पदमेक पादमेकमर्धं वा ।

सकलप्रबन्धहर्षो, कविताकर्त्रो नमस्तस्मै ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६

कवि छाया का हरण करना है, ममस्वाप्ति आदि में एक पद अथवा आधा पद भी प्राण बन जाता है, किन्तु वह कवि तो नमस्कार करने के ही योग्य है, जो दूसरों के कान में ममस्वा प्रबन्ध ही उठा जाता है ।

४. इनै-विनै रा हर्फ ले, अपणो नाम लगाय ।  
जे जग में बाजै कवि, ते तो चोर कहाय ॥  
दूजारा काव्या तणी, नकल करो मत कोय ।  
नकल करणवाला कवि, जग मे नकली होय ॥

—सावधानी से समुद्र १८१३-२२



## २५ रसिकश्रोताओं के अभाव में कवि

१. इतरपापगतानि यदृच्छया,  
 वितर तानि सहे चतुरानन ।  
 अरसिकेषु कवित्व - निवेदन,  
 मिरमि मा लिख । मा लिख । मा लिख ॥

हूँ ब्रह्म भगवन् । दूगरे मैदणो पापो की बमशीन भले ही कर  
 दे, मैं महन कर न गा, लेकिन अरसिको के आगे कविता  
 मुनाना मेरे भाग्य में कभी मत लिख । कभी मत लिख ।  
 कभी मत लिख ॥

२. कविराजा ! खेती करो, हल स्यु राखो हंत ।  
 गीत जमी में गाड द्यो, ऊपर रालो रेत ॥

—राजस्थानी दोहा

★

ससार से विरक्त होने के पश्चात् 'कवि गंग' को एक वार वादगाह अकवर ने एक समस्या "करो मिलि आम अकव्वर की" की पूर्ति के लिए कहा—कवि गंग ने तत्काल उक्त छन्द द्वारा समस्या की पूर्ति कर दी ।

एक कु छोड दूजे कु भजे,

रसना जु कटो उस लव्वर की ।

अव के गुनिया दुनिया कु भजे.

मिर वाघत पोट अटव्वर की ॥

कवि गंग तो एक गोविन्द भजे,

कछु शक न मानत जव्वर की ।

जिनको हरि की परतीत नही,

नो 'करो मिलि आम अकव्वर की' ॥१॥

अकव्वर वे अकव्वर ! नराहदा नर ।

के होजा मेरी न्यी, के होजा मेरा वर ।

एक हाथ मे घोडा, ओर एक हाथ मे खर ।

कहना है नो कह दिया, अब करना है नो कर ॥२॥

उक्त छन्द को सुनते ही वादगाह प्रोद्धित हो उठा और उगने कवि 'गंग' को हाथी के पैरो तने कुचलवाकर

मरवा दिया । कवि के पुत्र को जब यह समाचार सुनाया गया तो उसने निम्नलिखित छन्द रचकर लोगों को चकित कर दिया ।

देवन को दरवार भयो जब,  
 पिंगल छन्द वनाय सुनायो ।  
 काहू सो अर्थ दियो न गयो,  
 तव नारद ने परसग वतायो ॥  
 मृत्युलोक मे गग गुनी इक,  
 ताहि को नाम सभा मे मुनायो ।  
 चाह भई परमेश्वर के तव,  
 गग कु लेन गणेश पठायो ॥३॥

- १ सर्वज्ञकल्पै. कविभि पुरातनै-  
 र्वीक्षित वस्तु किमस्ति साम्प्रतम् ।  
 ऐदयुगीनस्तु कुशाग्रधीरपि,  
 प्रवक्ति यत्तत्सदृश स विस्मय ॥

नव्यं जतुल्य पुराने कवियो ने न देखी हो, ऐसी वस्तु आज है  
 ही क्या ? आज के तुच्छ-वृद्धिवाले व्यक्ति यदि उनके समान भी  
 कुछ कह दें, तो वह आश्चर्य है ।

२. सूर सूर तुलसी जधी, उडुगण केशवदास ।  
 अब के कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकाश ॥
३. आधुनिक कवि न्याही में पानी ज्यादा मिलाने हँ ।

\*



## महान् कवि

२८

१ अनुसिद्धमेन कवयः ।  
कवियो मे सर्वश्रेष्ठ मिद्धमेन दिवाकर हैं ।  
— हेमचन्द्राचार्य

२. कविरमर कविरचलः, कविरभिनन्दनश्च कालिदासश्च ।  
अन्ये कवयः कपयः, उचापलमात्र पर दधति ॥  
— सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६

कवि तो वास्तव में अमर, अचल, अभिनन्दन और कालिदास हैं । दूसरे कवि तो मात्र चपलता धारण करते हैं, अतः बन्दर के समान हैं ।

३. कवयति पण्डितराजे, कवयन्त्यन्येऽपि भूरिविद्वांसः ।  
नृत्यति पिनाकपाणी, नृत्यन्त्यन्येऽपि भूत वैतालाः ॥  
— सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६

जब 'पण्डितराज-जगन्नाथ' कविता करते हैं, तब अन्य अनेक विद्वान् भी कविता करते हैं, किन्तु वे ऐसे नगते हैं मानो ! जगर के नाचते नमय अन्य भूत-वैताल नाच रहे हैं ।

## २६ विभिन्न भाषाओं के महान् कवि

- १ सस्कृत—फालिदास, हिन्दी—तुलसीदास,  
 उर्दू—गालिव, बंगाली—रवीन्द्रनाथ टैगोर,  
 अंग्रेजी—शेक्सपियर, फारसी—शेखसादी,  
 जर्मन—गायथे, ग्रीक—होमर,  
 इटालियन—दाते, फ्रांसीसी—बुलीप्रोद होमे ।
- २ प्राचीनकाल के प्रमुख हिन्दी कवि—  
 चन्द्रवरदाई, कवीर, सूरदास, तुलसीदास, जायसी,  
 केसवदास, बिहारी, भूपण आदि ।
- ३ आधुनिक हिन्दी के प्रमुख कवि—  
 भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र, जयगजरप्रसाद, निराला, मुमिता-  
 नन्दन पत, महादेवी वर्मा, मैत्रिणीशरण गुप्त, रामधारी  
 सिंह 'दिनकर', बन्धन', नरेन्द्र वर्मा, नीरज आदि ।
- ४ उर्दू के प्रसिद्ध कवि—  
 गालिव, जाय, उफ्तान, तारी, जैज निमन आदि ।
- ५ इंग्लिश के प्रसिद्ध कवि—  
 जम जानसन, जोहन ब्राउन, रॉबर्ट ब्रिन्ट, विन्डियम-  
 पेंड्रार्थ, जॉन डनर्न, टेनिसन शेक्सपियर जोहन  
 मल्लप्रसाद आदि । —विन्डियम, पृष्ठ ६२

- १ 'इतिहास' की अपेक्षा 'कल्पना' का स्थान ऊँचा है। तुलसीदासजी ने कहा है—'राम' की अपेक्षा 'नाम' बड़ा है। —गाथा
२. कल्पना ज्ञान में भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। —आईंस्टोन
३. मानवता अपनी कल्पना से ही आसित होती आ रही है। —नेपोलियन
४. कल्पना आत्मा का नेत्र है। —जुटंब
५. कवित्व जैसी मुन्दरता न तो अप्सरा में है, न नन्दनवन के पारिजात में है, न पूर्णिमा के चन्द्र में है, न प्रातःकाल के दिग्मण्डल में है और न मध्या के अरुणित आकाश में है। कवित्व अघकार में दीपक है, दरिद्र का धन है, भूख में अन्न है, व्यास में घन है, अघे की लाठी है, धके की सवारी है, दुःख में धैर्य है और विरह में मिलन है। बुरे को भला और भले को बुरा करना उसके लिए मामूली बात है। भाषा-अभाव उनका मुख्य शत्रु था। बाद में भाषा प्रकट हुई। उनमें अभाव की भाषा। पुण्डरीक गणधर ने भाषा में विवाह किया। द्वादश-प्रज्ञा बताया। उत्तम में मिथ्या नाम की कन्या प्रकट

हुई। कवित्व ने उनसे विवाह किया, उसका नाम कल्पना रखा। कवि लोग इसका आदर करने लगे। जिम समय यह पति (कवित्व) के साथ बन-ठनकर निकलती है, बड़ो-बड़ो का सिर चक्कर खाने लगता है।

६. जो बिना अध्ययन के केवल कल्पना का आश्रय नेता है, उसके पांगें तो हैं, किन्तु पग नहीं है। —जुबटं
७. अपवित्र कल्पना उतनी ही बुरी है, जितना बुरा अपवित्र कर्म। —विशेषानन्द



## १. पान और कूपल—

पान पडतो देख नै, हसी जु कूपलियाह ।

मो वीती तो वीतसी, धीरी वप्पडियाह ।

—अनुयोगद्वार प्रमाणाधिकार के आधार पर

## २. कली और फूल—

हसती हुई कली से फूल ने कहा—कैसे हस रही हो ?

कली—फूल जो बनने जा रही हूँ । फूल—फूल बनने पर

माली तोड़ लेगा । कली—खैर ! मिट्टी में तो मिलना

ही है, किन्तु मरने से पहले किसी को सुवासित तो कर

दूँगी ।

## ३. द्वार और क्षरोखा—

मैं बड़ा हूँ, मेरा सम्मान है, मेरे द्वार ही प्रवेश-निर्गम

होता है—इसने द्वार ने कहा । क्षरोखा वाला—क्या अभि-

मान करने हो ? बड़े होने पर भी स्वामी का तुम्हारा

विश्वास नहीं है । मन पडने ही अथवा बाहर जाते ही

तुम्हें बन्द कर दिया जाता है, क्योंकि तुम चार-पातुओं

तो भी जाने से नहीं रोकते, मैं स्वामिभक्त और विश्वासी

होने के कारण हरवक्त खुला रहता हूँ, और स्वामी को धूप-हवा आदि देता हूँ ।

४ सुई से चलनी ने कहा—

तेरे में तो छिद्र है । सुई बोली—मेरे में सिर्फ एक छिद्र है, तेरे में तो सारे छिद्र ही छिद्र हैं, पहले उनको तो देख !

५ टंगोर की कल्पनाएँ—

(क) ऊपर में गिरता हुआ पानी गाता है कि जय मैं स्वतन्त्र हुआ तभी तो मधुर गान कर रहा हूँ । (ऐसे ही विकार-मुक्त आत्मा आत्मिक मंगीत कर सकती है ।)

(ख) फूल ने फल में पूछा—तू मेरे में कितना दूर है ? फल ने कहा—मैं तेरे दिव्य में ही छिपा हूँ ।

(इसने कर्म के पीछे, फल निश्चित है— गृह नमजो !)

(ग) सत्ता ने विश्व में कहा—तू मेरा है । विश्व ने मान लिया किन्तु प्रेम ने सत्ता को कैद करके फिर विश्व में कहा कि मैं तेरा हूँ । नम्रवाणी सुनकर विश्व ने प्रेम को अपना नपूण गान्ध्याय दीया ।

(सत्ता फल के शरीर को और प्रेम प्रणय के दिल को— भोजन करता है । शरीर तो सत्ता के चलाये प्रेम के काम आता है ।)

६ गन्धर्वदिया के गल चित्र—

(क) मित्रता हूँ ही मित्रता उड़्याँ र दीये र सुँडे लार हूँ तो मेन दी । दीयो चट्ट-चट्ट कर' र दीयो—वया

आदमी इयाँ के करै है ? मिनख हँस' र बोल्यो—अरै नू हो के ? मनै अघेरै में सुझ्यो हो कोनो !

(ख) बायरै कयो—पीपल रा पानडां, मैं आऊँ जणां ही थाँकें हताई हुवँ के ? पानडा बोल्या—पूठ पाछँ वात करणरी म्हांरी आदत कोनी !

(ग) तिरियाँ-मिरियाँ भरी तलाई रै दूवढी आ' र गलवाध घालली । लेरां चिड' र बोली—तनै कुण नू ती हो ? बीच मे ही मीडको टर-टर कर' र बोल्यो—गैली, अपणायत हुवँ जका नू तै नै को अड़ीकै नी !

(घ) मैणवत्ती कयो—डोरा मैं थारैस्यू कत्तो मोह राख' हू ? मीधी ही कालजै मे ठीठ दीन्ही है । डोरो बोल्यो—म्हारी मरवण, जणां ही तिल-तिल बनू हू ।

(च) मिनख कयो—उलझ्योडी जेवडी, मैं तनै मुलझा' र धारो कत्तो उपगार कर' हू ! जेवड़ी बोली नू किम्यो' क उपगारी है जको म्हारै स्पू छानू कोनी । कोर्ट और नै उलझाण खातर मन्ने मुलझातो हूसी !

(छ) पानडा कयो—डालां म्हे नही हता तो ये कत्ती अपगोगी लागती ? फूल कयो—पानडां, म्हे नही हता तो ये कत्ता अटोला लागता ? पान कयो—फूलां म्हे नही हता तो थांगे जलम ही अपगोध जानो ? फूल मे टिप' र बैद्यो योज मगलां री वात मुप' र बोल्यो—भोदां, मैं नही हंतो तो ये कोर्ट जोनी हता ।

- ) जगत रो दीप देखतां-देखतां आख अघाउंजी ही कोनी ।  
 एक दिन एक छोटे सो' क रावलियो आख ने देखण  
 न आंख मे बडग्यो । आंख रोस स्यू लाल हुगी पण  
 रावलियो क्यां रो डरै हो ? आखर मे आंख रोवण  
 लागगी जद लार छोडी ।
- ग) दही पूछ्यो—झेरणां, रोजीनां मय-मय' र म्हारो माजतो  
 विगाडो, की थारे ही पल्ले पडै है' क नी ? झेरणो बोल्यो—  
 कीड्यां तो कालजो रात्यू चूटै ही है और' न की  
 देख्यो नी ।
- घ) हँसतो-हँसतो ही फूल अचाणचूको झडग्यो, पानढा वेली-  
 ताप कर' र पूछ्यो—आचानडी मीत कु'नें स्यू आई ?  
 रुँध रो' र बोल्यो—कठीनें स्यू बतारुं ? को जाती रा  
 खोज मँडै न को जाती रा ।
- ङ) नू तडा बोल्या—देख्यो रै छाजना थारो न्याय । म्हाने  
 तां फटक' र परे वगा दिया' र आ नागो छोउणियां  
 दगावाज दाणां नै कालजिये रो कोर कर' र राख्या है ?  
 छाज नो कयो—जेफां, थां नै तो हू वे कसूर मान' र  
 नी छोद्या है, आं (विमवानघात्या) तांटे तो थाकी' र  
 उँगनां त्यार है ।
- च) गोटो बोल्यो—मनें कादणे ताई तो नू नागो मुई नै हो  
 नै भाग्यो, तो मिनघाचारो तो राग्या कर ? मिनघ  
 कयो—रागो कांटे दोष ? नागे रो गग नागे नू ही  
 दवे । सुदटा देव' र ननचूगडा पुजारा ।



- (ड) वाँस कयो—मिनख । म्हारै फूल लागै न फल फर, मनै किस्यै लालच जडा-मूल स्यूँ काटै है ? मिनख बोल्यो—  
गुणहीण री थोथी ऊँचाई म्हारै' स्यूँ कोनी देखीजे ।
- (ढ) कुम्हार काचै घडै ने चाक स्यूँ उतारै' र न्यावडै रो उकलती भोभर मे त्या नाख्यो । घडो रो' र बोल्यो—  
विधाता आ काई करी ? कुम्हार हम' र कयो—पणि-  
हारी रै सिर पर इया सीधो ही चढणो चावै हो के ?
- (ण) नीमडै रो रुख मतीरै री बेल नै हँस' र कयो—म्हारो टांखी तो आभै नै नावडै है' र तूँ धूल पर ही पसरयोटी पडी है ? मतीरै री बेल बोली, पैली थारै फल वानी देख, पछै म्हारै स्यूँ बात करीजे ।

—'गलगच्छिया' पुस्तक से

१. 'कहावतो' को 'लोकोक्ति एव किंवदन्ती' भी कहते हैं ।
२. हरएक देश में अपनी-अपनी भाषा की कहावते होती हैं ।
३. कहावतो के अन्दर सीधे-सादे शब्दों में गंभीर ज्ञान निहित होता है ।
४. कई पुरानी कहावतो के निर्देशों में आज कुछ परिवर्तन भी हुआ है जैसे—(१) दीकरी ने गाय, दोरे त्या जाय । (२) दरजीनों दीकरो जीवे, त्यासुधी सीवे । (३) घोटो वाजे घम-घम, विद्या आवे छम-छम, (४) स्पष्टवक्ता नुखी भवेत् ।

१. साहित्यस्य भावः साहित्यम् । —मानु गुणाबराय  
जो हिन के भाव हो अथवा जिमने हिन का नपादम हो, उमे  
साहित्य कहते हैं ।
- २ विचारो का प्रकाशितरूप ही साहित्य है । प्रकाशन  
हृदय मे, म्यत्र मे, मुस्कान मे, वाणी मे एव मान मे  
होता है । —जमनालाल अंग
- ३ साहित्य दो प्रकार का होता है—मानविक और  
शास्त्रिक ।
- ४ वही काव्य और यही साहित्य चिरजीवी रहेगा, जिसे  
नाग मुगमता से पाकर पना सकेंगे । — महात्मा गांधी
- ५ नाचिक-साहित्य का मर्म एव मरल-भाषा मे निघना  
वहत कठिन है । —धनमुनि

६ साहित्यमर्गिकलाविहीन  
साक्षात्पशु पुच्छविपाणहीन,  
नृण न सादृश्यापि जीवतानन,  
तद्भागधेय परम पशुनाम् ।

—भारुहरि नागिक १२

जो मनुष्य साहित्य एव मर्गिक की कला मे कृत्त है, पर जिना  
मर्गिक-वृत्त का साक्षात् पशु है । जो मृग-नाम पशुते दिना ही

जाता है, वह पगुओ का भाग्य है अन्यथा उन देशों को खाने के लिए नृग कहा से मिलते ।

- ७ अधकार है वहा, जहा आदित्य नहीं है,  
मुर्दा है वह देश, जहा साहित्य नहीं है ।

—मैथिलीशरण गुप्त

८. साहित्यपाथोनिधिरत्नलव्धयै ,  
केषा कवीना न करप्रसार ।  
लभ्येत वा नेति निजस्य भाग्य,  
उद्योगिना नो जहति प्रयत्नम् ॥

—मुनापितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६

साहित्य-त्नानर न रत्नों की प्राप्ति के लिए कौन कवि हाथ नहीं पसारते ? मिलना न मिलना तो भाग्य की बात है, लेकिन उद्योगी प्रयत्न करना नहीं छोड़ते ।

- ९ इंग्लिश के कुछ प्रसिद्ध साहित्यकार—

शेक्सपियर, मिन्टन, शैले, कीट्स, वॉल्सवर्थ, ब्राउनिंग,  
वर्नारिशा, कालरिज, जानमहार्थी, चार्लस टिक्वज,  
स्काट, आदि ।

—विश्वदरपण



कनकभूषण सग्रहणोचितो,

यदि मणिस्त्रपुणि विनियुज्यते ।

न च विरोत्ति न चाप्यवभापते,

भवति योजयितुर्बचनीयता ॥

—हितोपदेश २।७२

सोने के आभूषण में जोड़ने योग्य मणि यदि क्षीणा आदि धातु के आभूषण में लगाया जाय, तो न वह मधुर घ्वनि करता है और न ही सुशोभित होता है, प्रत्युत मयोजक की निन्दा होती है ।



- १ यदि तुम लेखक बनना चाहते हो तो लिखो ।  
—हर्षिव्देस
- २ विचारो अधिक, बोलो अत्यल्प और लिखो उमने भी थोड़ा ।  
—इटातियन लोकोक्ति
- ३ फानतू चीज मत लिखो ! जिममें पूरा मन लगे, पूरा रस मिले और पूरा डबकी आये, वही लिखो ! निखकर सम्पादक की दृष्टि में पढो और कमियाँ सुधार दो ! कुछ दिन बाद फिर पढो और नई बातें सूखे, उन्हे उगमे बहादो ! पहले समय सूजे की यह कुछ नहीं है, तो उमे तुरत फाटकर फेंक दो !
- ४ पंचमजार्ज ने २० पृष्ठ का एक भाषण लिखा । नेट्रो टरी उमे पढता गया और जार्ज कम करता गया । दोप पाच पृष्ठ रहे ! जार्ज का वह भाषण सर्वोत्कृष्ट माना गया ।
- ५ जो लेखक व यत्ता अपने भावों को छोटा करना नहीं जानता वह कभी सफल नहीं होता । —एम्पेन
- ६ निघने वे लोग है, जिनके अंदर कुछ दर्द है, अनुराग है, विचार है । जिनहोंने धन, भोग और विनाश को लक्ष्य बना लिया, वे क्या निघने ! —श्रेमण्ड

७. महान् लेखक अपने पाठक का मित्र व शुभचिन्तक होता है । —मंशाले

८. लेखको को मसी गहीदो के रक्तविन्दुओ से अधिक पवित्र है । —हजरत मुहम्मद

९. लेखक वे चीजें प्रायः कम ही लिखते हैं, जो वे सोचते हैं । वे केवल वे ही चीजें लिखते हैं, जो दूसरे सोचते हैं या सोचते होंगे । —एल्बर्ट ह्यू गार्ड

१०. विश्वविख्यात लेखक हॉमर और सुकरात बिल्कुल अनपढ़ थे । उनकी सभी रचनाएँ सुनकर अन्य लोगों ने लिखी थी । —पंडित पृष्ठ १६

११. ग्रन्थ को संक्षिप्त करनेवाले अनूठे लेखक—

मुप्रतिष्ठित नगर के राजा जितशत्रु की सभा में चार ऋषि आये ( १ ) अत्रि—आयुर्वेद के ज्ञाता ( २ ) बृहस्पति—नीतियाम्त्र के वेत्ता ( ३ ) कपिल—धर्मशास्त्र के विशेषज्ञ ( ४ ) पञ्चानन—अध्यात्मज्ञानी ।

ये सब अपने अपने विषय के ग्रन्थ बनाकर लाये थे । प्रत्येक ग्रन्थ में एक-एक नायक श्लोक थे । समयाभाव के कारण राजा ने उन ग्रन्थों को छोड़ने में मनाने की कला । ऋषि उन्हें ज्यों-ज्यों संक्षिप्त करने गये, राजा अधिक संक्षिप्त करने की प्रार्थना करता गया । अन्त में वे ग्रन्थ चार पत्रों में सप्त में प्रसृत किये गये । परन्तु निम्नलिखित थे—

(१) जीर्ण भोजनमात्रेय ,

हजम हो जाने के बाद भोजन करना--अत्रि ऋषि ने यह आयुर्वेद का सार कहा ।

(२) न्याय्या वृत्तिर्बृहस्पति ,

मनुष्य की प्रत्येक प्रवृत्ति न्याययुक्त हो—बृहस्पति ऋषि ने यह नीतिशास्त्र का तत्त्व बतलाया ।

(३) कपिल प्राणिनां रक्षा,

प्राणिमात्र की रक्षा करनी चाहिए—कपिल मुनि ने यह धर्मशास्त्र का निचोड़ मुनाया ।

(४) पाञ्चाल साम्यभाबना ।

प्राणिमात्र पर समभाव रखना चाहिये—पञ्चालऋषि ने यह अध्यात्मवाद का मूल मन्त्र दिखलाया ।

(राजा एव राज्यसभा चरित)

१२. इंग्लिश के प्रसिद्ध भारतीय लेखक—

स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, मंगोजिती नायडू, गान्धेय, जवाहरलाल नेहरू, हरीन्द्रनाथ चटर्जी, अरविन्द घोष, भुगत राज आनन्द, डाक्टर राधाकृष्णन् ।

- विवेकानन्द

१३. घुरे लेखक—

(क) घुरे लेखक वे हैं, जो अपने अनेक विचारों की अभिव्यक्ति दूसरों की सुन्दरभाषा के माध्यम से करते हैं ।

— डॉ० सी० विवेकानन्द

(ख) अपनी पुस्तकों की प्रशंसा करनेवाले लेखक अपने दन्तों की प्रशंसा करनेवाली भाषा के समान हैं । — टिप्पणियाँ





१. लेखनी मस्तिष्क की जिह्वा है। — सर्वेन्द्रिया
२. दुनिया में दो तरह की ताकते हैं—तलवार और कलम।  
आखिर तलवार हमेशा कलम से शिकस्त खाती है।  
—नेपोलियन
३. रीडिंग मेक्स ए फुल मैन,  
स्पीकिंग ए परफेक्ट मैन,  
राइटिंग एन एरजेक्ट मैन ॥ — बेकन  
अध्ययन मनुष्य को पूर्ण बनाना है, भाषण परिपूर्ण बनाता है  
और लेखन प्रामाणिक बनाता है।
४. लिखावट को देखकर व्यक्ति का स्वभाव जाना जाता है।  
—आन्मविक्राम पृष्ठ २०६
५. विज्ञान के अनुसार लिखते समय शरीर की पाच नों  
नगे संयुक्त होती हैं। — नेपोलियन
६. लेखनी पुस्तिका रामा, परहस्तं गता गता।  
कदाचित् पुनरायाति, नष्टा भ्रष्टा च चूम्विता ॥  
—मुभावितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६४  
तन्म-पुनन-शी—ये तीनों चीजें, हमारे के शरीरों में आने के  
बाद प्रायः चली ही जाती हैं। तदानीत् यापय भ्राती हैं तो  
पमश नष्ट, भ्रष्ट एव पु शिवा हीभ्य आती हैं।

- १ मस्तिष्क के लिए अध्ययन की उतनी ही आवश्यकता है। शरीर को जितनी व्यायाम की। —जे. एफ. एडीसन
२. प्रकृति की अपेक्षा अध्ययन द्वारा अधिक व्यक्ति महान् बने हैं। —सित्तरो
- ३ उन्नाहीमलिकन, वर्नाडिंगा व टैगोर ने स्कूल में विशेष शिक्षा नहीं पाई। चार्ल्सडारविन सर विलियम स्काट, व न्यूटन स्कूलों में नवरी भोटू थे। नेपोलियन अपनी कक्षा के छात्रों में ४० वें नंबर का था। उन सभी ने पुस्तकों के अध्ययन में ही योग्यता प्राप्त की थी।
- ४ नेपोलियन व मित्रदर लार्ड में भी पुस्तकें पढ़ते रहते थे।
- ५ अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति रजघेल्ड ह्यारटहाउस के आवासकाल में मध्याह्न तक आगतुकों ने पाँच-पाँच मिनट मिला करते थे। लेकिन पढ़ने के इतने प्रेमी थे कि एक व्यक्ति मिलकर जाता एक जब तक दूसरा व्यक्ति मिलने के लिए नहीं आता, उस क्षण्यल्प-अन्तरकाल में वे पुस्तक पढ़ने लग जाते। इस प्रकार उन्होंने समेकित पुस्तकें पढ़ लीं।

६. चीन के अध्वेता संचिग नोद न आजाय—अतः अपनी चोटी को एक लम्बी रस्सी द्वारा छत से बाँधकर पढ़ा करते थे ।  
—हिन्दुस्तान, जनवरी ७, १९६८

७. पढ़ने में सस्ता कोई मनोरञ्जन नहीं और न कोई खुशी उतनी स्थायी ।  
—लेडी मॉंटग्यू

८. अध्ययन हमें आनन्द और योग्यता देता है एव अलकृत करता है ।  
—फ्रांसिस बेकन

९. मनुष्य को प्रतिदिन पढ़ना चाहिए, पढ़े चाहे पंद्रह मिनट ही । प्रतिदिन १५ मिनट पढ़ा जाय एव प्रतिमिनट ३०० शब्द की रफ्तार में पढ़ा जाय तो प्रतिमास १ लाख ३५ हजार शब्दों की एक पुस्तक (लगभग २२५ पृष्ठ) की पढ़ी जा सकती है ।  
—घनशुनि

१०. तेज पढ़िये । इसका अभ्यास करानेवाली अमेरिका में ४०० प्रयोगशालायें हैं । विशेषज्ञों का कथन है कि साधारण व्यक्ति प्रतिमिनट २५० शब्द पढ़ले तो अच्छा ही है, किन्तु ४०० शब्द प्रतिमिनट पढ़ने में आनन्द आता है । बुद्धिमान को हजार से १८०० तक का अभ्यास करना चाहिए । —आपका व्यक्तित्व, पृष्ठ १६८

११. अध्ययनकाले ध्यानं—पारिष्वमन्वमन्सक्तता च न भजेत् ।  
—नीतिवाक्यामृत ११।१८

विद्याध्ययन के समय शारीरिक व मानसिक व्यसन तथा विनमृति से अन्वय ले जाना—ये सब नहीं करने चाहिए ।

१ मुष्टु आ-मर्यादया अधीयते इति स्वाध्यायः ।

—स्वानांग १।३।४६५ टोका

नत्सान्त्र को मर्यादानहित पहले का नाम स्वाध्याय है ।

२ तपोहि न्वाध्यायः ।

—तैत्तिरीय ब्राह्मणक २।१४

स्वाध्याय स्वय एक नप है ।

३ सज्जाय कुन्वतो, पञ्चेदियनवृटो त्रिगुणो य,  
हृवाँद य एगगमणो, विणएण समाहिओ भिक्खू ।

—सूमाधार ५।२६३

पञ्चेदियनवृत्, त्रिगुणित्रिगुण एव विनरनमाधिपुत्त म्नि  
स्वाध्याय तन्ना हृवाँ एगगमन ही जाता है ।

४ नज्जायगज्जाणरवन्त ताउथा,

अपावभावन्त तये रयन्त ।

विमुज्जत जमि मन पुंरं क्त,

समोत्थि रणमस व जोउथा ॥

—दशरथामिद ८।६-

उमे जमि क्त ॥ तये हृवाँ मोरिणयो वा मित हृवाँ ही जाता  
है, येन ता स्वाध्याय-महात्मा मे जात, पद्व्याय-धन, मुष्टु-  
अपवभाव एव पद्व्याय मे मत् नत्त ॥ हृवाँ-विण-मने-मै-  
नत्त ही जाता है ।

५. नवि अतिथि नवि य होई, नज्जाएण नमं तवोकम्म ।

—सुद्धप्रज्ञप्ति ८६

स्वाध्याय के समान न तो कोई तपस्या है और न ही भविष्य में हो सकती ।

६. बहुभवे संत्रिय खलु, मज्जाएण खणे खवेई ।

—सुद्धप्रज्ञप्ति ६१

अनेक भावों में नचित्त दृष्टर्म तो स्वाध्याय द्वारा व्यक्ति क्षण भर में मरता है ।

७. मज्जाए वा "सव्वदुक्खविमोक्खणे ।

—उत्तराध्ययन २६।१०

स्वाध्याय सब दुःखों में मुक्त करनेवाला है ।

८. नज्जाएण नाणावरणिज्ज कम्मं खवेऽ ।

—उत्तराध्ययन २६।१८

स्वाध्याय में व्यक्ति ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करता है ।

९. स्वाध्यायादिष्टदेवता—सप्रयोगः ।

—पातञ्जलयोग दर्शन २।४४

स्वाध्याय में इष्टदेव का साक्षात्कार होता है ।

१०. स्वाध्याय के अभाव में अनेक आगम विच्छिन्न हो गये ।

और जो विद्यमान है, वह स्वाध्याय की ही देन है ।

११. स्वाध्याय के लिए तीन बातें आवश्यक हैं—

एतान्तरता, निर्गमितता और विषयांतरनि—निविकारिता ।

१२. मज्जाए पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—यायना, परिपुच्छता,

रन्ध्रिदृणा अणुपंथा, धम्मराजा ।

—सुद्धप्रज्ञप्ति २५।१।८००

स्वाध्याय पाँच प्रकार का है—(१) वाचना, (२) पृच्छना, (३) परिवर्तना (४) अनुप्रेक्षा (५) धर्मकथा ।

१३ सज्जायरए स भिक्खू । —दशवैफालिफ १०।६

जो स्वाध्याय में अनुरक्त हैं, वह नाथु हैं ।

१४ स्वाध्यायान्मा प्रमदः । —तैत्तिरीयोपनिषद् १।१।१

स्वाध्याय करने में प्रमाद मत करो ।



## दूसरा कोष्ठक

१

पुस्तक-शास्त्र

१. यस्माद् रागद्वेषोद्धतचित्तान् समनुशास्ति मद्धर्मं ।  
मत्रायते च दुःखाच्छास्त्रमिति निरुच्यते नद्भिः ॥

—प्रशामरति १८७

राग-द्वेष में उद्धत चित्तवालो को धर्म में अनुशासित करना है एवं उन्हें दुःख में बचाता है, अतएव वह सत्पुरुषों द्वारा 'शास्त्र' कहलाना है (शास्त्र शब्द में दो धातुएँ मिली हैं— वाणु और श्रेष्—इसका अर्थ प्रमत्त अनुशासन करना और रक्षा करना है ।)

- २ श्रोत्रस्य भूषण शास्त्रम् । —सुनापितयत्नमज्ञया  
शास्त्र मुक्ता ही ज्ञान का आभूषण है ।

- ३ ज्ञानोचनागोचरे ह्यर्थे शास्त्रं तृतीय लोचन पुरुषाणाम् ।  
—तीनियारणाम् ४१३४

ज्ञानोचना योग्य पदार्थों को जानने में लिए शास्त्र मन्त्र का तीसरा नेत्र है ।

४. अनेकमंशवोच्छेदि, परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।  
सर्वस्य लोचन शास्त्रं, यन्मय नास्त्वयम् एव नः ॥

—हितोपदेश-प्रास्ताविका २०

शास्त्र श्लेष मन्त्रों का नाश करनेवाला है, छिन्ने हुए अंशों को

दिरानेवानना है एव सारे जगत् का नेत्र है, जिनके पास शरय-  
रूप नेत्र नहीं है, वह अधा है ।

- ५ बुक्स आर अवर वेस्ट फ्रन्ट । —टपर  
किताबें हमारे नवंश्रेष्ठ मित्र हैं ।
- ६ पुस्तकें ज्ञानियों की समाधि हैं—किन्नी में ऋषभ,  
अग्निष्टनेमि एव महावीर हैं तो किसी में राम, कृष्ण  
और युधिष्ठिर । किन्नी में वाल्मीकि, सूरदास,  
तुलसीदास एव कवीर हैं तो किसी में ईना, मूसा, और  
हजरतमुहम्मद । उन्हें खोलते ही वे महापुरुष उठकर  
हमारे नें बोलने लग जाते हैं । — एक विचारक
- ७ मनुष्य ने जो कुछ किया, मोचा और पाया, वह सब  
पुस्तकों के जादूभर पृष्ठों में सुरक्षित है । —फाल्हास
८. विचारों के यद्ध में पुस्तकें ही अस्त्र हैं । —घनांटिंगा
- ९ पुस्तक ही एकमात्र अमरत्व है । —रामक्रीषेण
- १० पुस्तकों का सकारण ही आज के युग का दान्तविक  
विद्यालय है । —फाल्हास
११. विना किताबों का तमना विना आत्मा का शरीर है ।
१२. पुराना कोट पहना और नई किताब खरीदो ! —सोरो
१३. तुम्हारे पास दो गयें हों तो एक की रोटी खरीदो और  
दूसरे में अच्छी पुस्तक । रोटी 'जीवन' देती है और  
अच्छी पुस्तक 'जीवनशला' । —जीवनशील
- १४ मैं नरक में उन पुस्तकों का स्वागत करूँगा, क्योंकि  
उनमें यह शक्ति है कि वे जहाँ होंगी वहाँ अपने आप  
नरक तक जायेंगी । —महात्मा गान्धी





१. आज पढ़ना सब जानते हैं, लेकिन क्या पढ़ना है ? यह कोई नहीं जानता । — घनाईभा
२. कुछ किताबें चखने के लिए हैं, कुछ निगल जाने के लिए हैं और कुछ थोड़ी सी-चबाये जाने एव हज़म किए जाने के लिए हैं । — बेफन
३. बुरी पुस्तकों का पढ़ना जहर के समान है । — टाल्स्टाय
४. बुरी किताबों से बढ़कर कोई डकू नहीं है । — इटली पहायत
५. अच्छी किताब वह है, जो आशा से खोली जाय और लाभ से बन्द की जाय । — एमो० बर्मन श्लवाद
६. जो पुस्तकों हमें अधिक विचारने का वाध्य करती हैं वे ही हमारी अच्छी सहायक हैं । — थोरोर पार्शर

## विभिन्न दर्शनों के धर्मग्रन्थ

जैनो के—मुक्त्य धर्म-ग्रन्थ आचाराङ्ग - सूक्ष्मताङ्ग-  
ममवायाङ्ग-भगवती आदि बारह अङ्ग है ।

बौद्धों के—विनयपिटक-सुत्तपिटक-अभिघम्मपिटक, ऐसे  
तीन पिटक-ग्रन्थ है । प्रथम में साधुओं के नियम हैं,  
दूसरे में वाद्विमिद्धान्त है—उसके पाँच निकाय (दोष-  
निकाय आदि) है । तीसरे में धार्मिक क्रिया-कलापों का  
वर्णन है ।

वेदिकों के—वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, श्रुति स्मृति  
महाभारत, रामायण एवं पुराण आदि है ।

यहूदियों के—पुरानी बाइबल, (OLD TESTAMENT)  
के तारा, नबी, नविजे—ये तीनों भाग एवं  
तानमूद है ।

ईसाइयों का—बाइबल, गरकम, मन्त्री, लूका तथा  
पूतवा के नुसमागन—उन पाँच भागों में विभक्त है ।  
नाओ तथा कन्फ्यूसियस धर्मवाले चीनियों का—नाओ-  
केरुंग (नयी उपनिषद्) है ।

मुसलमानों के—कुराननशीफ एव हदीसशीफ-युस्त्रारी-मुस्लिम आदि हैं ।

सिखों के—गुरुग्रन्थसाहेब, जपुजीसाहेब, एव गुरुमणि-साहेब हैं ।

पारसियों के—अवेस्ता है । इसके यस्न, वीन्परन्, यस्त, वेंदीदाद आदि अनेक भाग हैं ।

आर्यसमाजियों का—मुख्यग्रन्थ सत्याथप्रकाश है ।

—विभिन्न दर्शनों की धार्मिक पुस्तकों में

- १ प्रमाण परम श्रुति । —मनुस्मृति २।१३  
धर्म की जानने की इच्छा करनेवालों के लिए श्रुति-वेद ही प्रमाण है ।
- २ तमेव सच्च निस्तक, ज जिणेहि पवेउय ।  
—आचारांग ४।४  
यही बात मध्य एव निन्देह है, जो 'जिन' भगवान् ने की है ।
३. देव-मानवानुस्य धर्म कथयन्ति तीर्थंकरा ।  
—उत्तराध्ययन सूत्रि २३  
तीर्थंकर देव और मानव के अनुसार धर्म का उद्देश्य करते हैं ।
- ४ अन्य भानति अरुहा, मुक्त गथति गणहारा निउय ।  
मानणन्त त्रियदुआण, तथो मुक्त पवन्त ॥  
—आत्म्यण-निर्णयि ६२  
अज्ञानादयः अज्ञानवासी मानते हैं और त्रियुल गणधर उन वासी को मुक्त करने के लिये हैं । तत्कारण मानने के लिये मुक्त का प्रयत्न होता है ।
५. मुक्त गणहाराण्यय मीय पनेयदुत्तरय च ।  
मुक्तगणनिपा गार्थ उभिप्रदममुत्तरिणा रदुय ॥  
—उत्तराध्ययनसूत्रि

गणधर, प्रत्येकपुत्रि, श्रुतकेवली एवं अभिप्रदमपूर्वधानी का मना हुआ मन्त्र 'मूत्र' कहलाना है ।<sup>१</sup>

६. अत्यधरो तु पमाणं, तित्यगरमुद्गुगतां तु सो जम्हा ।

—निषीधनाप्य २२

मूत्रधर (गणधारी) की अपेक्षा अत्यधर (मूत्ररहित का जाता) को प्रमाण मानना चाहिए, क्योंकि अर्थ नाक्षत्रों तीर्थकारों की वाणी से नि मूत्र है ।

७. अत्येण य वजिज्जड, सुत्त तम्हा उ सो बलवं ।

—व्यवहारभाष्य ४।१०१

मूत्र (मूत्र मन्त्रपाठ) अर्थ (व्याख्या) से ही व्यक्त होता है अतः अर्थ मूत्र से बनवान (महत्त्वपूर्ण) है ।



१ मूत्र के तीन अर्थ—मूत्र-जिसमें अर्थ ही मूत्रना की बात । मूत्र अर्थात् मूत्र-मोह टूट ही तरल, इसे तीखा-भाष्यादि द्वारा उगला जाता है । मूत्र अर्थात् धागा जिसमें अर्थरत्न गिराये जायें ।

● मूत्र के तीन अर्थ—मजानूत्र, जागामूत्र तथा प्राणमूत्र । मजामूत्र में जड़ का नामात्त निर्देश होता है । जैसे "ये द्वेण मे मागाम्य (मिट्टी) न मेरे" । जागामूत्र में विद्याहत्याय का वर्णन होता है । जैसे—"अत्रावन्म मत्रनात्तं पाडाव्याभं मम वस्त्रवममेवो वर्धति" । प्राणमूत्र में नमिप्रवृत्ता एव केशी-गोम धाजित् प्रमद उक्ति होती है ।

## ५. युक्ति एवं न्याय से ग्रंथों की प्रामाणिकता

१ अपि पांशुपमादेय, शास्त्र चेद् युक्तिबोधकम् ।  
अन्यन्वार्थमपि त्वाज्य, भाव्य न्याय्येकमेविना ॥

—योगवासिष्ठ २।१८।२

सामान्यपुरुष द्वारा कदा कदा शास्त्र भी यदि युक्ति-युक्त न हो या बोध देनेवाला हो तो वह प्रमाण का नेता चाहिये । अन्य इसके विरुद्ध चाहे कि प्रोक्त भी बरो न ही, न्याय है ।

२ पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेष. कविनाद्रिपु ।  
युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्य. परिग्रह ॥

—हमिन्द-अन्ययोग ० ३८

जहाँ जहाँ कान्योय का पक्षपात है वहाँ न कविता चाहे कवि में द्वेष है । जिसका वचन युक्तिमत्त है उसी के पक्षपात का पक्षपात करना चाहिए ।

३ तेन शास्त्रनाश्रित्य, न कर्तव्या विनिर्णय,  
युक्तिर्गते विचारं तु, धर्मज्ञानि. प्रजापते ।

—द्वारकति

तेन शास्त्रे वा शास्त्रे पक्ष विनिर्णयं कर्तव्यं तस्य परिणय,

माय-माय युक्ति भी आवश्यक है, क्योंकि युक्तिहीन विचारों में हानि होती है ।

४. युक्त अयुक्त जोग न परमाणमिति बाह्यकेण अरहता इतिणा  
बुद्धयं । —शुद्धिभाषित १४

युक्त वात भी यदि अयुक्त विचार के साथ है तो वह प्रमाण-  
म्यस्य नहीं है—ऐसे बाह्य-आह्वयि नै सहा है ।

१. यूनेस्को के अनुसार दुनिया में प्रतिवर्ष लगभग चार लाख पुस्तकें छपती हैं, उसमें तीन-चौथाई पुस्तकें तो १२ देशों में छपती हैं और १८ प्रतिशत जापान को छोड़कर शेष एशियाई देशों में छपती हैं। भारत में १९६४-६५ में सिर्फ २१ हजार २६५ नई पुस्तकें छपीं।

—नवभारत टाइम्स, २६ नवम्बर, १९६५

२. विश्व में प्रथम पुस्तक १४४५ में छपी।
३. आकार की दृष्टि से सबसे बड़ी पुस्तक क्रिस्टेन की 'एटलस' जो हॉर्नैण्ड में बनी, ७ फुट साठे ६ इंच ऊंची और ३ फुट साठे २ इंच चौड़ी है।
४. विश्व में सबसे मोटी पुस्तक चीनी शब्दकोष है, इसके ४०२० भाग हैं। प्रत्येक भाग में १०० पृष्ठ हैं। यह सन् १९०० में छपा था।

—विश्वदर्शन, पृष्ठ २२-२३

५. सबसे छोटी पुस्तक एगर्गेन्ट का 'मिथिला मंगल' है जहाँ पृष्ठ के आकार की।
- संभव, पृष्ठ १६
६. सबसे भारी पुस्तक उर्मीर अफगानिस्तान की फारस में रचायी गयी है 'दुर्गा' की प्रति है, यह सोने के पत्र में



३६८ रत्नो ने जड़ी हुई है। उसका मूल्य तीन हजार पाँड है, उसमें १६८ मोती, १३२ लालें, व १०६ हीरे हैं।

—नवभारत टाइम्स १ मई, १९५५

### ७ सप्ताह की सबसे बड़ी पुस्तक का प्रकाशन—

कैम्ब्रिज, १२ मई (१९६८) दुनिया की आज तक की सबसे बड़ी किताब कैम्ब्रिजनायर के विस्वेच स्थित वाल्टिंग तथा मैनसैल लिमिटेड छापेखाने में छप रही है।

यह पुस्तक जब छप कर तैयार होगी तब उसका वजन होगा—डेढ़ टन। यह पुस्तक ६१० जिल्दों में होगी। प्रत्येक जिल्द होगी—७०५ पृष्ठों की। इस पुस्तक की दो हजार प्रतियाँ छप रही हैं। इन प्रतियों के छपने में दो साल लगेंगे।

यह पुस्तक है अमरीकी कांग्रेस के पुस्तकालयों की सूची। अमरीका के दो हजार पुस्तकालयों की तमाम पुस्तकों की सूची उसमें दी जाएगी।

ब्रिटिश-छापखाना इस पुस्तक को छापने के लिए ५० लाख पाण्ड ले रहा है।

—नवभारत टाइम्स, १३ मई, १९६८

### ८ समाचारपत्र—

१९६६ के अन्त में भारत में कुल १०६७७ समाचारपत्र और निवृत्तताधिक पत्र-पत्रिकाएँ थीं, जबकि १९६५ के अन्त में उनकी संख्या १००८५ थी। हिन्दी में सबसे अधिक १९६१ पत्र-पत्रिकाएँ थीं। इसके बाद अंग्रेज़ी में

१=४३, उर्दू में ७=५, बंगला में ११० और गुजराती में ११४ थी।

दैनिक समाचार पत्र २० भाषाओं में और अन्य नियत-कालिक पत्र-पत्रिकाएँ ४६ भाषाओं में प्रकाशित हो रही थी। दैनिक समाचारपत्र १५ प्रमुख भाषाओं के अलावा चीनी, पुर्तगाली, कोकणी, लुशाई (मिजा) और मणिपुरी में छप रहे थे। नियतकालिक पत्र-पत्रिकाएँ भारतीय भाषाओं के अलावा जाट विदेशी भाषाओं, (नेपाली, अरबी, फ्रांसीसी, निबन्धी, बर्मी, इन्दोनेशियाई, पश्तो और फारसी) में भी छप रही थी।

प्रारम्भिक अनुमानों के अनुसार १९६६ में समाचार पत्रों की पत्रिकाओं की वार्षिक प्रचार-मर्यादा २ करोड़ १६ लाख ६० हजार थी। दैनिक समाचारपत्रों में सबसे पुराना गुजराती का 'दम्बर्दिनमाना' है, जो १८२० में स्थापित हुआ एवं हिन्दी का सबसे पुराना समाचार-पत्र बनारस का 'विश्वमित्र' है जो १९१० में स्थापित हुआ था।

—सर्वमान्य टाइम्स, ६ अगस्त १९६७

प्रसार-संस्था की रिपोर्ट के अनुसार पर

६. भारत में सर्वप्रथम समाचारपत्र २९ जनवरी सन् १७९१ को बनारस में छपा था।

—विश्वमित्र दृष्ट-६८



## ७ विश्व के प्रख्यात पुस्तकालय

१. क्षेत्र नाम एवं संख्या—

क्षेत्र	नाम	संख्या
१ मास्को (रूस)	—लेनिन लाइब्रेरी	—१,१०,००,०००
२ लेनिनग्राड (रूस)	—साल्टिकावच्चेविन- पब्लिक लाइब्रेरी	—६०,००,०००
३ लन्दन (इंग्लैंड)	—ब्रिटिश म्यूजियम	—५०,००,०००
४ पेरिस (फ्रांस)	—निविलियो धेक नेगनल	—५०,००,०००
५ न्यूयार्क- (न्यूयार्क राज्य अमरीका)	—न्यूयार्क पब्लिक लाइब्रेरी	—५०,००,०००
६ क्लोरेम (न्यूयार्क राज्य अमरीका)	—ब्रिक्लियोटे का नेजिओनेल मेन्ट्रन	—३५,००,०००
७ नेपुलन (इटली)	—ब्रिक्लियोटेफ नेजिओनेल मेन्ट्रन	—१३,३०,०००
८ लिपॉजक (जर्मनी)	—युचेरी पुगुन	—२०,००,०००
९ सिडेना (आस्ट्रिया)	—नेशनल लिपॉजकेफ	—१३,००,०००

- १० मैड्रिड (स्पेन) — विविलयोरेका-  
नेशनल — १५,००,०००
- ११ एम्पटरडस — युनिवर्सिटी लाइब्रेरी  
(नीदरलैण्ड) — १,००,०००
- १२ टोकियो (जापान) — इम्पीरियल  
युनिवर्सिटी-लाइब्रेरी — १०,००,०००  
— हिन्दुनान, २१ जुलाई, १९६३ (रामरतनशर्मा)



- १ पटाई की अपेक्षा अनुभव का विशेष महत्त्व है। डॉक्टर-वैद्य, न्यायाधीश, वकील, ज्योतिषी, अध्यापक आदि वे ही अच्छा काम कर सकते हैं, जो अधिक अनुभवी होते हैं।
- २ अनुभव की पाठशाला का अभ्यास कितना पढ़ने की अपेक्षा ज्यादा उपयोगी होता है। —महात्मा गांधी
- ३ ज्ञान अनुभव से अलग है, अनुभव के लिए चारित्र्य चाहिए। —समर्थगुरु-गणदास
- ४ जो मनुष्य न तो अपने अनुभव का लाभ उठाता और न दूसरों के अनुभव का, वह मूर्ख है। —जवाहरलाल नेहरू
- ५ यदि दो घटनाओं की अनुभूति एक ही माध हो तो जब भी एक प्रकार के मस्कार उत्तेजित होते हैं। दूसरे भी होने लगते हैं।—बचपन में एक कुमारी के कन्धों पर चोट लगी। धार ने उसने मादवना के माद कामजागृति की वार्ते भी की। फिर जब भी काम जागृत होता, तथों में दर्द तान लग जाता।
- एक मनुष्य के पेट में गत की तीन बड़े सरफाल्य दं

हुआ । भय के मस्कारों से रात को तीन बजे नींद उटने लगी ।  
—तरुणमतोविज्ञान

अनुभवी वैद्य-डॉक्टर-बकील आदि—

- १ एक रानी के प्रसव-समय बच्चे का हाथ बाहर निकल आया । नारे निरन्तर हो गये । एक अनुभवी वैद्य ने उनके हाथ से बच्चे का स्पर्श किया, व्रम, बच्चे ने अपना हाथ वापस खींच लिया ।
- २ यूरोप में एक लड़की नौद के समय भयभीत हुआ करती थी । अनुभवी डाक्टर ने पूछा—क्या दीखता है ? लड़की ने कहा—सिंह । हसकर डाक्टर ने समझाया कि वह तो मुत्तने भी मिलने रोज आया करता है । तुम जग मत करो, उसके साथ प्रेम विद्या करो ! लड़की रात को ज्योंही सोई, उसे सिंह दीखने लगा । वह उसमें बाँट पसारकर प्रेम ही नौदता करने लगी । फिर नया कि विद्य उसका करना बन्द हो गया ।
- ३ नेत्र का पेनाल बन्द हो गया । वैद्य ने तरकूप के छिनके पोंटकर पिलाए, ठीक हो गया । पुनः बन्द हुआ । वही प्रयोग किया, लेकिन लाभ नहीं हुआ । शूबरी ने गर्म करने पिलाने को कहा मारक नहीं जा सोना था ।
- ४ भावली (इसपट्ट) ने प्रबुलान्जली सेतु की एथी के पैर में जसक दर्द था अतः अरुदा-पिपासा उसे दूर से उल्लस करके सुनाना पड़ा था । पैराली ने अरु से उल्लस हास इससे पैर में जसक दर्द-निरिती मिली ।

- ५ दिल्ली में डॉक्टर जोशी ने तीन लाख रुपये लेकर अजमेर निवासी एक धनिक के मन्तक ने जीवित मेरु निकाला । रोगी बिनायती तक बटक आया था ।
६. फोटले के नवाब ने पदों के अन्दर चिल्ली के पैर के रोगों बांधकर उसका एक गिनारा यति जी को पक प्रार पूछा—देखिये देगम साहिया को नाडी क्या कहती है ? यतिजी ने कहा—चूहा घाऊँ ! चूहा घाऊँ !
- ७ सरपुरा गाँव में हरजीनलजी गोतछा के वहा देगनल-निवासी रमजान तेन्दी ने चाँदा को बाती में धा ११ दीप जलाकर उसके काजल से मगहणी तज नाम मकोडो के रावनियों को उवालकर उन पानी में पेट का दर्द मिटा दिया । (रमजान छ. भाग पूर्व का रागा हुआ बता देता था ।)
- ८ अषाढ़ा गाँव में एक म्यामी जानखपुरी हैं । वह रोगी के हाथ में तिनका पकड़ा कर नाड़ी देखते हैं तथा उनके रोग का निदान करते हैं ।
९. सिरना निचानी श्रावक श्री भगवानदानजी पाण्डे नारी के आधार पर कितना दिन जीएगा—वह बता देते हैं । श्री केवल मुनि की नाड़ी देखकर उन्होंने यह कहा । कि उनकी उरुष्ट निचनि मोलत प्रहर है—बान दिम्बुल टोक निकारी ।
१०. एक मुनाफिर के हाथ पर देन की चिकनी गिर पड़ी ।

साधारण नाट आये। उनमें से एक कपडों पर मुकदमा किया, कपडों के बकील "फिराजशाह मेहता" थे। मुसाफिर ने हाथ को पट्टा लगा रखा था एव कहता था कि मेरा हाथ ऊँचा नहीं उठ रहा है। बकील ने मजिस्ट्रेट के सामने दामन करने हुए उनको धीरे से पूछा—भाई! चोट लगने से पहले तुम्हारा हाथ कैसा रहता था? मुसाफिर ने बातों में भूलकर कह दिया कि ऐसे रहता था। कहते-कहते हाथ भी उठा कर दिखा दिया। धन, केन हार गया।

११ एक व्यापारी कपडों की भारी गठरी टाँट पर रख रहा था। भावीवम उनके हाथ डार के ऊपर ही रह गये। अनेक उपचार किये गये सब निष्फल हुये। चिवाड़ के प्रमग म सिद्धों ने बीच एक अनुभवी ने उनकी धोती की गाँठ खोली। उस, सीने से ही हाथ छिाने आ गये।

११ एक बहन उठ नहीं सकती थी, एक अनुभवी ने उनके पास अचानक एक साँट डीठा, भयभीत बहन गलतल उठ गयी।

१३ एक धीमेबुद्ध म कर्मी मर गए बहन मर उन देखा। पामल लोग उन मरना—पाम कृपणा मीन जानेना ? कोर मरना ? उन मरना मीनो मी मरना—म मी उन मर । रिमाम डीठ म मरना ।



४. जाके पांव न फटो विवाई, सो क्या जाने पौर पराउं ।

--हिन्दी कहावत

५. मैं पिया कू ऐसी प्यारी,

पिया मैंनु देखे दिन च सौ-मी वारो,

मैं हंसा पिया मुख गोडे,

गया सियाला आया हाड, पिया मैंनु भुल्या वारवार ।

--पजाबी कहावत

६ अद्भुत अनुभवी—

एक आदमी इलाज करवाता-करवाता हार गया लेकिन

भिर दर्द नहीं मिटा । एक भील ने जड़ी विगकर दां-

दो तीन-तीन बूदें उसके कानों में डाली । थोड़ा देर

बाद जोर में छीकें आई और कई गोल-गोल गाड़े उसके

नाक में से निकले । उसी दिन से सिर-दर्द मिट गया ।

--मेवाड़ की घटना

• एक गभवती स्त्री को छीक आई और गर्भवन्धुत बच्चे

की मुट्ठी खुली । बापस बन्द होते समय माता की एक

घाम नाड़ी मुट्ठी के बीच में आ गई । माता को भयकर

पीडा होने लगी । एव थोड़ी देर में वह बेहोश हो गई ।

मृत समझकर परिवारों रोने-पीटने लगे । एक अनुभवी

पटौसी ने मारा हान मुना और उस स्त्री के शान के

पास जाकर बंधक का घाताका किया । वन घर में बच्चे

की मुट्ठी पुन खुली एव नाड़ी मूलरूप में आ गई और

स्त्री बर गई ।

--पारोतीप्रदेग की घटना

- १ विरुद्धनानायुक्तिप्रान्त्यदोर्धल्यानघारणाय प्रवर्तमानो-  
विचार परीक्षा । — न्यायदीपिका, पृष्ठ ८  
स्वविग्रह विविधयुक्तियों की प्रवृत्तता की सुसंरता का निर्णय  
करने के लिये जो विचार की प्रवृत्ति होती है उसका नाम  
परीक्षा है ।
- २ परीक्षा मनुष्य को मापने का एक यन्त्रमापक है ।  
— धर्मसूत्र
- ३ परीक्षा गुणों का अदगुण और सुन्दर को असुन्दर  
बनानेवाली बस्तु है । प्रेम उसने उल्टा है । — प्रेमचन्द
- ४ व्यक्ति के अन्दर भी लतना ही झाकना चाहिए, जिनका  
उसके ऊपर । — सेन्टर पीन्ट
- ५ रत्न बिना रंगण खाने नहीं चमकता, मनुष्य बिना  
परीक्षा के पूर्ण नहीं होता । — जीनों बहादुर



१. न लोमेन्नेक्षण चरे । —आघातं ५११  
गङ्गा-प्रवाह दुनिया के अनुमान जानने मन पर ।
२. कोई कितना भी महान् क्यों न हो, अघों की तरह उगके पीछे मत चलो । —विश्वानन्द
३. दमडीरी हाडी भी बजा र लेणी ।  
—राजस्थानी कहावत
४. जोहरनाम देखलें, जोहर कमाल के ।  
तागज पर रख दिया, कलेजा निकाल के । —उरूं शेर
५. हस्टरख शिन्द तिला नेम्न । —पारसी कहावत
६. गॉन दैट गिल्टर्स डज नाट गोरड । —अपेणी कहावत  
नगरनेवाला सब मोना नहीं होगा । (अर्थ—५-६)
७. मोनुं एटनु मोनुं नहि, ऊजल एटनुं दूध नहि,  
काला एटला भूत नहि, जनोर् एटला ब्राह्मण नहि ।  
—गुरुगती कहावत
८. पाया-काला सब जामून नहीं,  
घोला - घोला सब दूध नहीं ।  
—हिन्दी कहावत

- १ यथा चतुर्भिः कृतक परीक्ष्यते,  
निर्घर्षण - स्टेडन - ताप-नाशनं ।  
तदा चतुर्भिः पुरप परीक्ष्यते  
स्त्रागेन शीतेन गुणेन वसंषा ॥

—सामयसंज्ञा ५१७

पथना, चटना, वसंषा, शीटन -- इन चारों प्रश्नों के ज्ञान से ज्ञानियों की परीक्षा की जाती है, जैसे ही भात, चीन, मद्य पीरकमं (सामयसंज्ञा) -- इन चारों में परीक्षा की जाती है ।

- २ वान पर्यादि विदुः, मध्यमदुर्गविनाशरति दृक्त्वात् ।  
आगम्यन्व नु न्य परीक्षणे सवयनेन ॥

- तन्निष्कृति

५. जानीपुरुष महान्माया की पहचान आँसू से ही कर लेते हैं, क्योंकि रूपयो की तरह हीरों-पत्थों को बजाने की जम्हरत नहीं पड़ती, उनकी परीक्षा नजर से ही होती है।

६. सित्थेण द्रोणपाग, कवि च एक्काए गाहाए।

—अनुयोगद्वार ११६

एक क्षण में द्रोणभर पाक की ओर एक माथा में कवि की परीक्षा हो जाती है।

७. संत जत्रद्या परखिए, विपत पड़े घर-नार।

शूरा तवही जाणिये, रण बाजे तलवार ॥

—राजस्थानी शोहा

८. जानीयात् प्रेपणे भृत्यान्, वान्धवान् व्यसनागमे।

मित्र चापत्तिकाले तु, भार्या च विभव - धार्ये ॥

—साणक्ष्पनीनि १।११

साम के लिए भेजने नमय भेवतो ती, दुस्र जाने पर म्भरना ती, आपत्ति के समय मित्रों की और धन-क्षय होने पर स्त्री की परीक्षा करनी चाहिये।

९. जन्म की पहचान धार से होती है, चरम की पहचान तार से होती है। इन्मान का धर्म क्या है? हमकी पहचान जीत से नहीं, हार से होती है।

—स्वर्मागता से

१०. प्राचीनमान में मृत्यु भीम की जाँच के लिये एक प्रकार की परीक्षाएँ भी करनी थीं। जैसे—(१) शीर्षी उखावकर

पिलाना, (२) अग्नि में तपाकर लोह का फाला या गोला हाथ या जीभ पर रखना, (३) खानी तुला पर चढ़ाना, (४) प्रज्वलित अग्निकुट में डालना आदि-आदि । (रसको धूल भी कहा जाता था ।)

- राज्य किसे दिया जाय—इस निर्णय के लिये पान दिव्य (हयनी-घोडा-छय-चामर-कृष्णा गी) प्रकट किये जाते थे । आजकल विधानमण्डल लोकसभा आदि में मन्त्रि-परोक्षार्थ सदस्यों के मत लिये जाते हैं ।



१ हेमनः सन्ध्यते ह्यग्नी, विभुद्धि श्यामिकापि वा ।

--सुषुता १।१०

गोन की विभुद्धि एव मितानट वा फवा रनि मे ल्यता है, एने ही सत्पुनरी की परीक्षा भी विदनि मे ही जाती है ।

२- अत्यधिक विरोधी परिस्थितियों मे ही मनुष्य की परीक्षा होती है । --गाथी

३ मन्दिषणा भित्तमघाने, भिषजा मन्निपातते ।  
कर्मणि व्यज्यते प्रजा, सुन्दे को वा न पण्डितः ॥

--हितापदेश ३।१२१

मन्दि-भग होने के समय मन्दिषा ही एव मन्दिषा के समय वेदों की पुद्धि का फवा लगता है । स्वास्थ दशा मे को ह्यगव बुद्धिमान बन बैठता है ।

४- काक कृष्ण, पिक कृष्ण, को भेद पिक-काकयाः ।  
समन्तसमये प्राप्ते, काक, काक, पिक पित ॥

काक कोर कोरि कोका कोर है । ऊर्ध्वे भेद को परीक्षा समन भवु पाते पर हा प्राणे है ।

५ मणिर्नृठति पादाग्रे, काच. गिरति धार्यते ।  
 द्रव्य-विश्रयवेत्नाया. काच लक्ष्मी, मणिः मणि ॥

-- चाणक्यनीति १४१६

जैसे मणि पैरों की सुनारों में और काच मृदुल में उगा दिया  
 जाय, विलु द्रव्य-विश्रय के समस्त परीक्षण की लक्ष्मी में काच-  
 काच और मणि-मणि के रूप में प्रकट हो जाता है ।

६ फटी लठी आवाज न्यु पिच्छाणीने ।

—राजस्यार्थे स्थायते



- १ दर्शन का अर्थ ज्ञान, मनन, चिन्तन, विचार, कल्पना या गभीरविषय हो सकता है, किन्तु वास्तविक अर्थ तत्त्व-ज्ञान है ।  
—वैदिक विचार-विमर्शन-प्रकरण-५
२. दर्शन का सीधा अर्थ है देखना या दृष्टि । उसका तात्त्विक अर्थ है—सत्य का साक्षात्कार या सत्य का सामीप्य ।  
—आचार्य तुलसी
- ३ दर्शन दृष्टि है, धर्म उसको देखने का प्रयास । दर्शन साध्य का निश्चय है, धर्म उसको पाने का प्रयास । पर आज दर्शन का अर्थ आग्रह और धर्म का अर्थ रूढि हो रहा है ।  
—आचार्य तुलसी
- ४ सारा दर्शन दो शब्दों में है—जीवित रहने के लिए खाओ और अनावश्यक वस्तु से बचो ।  
—इपिकटेट्स
- ५ कहा से ? किधर ? कैसे ? और क्यों ?—ये प्रश्न सपूर्ण दर्शन को आत्मसात् कर लेते हैं ।  
—जूवर्ट
- ६ जो कुछ सत्य है, उसका अन्वेषण और जो उचित है, उसकी कार्य में परिणति—दर्शन के ये दो महान् ध्येय हैं ।  
—वाल्टेयर

७. एक गताव्दी का दर्शन ही दूसरी गताव्दी का नामान्य-  
ज्ञान होता है । —हेनरीवाट वीचर

८ दर्शन के अभाव में धर्म केवल अधविद्यमान मान रह  
जाता है और धर्म का वहिष्कार करने पर दर्शन केवल  
शुष्क नास्तिकवाद बना रहता है । —विवेकानन्द

दर्शन से लाभ—

१. समर्पण य सद्वृत्ते । —उत्तराख्यन २८-३५

जीव दर्शन से तन्वी ही धरदा करना है ।

२. दर्शन जीवन के सभी भागों में उपयोगी है—वही वह  
उत्तेजक है, कहीं अपरोधक है और कहीं व्यापक है ।  
यह नमप्रवृत्ति का उत्तेजक है, अमप्रवृत्ति का अपरोधक  
है । और गदानार की दिशा में व्यापक है ।

—धातार्य सुतगो

३. शारीरिक दार्शनिकता मनुष्य की नास्तिकता की ओर  
सूचक है, किन्तु उच्चरी महत्ता नृत्ति की ओर से  
जाती है । —वेण

दर्शन से भेद—

१. दुर्गो दुर्गो पश्यन्तं य ज्ञानं—मन्मथगो वेद, मित्ता-  
भयणे वेद ।

दुर्गो दुर्गो पश्यन्तं य ज्ञानं—मन्मथगो वेद, मित्ता-  
भयणे वेद ।

२. तीर्थ - दार्शनिकता, जैसे उद्देश्यगत नम ।

जैसे ही नम नास्तिक दर्शन नास्तिकता—

१. दर्शन का अर्थ ज्ञान, मनन, चिन्तन, विचार, कल्पना या गभीरविषय हो सकता है, किन्तु वास्तविक अर्थ तत्त्व-ज्ञान है ।  
—वैदिक विचार-विमर्शन-प्रकरण-५
२. दर्शन का सीधा अर्थ है देखना या दृष्टि । उसका तात्त्विक अर्थ है—सत्य का साक्षात्कार या सत्य का सामीप्य ।  
—आचार्य तुलसी
३. दर्शन दृष्टि है, धर्म उसको देखने का प्रयास । दर्शन साध्य का निश्चय है, धर्म उसको पाने का प्रयास । पर आज दर्शन का अर्थ आग्रह और धर्म का अर्थ रूढ़ि हो रहा है ।  
—आचार्य तुलसी
४. सारा दर्शन दो शब्दों में है—जीवित रहने के लिए खाओ और अनावश्यक वस्तु से बचो ।  
—इपिपेटेट्स
५. कहा से ? किधर ? कैसे ? और क्यों ?—ये प्रश्न संपूर्ण दर्शन को आत्मसात् कर लेते हैं ।  
—जूवर्ट
६. जो कुछ सत्य है, उसका अन्वेषण और जो उचित है, उसको कार्य में परिणति—दर्शन के ये दो महान् ध्येय हैं ।  
—वाल्टेयर

७. एक शताब्दी का दर्शन ही दूसरी शताब्दी का सामान्य-जान होता है।  
—हेनरीवार्ड बीचर

८. दर्शन के अभाव में धर्म केवल अधविश्राम मात्र गृह्य जाता है और धर्म का वहिष्कार करने पर दर्शन केवल शुष्क नास्तिकवाद बना रहता है।  
—विवेकानन्द

दर्शन में लाभ—

१. दसपणेण य सहहे ।  
—उत्तराध्यायन २८-३५  
जीव दर्शन ने तन्वों को धरना करता है।

२. दर्शन जीवन के सभी भागों में उपयोगी है—कही वह उत्तेजक है, कही अवरोधक है और कही व्यापक है। वह सत्प्रवृत्ति का उत्तेजक है, असत्प्रवृत्ति का अवरोधक है। और नदाचार को दिशा में व्यापक है।

—आचार्य तुलसी

३. थोटी दार्शनिकता मनुष्य को नास्तिकता की ओर झुकाती है, किन्तु इसकी गहनता मूर्ति की ओर ले जाती है।  
—बेकन

दर्शन के भेद -

१. दृष्टि-दर्शन, पश्यन्, त जगत्—सम्बन्धपूर्ण पश्य, मिच्छा-प्रसंगे जगत् ।  
—व्यास-२।१

पश्यन् ही प्रमाण - त जगत् है - सम्बन्धपूर्ण पश्य निमित्तदर्शन ।

२. प्राज्ञ-दर्शन, मानस, ज्ञेय-परिधि-तत्त्व ।

ज्ञेय-परिधि-तत्त्व, प्रतीत्यनानिर्मान्यतया ।

भारतीय आस्तिकदर्शन मुख्यतया छ. है—(१) बौद्ध, (२) नैयायिक, (३) साख्य, (४) जैन, (५) वैशेषिक, (६) जैमिनीय (नास्तिकदर्शन इनमें नहीं गिना गया है)

दर्शनों का उद्भव—

१. बौद्धानामृजुसूत्रतो मतमभूद् वेदान्तिना सग्रहात्, साख्याना तत एव नैगमनयाद् योगश्च वैशेषिक । शब्द ब्रह्मविदोऽपि शब्दनयत् सर्वैर्नयैर्गुम्फिता, जैनी दृष्टिरितीह सारतरता प्रत्यक्षमुद्दीक्ष्यते । ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा से बौद्ध, सग्रहनय से वेदान्त-सारय, नैगमनय से नैयायिक—वैशेषिक और शब्दनय की अपेक्षा से ब्रह्मविदो का शब्द-दर्शन उत्पन्न हुआ, किन्तु जैन-दर्शन सभी नयों से गुम्फित है अतः इसकी श्रेष्ठता प्रत्यक्ष देखी जा रही है । दर्शनों के प्रमाण—

१. चार्वाकोऽध्यक्षमेक सुगतकणभुजो सानुमान सगाब्द, तद्द्वैत पारमर्ष. सहितमुपमया तत्त्रय चाक्षपाद । अर्थापत्या प्रभाकृद् वदति तदखिल मन्यते भट्ट एतत्, साभाव द्वे प्रमाणे जिनपतिसमये स्पष्टतोऽस्पष्टतश्च ॥ चार्वाक एक प्रत्यक्ष प्रमाण को मानते हैं । बौद्ध और साम्ब्य तीन प्रमाणों को स्वीकार करते हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द (आगम) । पारमर्ष—वैशेषिक दो प्रमाणों को ग्रहण करते हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान । नैयायिकों ने पांच प्रमाण मान्य किये हैं—प्रत्यक्ष-अनुमान, शब्द, उपमा और अर्थापत्ति । भट्टानुयायि-जैमिनीयो के पांच तो पूर्ववत् एव एक अभाव प्रमाण—ऐसे छ प्रमाण हैं तथा जैनो के दो प्रमाण हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष ।

दर्शनकार—

- १ भारतीय दर्शनकारों में मुख्य जैने—महावीर, बुद्ध, कपिल, गौतम, कणाद एवं जैमिनीय आदि हुए हैं। वेने ही चीन में लाओत्से और कन्फ्यूसियन, मिश्र में प्रोफिरी, रोमिसस, इंग्लैंड में वेकन-जान, स्टुवर्ट, स्पेन्सर, वॉन्ने, रोम में नाक्रेटोस-प्लेटा-थीथागॉरस, जर्मनी में कान्ट और फ्रांस में कान्ट आदि माने गये हैं।

—संक्षिप्त-विचार, प्रश्न ५

२. दाती रखने मात्र से कोई दायंनिक नहीं हो सकता।

—एक विचारक

○

१ अस्ति पुण्य पापमिति मतियस्य स आस्तिक ।

—सिद्धान्तकौमुदी

पुण्य है, पाप है—ऐसी जिसकी मान्यता हो, वह आस्तिक है ।

२ अत्थि मे आया उववाइए ····

से आयावादी, लोयावादी, कम्मवादी, किरियादी ।

—आचाराग १।१।१

यह मेरी आत्मा औपपातिक है, कर्मानुसार पुनर्जन्म ग्रहण करती है—आत्मा के पुनर्जन्म-सम्बन्धी सिद्धान्त को स्वीकार करनेवाला ही वस्तुतः आत्मवादी, लोकवादी एवं त्रियावादी है अर्थात् आस्तिक है ।

✱

- १ नास्तिक पुण्य पापमिति मतिर्यस्य न नास्तिक ।  
— सिद्धान्तशौमुदी  
न पुण्य है, न पाप है—किसी हिमवी मानव्य का, यह नास्तिक  
है ।
- २ नास्तिको वेदान्दिक । — मनुस्मृति २।११  
वेद ही निम्न करनेवाला नास्तिक पाप है । (यही वेद का  
उर्ध्व भाग समझना नास्तिक ।)
- ३ पुराने उपाधे में ईश्वर पर विश्वास नहीं करनेवाला  
नास्तिक होना या और नये धर्म में स्वतः पर विश्वास  
न करनेवाला नास्तिक कहलाना है ।  
विषेदान्द
- ४ परमात्मा को न माने यह नास्तिक है, पर जो भ्रमार्थक  
है, यह नास्तिक है । — आचार्य तुलसी
- ५ उदना और भय ह मनुष्य को ईश्वर नास्तिक नहीं  
करती । — एक गीत
- ६ नास्तिक मनुष्य एक नास्तिक ईश्वर के आकाश विश्वास  
करने लग जाते हैं । — संत
- ७ नास्तिक के ईश्वर न भय मानना ही और फिर नास्तिक  
है । — वेदवादी



८. नास्तिकता का मूल कारण आज की पढाई—

पुरानी पढाई में तीनों दशावो का विचार होता था, आज केवल जागृतदशा का होता है। पुरानी पढाई में दृश्यद्रष्टा दोनों का विचार था, आज मात्र दृश्य का है। पुरानी पढाई में आत्मा और शरीर दोनों भिन्न समझाये जाते थे, आज आत्मा का लक्ष्य प्राय नहीं है तथा पुरानी पढाई में विनय की मुख्यता थी आज विनय की कमी होती जा रही है—इन सभी कारणों से नास्तिकता बढ़ रही है।



१. नत्थि पृण्णे व पावे वा, नत्थि न्नाण उज्जोवरे ।  
नरीरग्गं विणाम्भेण, विणानो होऽ वेदिणो ॥

- सूत्रसूत्राग-१।१०

न पुण है, न पाप है जगत् न एत एतत्काल-वीर्य के अति-  
मिष्ट कोई अस्मान् है । नरीर का अर्थ नोके के अर्थ का भाव  
जो जाता है ।

२. लोकायिना वदन्तेऽपि, नास्मि जीयं न निर्वृति ।  
धर्माधर्मो न विद्यते, न एतद् पुण्यपापयो ।

१ तहियाणं तु भावाण, सवभावे उवएसण ।

भावेण सद्वहत्तस्स सम्मत्त तु वियाहिय ॥

— उत्तराख्ययन २८।१५

स्वयं या उपदेश से जीव-अजीव आदि सद्भावो मे आन्तरिक  
हार्दिक श्रद्धा का होना सम्यक्त्व-सम्यग्दर्शन है ।

२ यथार्थतत्त्वश्रद्धा सम्यक्त्वम् ।

— जैनसिद्धान्तदीपिका ५।३

जीवादि तत्त्वो की यथार्थश्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है ।

३ या देवे देवताबुद्धिं गुरो च गुरुतामति ।

धर्मे च धर्मधी . शुद्धा, सम्यक्श्रद्धानमुच्यते ॥

— योगशास्त्र २।२

वीतरागदेव मे देव-बुद्धि का होना, सद्गुरु मे गुरु-बुद्धि का  
होना और सच्चे धर्म मे धर्म-बुद्धि का होना सच्ची श्रद्धा  
कहलाती है ।

४ अरिहतो महदेवो, यावज्जीव सुसाहुणो गुरुणो ।

जिणपन्नत्त तत्त, इय सम्मत्ते मए गहिय ॥

— आवश्यक ४

अरिहन्त भगवान मेरे देव हैं, यावज्जीवन शुद्धसाधु मेरे गुरु है,  
जिनेश्वर देव का बनाया हुआ तत्त्व मेरा धर्म है—यह सम्य-  
क्त्व मेने ग्रहण किया है ।

५. मियदात्रित्वागतः दुष्टः सम्यक्त्वं ज्ञायतेजडितान् ।

—सन्नात्मनार

मियदात्र का त्याग करने से प्राप्तिप्राप्ति ही दुष्ट सम्यक्त्व निम्नता है ।

सम्यक्त्व के भेद—

६. बुद्धिं सम्मदम्पे पणत्तिं, त जहा—विस्सुत्तसम्मदं सजे  
वेव अभिगममम्मदमपे वेव । —स्यान्त २।१।७०

सम्यक्त्व दो प्रकार का कह है—व्याप्तिक-उत्पत्ति-आर  
उत्पत्ति होनेवाला और उत्पत्ति से उत्पन्न होनेवाला ।

७. तच्च स्यादीपगमिकं साम्प्रदायिकमप्यपरम् ।

साधोपगमिकं वेदं, साधितं वेदि पञ्चवडा ॥

सम्यक्त्व दो प्रकार का है—(१) साधोपगमिक (२) साम्प्रदायिक,  
(३) साधोपगमिक, (४) वेदिक (५) साधित ।

८. निम्भसुत्तान्तरं, अणत्तं सुत्तं—वीट्ठरसिद्धं ।

अभिगम-विजानन्तं, किरिया-सिद्धं-अणत्तं ॥

—सन्नात्मनार २०।१६

सम्यक्त्व के दो भेद भी हैं—(१) निम्भसुत्तं (२) अणत्तं  
(३) अभिगमिक (४) सुत्तं (५) वीट्ठरसिद्धं (६) किरिया-  
सिद्धं (७) विजानन्तं (८) विजानन्तं (९) अणत्तं,  
(१०) इति ॥

१. सम्यक्त्व के कल भेदों का ज्ञान वेदिक काल प्रकाश  
पुस्तक में है ।

६ समकत्व के लक्षण, भूषण, दूषण और विशुद्धि—

शमसवेगनिर्वेदानुष्कम्पास्तिक्यलक्षणः,

लक्षणं पञ्चभिः सम्यक्, सम्यक्त्वमुपलक्ष्यते ।

—योगशास्त्र २।१५

(१) शम—क्रोध आदि कषाय की शान्ति, (२) सवेग—मोक्ष की अभिलाषा, (३) निर्वेद—समार से विरक्ति, (४) अनुकम्पा—दया, (५) आस्तिकता—आत्मा - कर्म - परलोक आदि पर विश्वास—ये पाँच सम्यक्त्व के लक्षण हैं ।

१० परमत्थसथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि ।

वावन्नकुदसणवज्जणा य, सम्मत्तसद्दहणा ॥

—उत्तराध्ययन २८।२८

(१) जीवादि पदार्थों का सही ज्ञान (२) तत्त्वज्ञानी गुरुओं की सेवा, (३) गिथिलाचारी एव (४) कुदर्शनियों से बचते रहना—ये ४ सम्यक्त्व के श्रद्धान हैं ।

११ स्थैर्य प्रभावना' भक्ति कौशल जिनशासने ।

तीर्थसेवा च पञ्चापि, भूषणानि प्रचक्षते ॥

—योगशास्त्र २।१६

(१) धर्म में स्थिरता, (२) धर्म की प्रभावना—व्याख्यानादि द्वारा, (३) जिनशासन की भक्ति, (४) कुशलता—अज्ञानियों को धर्म समझाने में निपुणता, (५) चार तीर्थ की निर्वन्ध सेवा—ये पाँच सम्यक्त्व के भूषण हैं ।

१ पावयणी धम्मकहीं, चाई निमित्तओ तवम्मी य ।

विज्जा सिद्धो य कवी, अट्टेव पभावगा भणिया ॥

—योगशास्त्र १२।१६ टीका

१२. शङ्का काङ्क्षा विचिकित्सा मिथ्यादृष्टिप्रगसनम् ।

तत्सस्तवश्च पञ्चापि, सम्यक्त्व दूपयन्त्यमौ ॥

—योगशास्त्र २।१७

(१) शङ्का-तत्त्वो मे नदेह, (२) काङ्क्षा-अन्यमत की अभि-  
लाषा, (३) विचिकित्सा-घर्मफल मे सदेह, (४) मिथ्यादृष्टि  
एव व्रतभ्रष्टो की प्रगसा, (५) उन का नस्तव, प्रेम अथवा  
सनग—(ये पाच सम्यक्त्व को दूपित करनेवाले हैं— सम्यक्त्व के  
अतिचार-दोष हैं ।)

१३. चउवीसत्थएण दसणविसोहिं जणयई ।

—उत्तराध्ययन २६।६

चौवीस तीर्थकरो की न्नुति करने मे आत्मा नम्यक्त्व को विज्ञेप-  
रूप से गुद्ध करता है ।

- १ सवुज्झह किं न बुज्झह, सवोहि खलु पेच्च दुल्लहा ।  
णो हु वणमति राडओ, णो सुलभ पुणरावि जीविय ॥

— सूत्रकृतांग २।१।१

समझो ! तुम क्यों नहीं समझते, आगे मद्बोधि सम्यक्त्व का मिलना कठिन है । बीती हुई रातें वापस नहीं आती । मनुष्य जन्म वार-वार मुलभ नहीं है ।

- २ ईओ विद्ध समाणस्स, पुणो सवोहि दुल्लहा ।

—सूत्रकृतांग १५।१८

यहा से भ्रष्ट हो जाने के बाद पुन सम्यग्दर्शन का मिलना कठिन है ।

- ३ णो मुलभ वोहिय च आहिय । —सूत्रकृतांग २।३।१६  
सम्यग् ज्ञान-दर्शनरूप बोधि का मिलना मुलभ नहीं है ।

- ४ मिच्छादसणरत्ता, सनियाणा कण्हलेसमोगाढा ।  
इय जे मरति जीवा, तेसि पुण दुल्लहा वोही ॥

—उत्तराध्ययन ३६।२५२

जो जीव मिथ्यादर्शन में अनुरक्त हैं, निदानगति कर्म करनेवाले हैं और वृष्णलेख्या में युक्त हैं, उनकी मृत्यु के पश्चात् अन्य जन्म में बोधि-सम्यक्त्व की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है ।



१ दसणसपन्नयाएण भवमिच्छत्तछेयण करेई ।

—उत्तराध्ययन २६।६०

सम्यग्दर्शन की सपन्नता से आत्मा भवत्रमण के हेतुभूत मिथ्यात्व का छेदन करता है ।

२. सम्यक्त्वेन हि युक्तस्य, ध्रुव निर्घाणसगम. ।

—तत्त्वामृत

सम्यक्त्वयुक्त आत्मा को अवश्य मुक्ति प्राप्त होती है ।

३ अतोमुहुत्तमित्त पि, फासिय हुज्ज जेहि सम्मत्त  
तेसि अवद्धपुग्गल-परियट्ठो चैव ससारो ।

—धर्मसंग्रह अधिफार २।२१ टीका

जो जीव अन्तर्मुहूर्त मात्र भी सम्यक्त्व का स्पर्ण कर लेते हैं, उन के केवल अद्धं पुद्गल—परावर्तन मगार जेप रह जाता है ।



१. दसणमूलो धम्मो । —दर्शनपाहुड, २।२  
धर्म का मूल दर्शन (सम्यक् श्रद्धा) है ।
२. मूल धर्मस्य सम्यक्त्वम् । —हिगुल प्रकरण  
सम्यक्त्व ही धर्म का मूल है ।
३. कनीनिकेव नेत्रस्य, कुसुमस्येव सौरभम् ।  
सम्यक्त्वमुच्यते सार, सर्वेषा धर्मकर्मणाम् ॥  
आँख की कीकी एव फूलों की सुरभिवत् सभी धर्मकर्मों का सार सम्यक्त्व है ।
४. सम्यक्त्व मूलानि महाफलानि । —धर्मपरीक्षा  
यथाख्यातचारित्र्य - केवलज्ञानप्राप्ति आदि महाफलों का मूल सम्यक्त्व ही है ।
५. सम्यक्त्वसहिता एव, शुद्धा दानादिका क्रियाः ।  
—अध्यात्मसार  
दानादि क्रियाएँ सम्यक्त्व होने से ही पूर्णतया शुद्ध होती हैं ।  
पात्र चारित्र्यवित्तस्य, सम्यक्त्व ग्लाध्यते न कैः ।  
—सूक्तमुक्तावलि  
चाग्रिग्रह रूप धन को रखने के लिये सम्यक्त्व ही एक पाथ है ।  
उनकी प्रशंसा वान्त नहीं करता ।

६. नत्थि चरित्त सम्मत्तविहूण, दसणे उ भइयव्व ।  
 सम्मत्तचरित्ताडं, जुगव पुव्व तु सम्मत्त ।  
 नादसणिस्स नाण, नाणेण विना न हु ति वरणगुणा ।  
 अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाण ।  
 —उत्तराध्ययन २८।२६-३०

सम्यक्त्व के विना चारित्र्य न तो कभी था, न वर्तमान में है और न कभी होगा। सम्यक्त्व में चारित्र्य की भजना है। सम्यक्त्व चारित्र्य कदाचित् साथ उत्पन्न हो तो भी पहले सम्यक्त्व होगा और बाद में चारित्र्य होगा। ॥२६॥

सम्यक्त्व के विना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के विना पाँच महायत्न रूप चारित्र्य के (करण-चरण सप्ततिरूप—पिण्डविशुद्धि आदि) गुण प्राप्त नहीं होते। चारित्र्यगुणों के विना कर्मों का मोक्ष नहीं होता और अमुक्त को निर्वाण—शाश्वतमुक्तिसुख नहीं मिलता। ॥३०॥

७. दसणभट्ठो भट्ठो, दसण भट्ठस्स नत्थि निव्वाण ।  
 सिज्झति चरणरहिया, दसणरहिया न सिज्झति ॥  
 —भक्तिपरिज्ञा गाथा ६६

नम्यग्दर्शन से भ्रष्ट व्यक्ति वस्तुतः भ्रष्ट है, उसको मोक्ष नहीं मिलता। द्रव्यचारित्र्य-रहित मिट्टे हो जाते हैं, किन्तु दर्शनरहित नहीं होते।

८. नाणभट्ठा दसणलूसिणो । —आचाराग ६।४  
 नम्यग्दर्शन में पतित नम्यग्ज्ञान में भी भ्रष्ट हो जाता है।

९. जीवविभुवका सवओ, दमणमुदको य होऽ चलमव्वा ।  
 सवओ लोयवगुज्जा, लोउत्तरयम्मि चलमवओ ॥  
 —भायपाट्ट १४३

जीव से रहित शरीर शव [मुर्दा-लाश] है, इसी प्रकार सम्यग्दर्शन से रहित व्यक्ति चलता-फिरता शव है। शव लोक में अनादरणीय (त्याज्य) होता है और वह चल-शव लोकोत्तर अर्थात् धर्मसाधना के क्षेत्र में अनादरणीय रहता है।

१० दसणहीणो ण वदिव्वो । —दर्शनपाहुड २

जो दर्शन से हीन (सम्यक्श्रद्धा से रहित या पतित) है वह, वन्दनीय नहीं है।



१. भूयत्थमस्सिदो खलु, सम्माइट्ठी हवइ जीवो ।

—समयसार ११

जो भूतार्थ अर्थात् मर्त्यार्थ—गुदहृष्टि का अवलम्बन करता है, वही सम्यग्दृष्टि है ।

२. हेयाहेय च तहा, जो जाणइ सो हु सट्ठिठी ।

—सुत्तपाहूड, ५

जो हेय और उपादेय को जानता है, वही वास्तव में सम्यग्दृष्टिवाला है ।

३. सम्मत्तदमी न करेड पाव ।

—आचाराग ३१२

सम्यग्दृष्टि परमार्थ को जानकर (आत्मध्यान में रमण करता हुआ) पाप नहीं करता ।

४. सम्यग्दर्शनयपन्नः, कर्म भिर्ननिवद्धचते ।

दयानेन विहीनस्तु, नसार प्रतिपद्यते ॥

—समुत्थृति ६।७४

सम्यग्दर्शन के बिना पापी नसार में भटकता है, किन्तु सम्यग्दृष्टि अज्ञान के कर्मों में निष्पन्न नहीं होता ।

५. नागमदिट्ठी नया अमूट ।

—दशर्वफाल्पि १०।७

सम्यग्दृष्टि मदा अमूट है, वह नागमदृष्टि में जड़ित नहीं होता ।

६. जे अणत्तदमी से अणत्तारामे,

जे अणत्तारामे से जगन्नदमी ।

—आचाराग ३१

जो अनन्यदर्शी-सम्यग्दृष्टि है, वह अनन्यभाराम-परमार्थ में रमण करनेवाला है। जो अनन्यभारामवाला है, वह अनन्यदर्शी है। तत्त्व यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव अद्वितीय आनन्द में रमण करता है।

११. ज कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्व णिज्जरणिमित्त ।

—समयसार १६३

सम्यग्दृष्टि आत्मा जो कुछ भी करता है, वह उसके कर्मों की निर्जरा के लिए ही होता है।

१२. खवेत्ति अप्पाणममोहदसिणो । — दशवैकालिक ६।६२

तत्त्वदर्शी पुरुष अपने पूर्व कर्मों का क्षय कर डालते हैं।

१३. सम्मदिट्ठी जीवो, गच्छई नियम विमाणवासिमु ।

जह न विगयसम्मत्तो, अह नवि वद्धाउयपुव्व ॥

सम्यग्दृष्टिजीव निश्चित रूप से वैमानिकदेवों में जाता है, लेकिन शर्त यह है कि मरने के वक्त सम्यक्त्व विद्यमान हो और सम्यक्त्व के पूर्व आयुष्य का वध न पडा हो।

१०. सम्यग्दृष्टि जीव तैरते हुए जहाज के समान समुद्र में नहीं डूबता। वह नटों के समान जय-पराजय में मुख-दुःख नहीं मानता। वह मसार को जेल समझता है न कि राजमहल। वह काली कोठरी में न होकर काँच की कोठरी में है, जिसने स्व-पर को देख सकता है। वह खुद को घर का मालिक न मान कर मैनजर मानता है। वह वस्तु को गथावस्थितरूप में देखता है, रोगी नेत्रवत् विष्टतरूप में नहीं।

११ सम्यग्दृष्टि को इन १२ बोलो का चिन्तन करते रहना चाहिए—

मैं भव्य हू या अभव्य, सयम्गदृष्टि हू या मिथ्यादृष्टि,  
परित्त हू या अपरित्त, सुलभवोधि हू या दुर्लभवोधि,  
चरम हू या अचरम, आराधक हू या विराधक ।

—राजप्रश्नीय-सूर्याभाधिकार

१२ सम्यग्दृष्टि जीवों को ऐसा विद्वान् कभी न करना चाहिए कि लोक-आलोक, जीव-अजीव, पुण्य-पाप, क्षान्त्रव-सवर, वेदना-निर्जरा, बन्ध-मोक्ष, धर्म-अधर्म, क्रिया-अक्रिया, क्रोधादि-कपाय, राग-द्वेष, चतुर्गति-रूपसत्तार, मोक्ष-अमोक्ष, एव सिद्धस्थान नहीं हैं, किन्तु निश्चितरूप से मानना चाहिए कि उक्त वस्तुएँ विद्यमान हैं । —सूत्रकृताग श्रुत २, अ० ५, गाथा १२ में जागे

१३. निस्तकिय-निवकखिय-निच्चित्तिगिच्छा अमूढदिट्ठी य ।  
उववूह-थिरीकरणे, वच्छल्ल-पभावणे अट्ठ ॥

—उत्तराध्ययन २८।३१

(१) सर्वज्ञ भगवान् की वाणी में रुदेह नहीं करना, (२) अनत्य मनो का चमत्कार देखकर उनकी अभिन्तापा नहीं करना, (३) धर्मफल की प्राप्ति के विषय में शका नहीं करना, (४) अनेक मत-मतान्तरो के विचार नुनकर दिग्मूढ न बनना अपात् अपनी गच्छी श्रद्धा में न डोलना, (५) गुणितो के गुणों की प्रशंसा करना और गुणी बनने का प्रयत्न करना (६) धर्म में विश्वचित होने हुए प्राणी को नमस्कार पुन. धन में स्थापित करना, (७) दीनतागभापित धर्म का हिन करना,

और स्वधर्म-बन्धुओं के साथ धार्मिकप्रेम रखना एव उन्हें धार्मिक सहायता देना, (८) मद्धर्म की प्रभावना करना ये आठ सम्यग्दृष्टि जीवों के अचारने योग्य कार्य हैं अर्थात् सम्यक्त्व के आठ आचार हैं ।

१४ मिच्छत्त परियाणामि, सम्मत उवसपज्जामि ।

—आवश्यकनिर्युक्ति ×

मैं मिथ्यात्व का त्याग करता हूँ एव सम्यक्त्व को अंगीकार करता हूँ ।

१५. दिट्ठम दिट्ठि न लूसएज्जा । —सूत्रकृताग १४।१५

सम्यग्दृष्टि को चाहिए कि वह अपनी दृष्टि को दूषित न करे ।

१६. अवच्छलत्ते य दसणे हाणी । —बृहत्कल्पभाष्य २७।११

धार्मिकजनो में परस्पर वात्सल्यभाव की कमी होने पर सम्यग्दर्शन की हानि होती है ।

१७. ते धन्ना सुकयत्था, ते सूरा तेवि पडिया मणुया ।

सम्मत्त सिद्धियर, सुविणे वि ण मइलिय जेहि ॥

जिनहोने समस्त अर्थ को मित्र करनेवाले सम्यक्त्व को स्वप्न में भी मैना नहीं किया—वे मनुष्य धन्य हैं, कृतार्थ हैं, शूर हैं एव वे ही पण्डित हैं ।

१८. जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयण जे करेति भावेण ।

अमला अमकिन्दिट्ठा, ते होति परित्तसमारी ॥

—उत्तराध्ययन ३६।२६१

जो व्यक्ति जिनवाणी में अनुक्त हैं एव उसके अनुगत मद्भावों में प्रिया करते हैं तथा जो मिथ्यात्वादि मूल और रागादि क्लेश में रहित हैं, वे परित्तनमारी होते हैं ।

१. सद्वा परमदुल्लहा । —उत्तराध्ययन ३।६  
सच्ची श्रद्धा का मिलना अत्यन्त कठिन है ।
- २ धर्म के मूल में श्रद्धा रही है । जहाँ श्रद्धा नहीं है, वहाँ धर्म भी नहीं है । — गांधी
- ३ विना श्रद्धा की क्रिया मृतशरीर पर शृगार के समान है ।
- ४ विना श्रद्धा के व्यक्ति काली विदियों में शून्य-आँखों के समान है ।
- ५ यूरोप में “माइकल एजिलो” नामक चित्रकार था । दूसरे चित्रकार ने ईर्ष्याविश एक चित्र बनाया, किन्तु उसको कमी न मनज सका । एजिलो आया एव चित्र की आँखों में दो काली विदियों लगा दी । अब तो चित्र अद्भुत ही हो गया ।
- ४ श्रद्धा और विश्वास न रहे तो क्षण भर में प्रलय हो जाये । —गांधी
६. ज्ञान और श्रद्धा विना, अधतुल्य उत्सान ।  
षडी निपम्मी हो न यदि मूर्ख और निमान ॥ ४३ ॥



पढे लिखे वक्ता बने, काव्यो के कर्तार ।

सयम मे श्रद्धा न यदि, तो सब कुछ बेकार ॥ ४५ ॥

सयम की श्रद्धा बिना, घरा वेप मे क्या ?

तेल न दीपक मे रहा, समझो शीघ्र बुझा ॥ ४६ ॥

—दोहा-सदोह

७ श्रद्धा किसी के सलाह की राह नही देखती ।

—गांधी

८ श्रद्धा परमात्मा मे होनी चाहिये, अपने नेता मे होनी चाहिये, अपने लक्ष्य के प्रति होनी चाहिये, अपने कार्य के प्रति होनी चाहिये और फिर अपने प्रति होनी चाहिये ।

—आचार्य तुलसी



१ ज सक्कड त कीरड, ज न सक्कड तयम्मि सदहणा ।  
सदहमाणो जीवो, वच्चड अयरामर ठाण ॥

—धर्मसंग्रह २।२१

जिनका आचरण हो सके, उसका आचरण करना चाहिये एव जिसका आचरण न हो सके, उस पर श्रद्धा रखनी चाहिये । श्रद्धा रखता हुआ जीव जरा एव मरणरहित मुक्ति का अधिकारी होता है ।

२ अदक्खु व दक्खुवाहिय सदहसु । —सूत्रकृताग २।३।११

नही देखनेवालो ! तुम देखनेवालो की बात पर विश्वास करके बनो !

३ श्रद्धावाल्लभते ज्ञान, तत्तपः सयतेन्द्रिय ।

ज्ञान तद्वद्वा परा गान्ति-मचिरेणाधिगच्छति ॥

—गीता अ० ४।३१

श्रद्धावान् व्यक्ति ज्ञान की प्राप्ति होता है और उन्द्रियो या नयम करता हुआ तपयुक्त बनता है । नदज्ञानप्राप्ति के बाद उसे मोक्ष ही उद्दृष्ट गान्ति (मुक्ति) मिल जाती है ।

पढे लिखे वक्ता बने, काव्यो के कर्तार !

सयम मे श्रद्धा न यदि, तो सब कुछ बेकार ॥ ४५ ॥

सयम की श्रद्धा बिना, धरा बेप मे क्या ?

तेल न दीपक मे रहा, समझो शीघ्र बुझा ॥ ४६ ॥

—दोहा-संदोह

७ श्रद्धा किसी के सलाह की राह नही देखती ।

—गाथी

८. श्रद्धा परमात्मा मे होनी चाहिये, अपने नेता मे होनी चाहिये, अपने लक्ष्य के प्रति होनी चाहिये, अपने कार्य के प्रति होनी चाहिये और फिर अपने प्रति होनी चाहिये ।

—आचार्य तुलसी



१ ज सककड त कीरड, ज न सककड तयम्मि सदृहणा ।  
सदृहमाणो जीवो, वच्चइ अयरामर ठाण ॥

—धर्मसंग्रह २।२१

जिसका आचरण हो सके, उसका आचरण करना चाहिये एव  
जिसका आचरण न हो सके, उस पर श्रद्धा रखनी चाहिये ।  
श्रद्धा रखता हुआ जीव जरा एव मरणरहित मुक्ति का  
अधिकारी होता है ।

२ अदक्खु व दक्खुवाहिय सदृहसु । — सूत्रकृताग २।३।११  
नहीं देखनेवालो ! तुम देखनेवालो की बात पर विश्वास  
करके चलो !

३. श्रद्धावात्लभते ज्ञान, तत्तप. नयतेन्द्रिय ।

ज्ञान लब्ध्वा परा शान्ति-मचिरेणाधिगच्छति ॥

—गीता अ० ४।३१

धत्तावान् व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त होता है और इन्द्रियो का गमन  
कमता हुआ तपयुक्त बनता है । मद्ज्ञानप्राप्ति के बाद उसे  
शीघ्र ही उत्कृष्ट शान्ति (मुक्ति) मिल जाती है ।

४. अश्रद्धा परम पापं, श्रद्धा पापविमोचनी ।  
जहाति पाप श्रद्धावान्, सर्पा जीर्णमिव त्वचम् ॥

अश्रद्धा उत्कृष्ट पाप है और श्रद्धा पाप को नष्ट करनेवाली है । श्रद्धावान् व्यक्ति पाप को उसी प्रकार छोड़ देता है, जैसे जीर्ण कचुकी को साँप ।



- १ कह-कह वा वितिगिच्छतिन्ने । —सूत्रकृताग १४६  
साधक को चाहिए कि वह किसी न किसी तरह शका से दूर हो जाए ।
२. वितिगिच्छासमावन्नेण नो लहई समाहि ।  
—आचाराग ५१५  
धर्मफल में सदेह रखनेवाला समाधि नहीं पा सकता ।
३. अज्ञञ्चाश्रद्धघानश्च, सणयात्मा विनश्यति ।  
—गीता अ० ४१४०  
जो अज्ञानी है, श्रद्धाहीन है, भीरु जो शंकाशील है, वह नष्ट हो जाता है ।
४. अश्रद्धघाना पुरपा, धर्मस्यास्य परंतप ।  
अप्राप्य मा निवर्तन्ते, मृत्युसत्तारवर्त्मनि ॥  
—गीता अ० ६१३  
हैं अज्ञान । इस धर्म पर श्रद्धा करनेवाले पुरुष मुझे न पाकर नकार में मटकते रहते हैं ।
५. मोर-अण्डे का दृष्टान्त—  
चम्पानगर-निवासी दो बालमित्रों को मोर के अण्डे

मिले। एक इसमें से मोर बनेगा या नहीं ! ऐसे गच्छाशील होकर अण्डे को वार-वार हिलाकर देखने लगा एव अण्डा नष्ट हो गया। दूसरा मित्र विश्वस्त होकर अण्डे की विधिवत् सार-सभाल करने लगा। फलस्वरूप उसमें से अद्भुत मोर उत्पन्न हुआ। मयूरपालक से नृत्यकला सीखकर वह ऐसा नाचने लगा कि दर्शकलोग ताज्जुब होकर वाह-वाह करने लगे।

—ज्ञातासूत्र अध्ययन ३ के आधार पर

#### ६. शंका से कील ढीली रह गई—

इन्द्रप्रस्थ नगर में राजा अनगपाल राज्य करते थे। एक दिन उनकी अध्यक्षता में नया गढ़ स्थापित करने के लिए ज्योतिषी ने पृथ्वी में एक मन्त्रित कील डाली एव कहा—यह कील शेषनाग के फन पर लगी है अतः राज्य सुस्थिर होगा। राजा आदि को विश्वास न होने से वह कील निकाली गई तो खून से भरी हुई निकली। राजा ने उसे पुनः लगाने के लिये कहा। कील लगाकर ज्योतिषी बोला—अब यह पूर्ववत् मुट्ट नहीं बनेगी—ढीली रहेगी एव यहाँ किसी का राज्य स्थिर न हो सकेगा। उस दिन में शहर का नाम (जो इन्द्रप्रस्थ था) ढीली हुआ और अपभ्रंश होकर ढीली का दिव्यो बन गया।

—पुरानी पद्याओं के आधार पर

७ याचार्य आर्यापाढ शिष्यो को अनुयोग तप करवा रहे थे । वीच मे स्वर्गवासी बने, मूल गरीर मे प्रविष्ट होकर तप पूरा करवाया, फिर प्रकट होकर भेद खोला । शिष्यो के मन मे गका हुई । परस्पर वन्दना-व्यवहार छोडा । राजा बलभद्र ने समझाने के लिए उन्हे मारने का हुक्म दिया—यह कहकर कि क्या पता आप साधु है या चौर ! (साधु समझ गए) ।

(विशेषावश्यकनाप्य के आधार पर)





१. न हि सशयमनारूह्य, नरो भद्राणि पश्यति ।

जिज्ञासारूप सशय के बिना मनुष्य कल्याण का मार्ग नहीं देख सकता ।

२. आशिक्षायै प्रश्नितम्, उपशिक्षाया अभिप्रश्नितम् ।

यह समझ लो कि जो प्रश्न करता है, वही उस विषय को जानता है । समीक्षक ही किसी पदार्थ को ठीक-ठीक समझ सकता है ।

३. शंका दो प्रकार की होती है—जिज्ञासारूप और सदेह-रूप । गौतम की शंकाये जिज्ञासारूप थी । उनके प्रश्न सशयप्रश्न माने गये हैं ।

४. छ प्रकार के प्रश्न—

(१) संशयप्रश्न—गौतमस्वामीवत् पूछना, वह ।

(२) व्युद्ग्रहप्रश्न—कलहार्थ, जो प्रतिवादी पूछता है, वह ।

(३) अनुयोगीप्रश्न—अपने भाव को स्पष्ट करने के लिए जो वक्ता पूछा करता है, वह ।

- (४) अनुलोमप्रश्न—आप कुशल तो हैं—इत्यादि अनुकूल करने के लिए जो पूछा जाता है, वह ।
- (५) ज्ञानप्रश्न—केशी-गीतमवत् जो ज्ञानी से ज्ञानी पूछता है, वह ।
- (६) अतथाज्ञानप्रश्न—जो अज्ञानी-अज्ञानी से पूछता है, वह । (ऊटपटाग प्रश्न ।)
- (स्यानाग ६।५३४ के आधार पर)



१. विश्वास ही जीवन की प्रेरक शक्ति है ।  
—टालस्टाय
२. विश्वास से बढ़कर कोई दवा नहीं, इलाज तो वहाना है—
३. हम विश्वास के आधार पर चलते हैं । दृष्टि के आधार पर नहीं ।  
—बाइबिल
४. जो कुछ मैंने देखा है, वह मुझे यही शिक्षा देता है कि जो कुछ मैंने नहीं देखा, उसके लिए प्रभु पर विश्वास करूँ ।  
—इमर्तन
५. आस्था कहते हैं उन वस्तुओं में विश्वास करने को, जिन्हें हम देख नहीं सकते । इसका पुरस्कार होता है उस वस्तु का दर्शन, जिसमें हम विश्वास करते हैं ।  
—संत अगस्तिन
६. विश्वास से साक्षात्कार, विनय में उन्नति, सत्य में समता, प्रेम में आनन्द, धैर्य में शान्ति, वैराग्य में ज्ञान, समर्पण में भक्ति, और निर्भरता में मुक्ति प्राप्त होती है ।
७. निपाही की तरह ईश्वर आदि का भी विश्वास रखो !
८. कवनहूँ सिद्धि कि विनु विश्वासा । —नामचरितनामस

६ मुना जाता है कि ईश्वर के विश्वास में गौतम—मुनि के पैरो में आखें हो गईं एव बालक के घर चीनी आ गई। गुरु के विश्वास में शिष्य का रोग मिट गया। धर्म के विश्वास में जिनदास श्रावक को वचनसिद्धि का वर मिला और प्रभुवाणी के विश्वास में रोहणिया चोर स्वर्गगामी बना। —धनमुनि

१० विश्वास एक ऐसी चीज है कि इसके बिना किसी का काम नहीं चल सकता। ससार में यदि पुत्र माता का, सास बहू का, पति स्त्री का, सेठ मुनीम का, राजा दीवान का एव गैगी वद्य का विश्वास न करे तो क्या दया हो ? अन्न, जल, फल, गाक आदि का विश्वास न करे तो दुनिया भूखा-प्यासी मर जाये। तो फिर आत्मा-परमात्मा एव धर्म आदि पर विश्वास न रखनेवालों का क्या हाल होगा ? —एफ विचारक

११ विद्वानों के बल पर ही वकीलों का लाखों—करोड़ों का केश, डॉक्टरों को शरीर एव नाइयों को शरीर का सर्वोत्कृष्ट-अंग-मुँह सीपा जाता है।

१२ मान्दर के विश्वास में ए-बी-सी-डी आती हैं, पारस्परिक विश्वास में लाखों-करोड़ों का लेन-देन व व्यापार होता है, आर तो क्या ? रेल, मोटर, स्टीमर एव विमानों का चालण भी विश्वास के आधार पर ही होता है।

१३. महापुरुषो का विश्वास इतना प्रबल और अनन्य होता है कि वे पानी का घी और बालु की चीनी तक बना सकते हैं । —स्वामी शिवानन्द
१४. सदाचरण के अतिरिक्त विश्वास को दृढ बनानेवाली दूसरी वस्तु नहीं है । — एडीसन
१५. जैसे-फल के पहले फूल, वैसे ही सत्कार्य के पहले विश्वास । —ह्वै वेंटली
- जब बहुत आदमियों से काम लेना हो तो अविश्वास रख कर चलना गलत नीति है । —गाधी
१६. तीन पर अवश्य विश्वास करो—(१) भगवान की भक्ति पर (२) आत्मा की शक्ति पर. (३) शुद्ध आचरण पर ।
१७. न सर्वत्रविश्रम्भी न सर्वाभिगङ्की ।  
—चरकसहिता सूत्र स्थान ८।२६
- न तो सब का विश्वास करना चाहिए और न सब में शक करनी चाहिए ।
१८. प्रेम सबसे करो । विश्वास कुछ पर करो । किसी का बुरा न करो । —शेखरपियर

१. अविश्वस्तेषु विश्वासो न कर्तव्यः ।

—कौटिलीय-अर्थशास्त्र

विश्वाम के अयोग्य व्यक्तियों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ।

२ न विश्वासस्तु कर्तव्य, कृतवैरै कथञ्चन ।

जिससे वैर हो, उनका विश्वास कभी नहीं करना चाहिए ।

३ तदजाकृपाणीय यः परेषु विश्वाम ।

—नीतिसाम्यामृत १।१६

पशुओं पर विश्वास करना बकरी की गर्दन पर तलवार धरने के समान है ।

• ४ नदीना नखिना चैव, श्रृङ्गिणा शस्त्रपाणिनाम् ।

विश्वसो नैव कर्तव्यः, स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥

—साण्डयनीति १।१५

नदियों का, नखवाने निह-याप आदि स्त्रिक जन्तुओं का, शीशवाने गाय-भैर आदि पशुओं का, शृङ्ग आदि शस्त्रधारी पुरुषों का, स्त्रियों का और राजाओं का—इन सबका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ।

५ मार्जानो महिषो भेषः, काता कापुरुषान्तया ।

विज्ञातात्प्रभवन्त्येते, विश्वासस्तत्र नोचितः ॥

—हितोपदेश १।८८

मार्जार, महिष, मेघ, काक और कापुरुष (कायर)—ये विश्वास करने से प्रत्युत्त आक्रमण करते हैं अतः इन पर विश्वास करना अनुचित है ।

६ वल्लिवारि वणिग् विष विषधरो वैशश्च वेण्या वसु, वक्री वानर-वारणश्च विषयान्धो वैरिको वञ्चकः । व्याघ्रो वै वसुधाधिपश्च वनिता वाजी वृको वेसरो, विग्वास्या न कदाप्य हो । वुघजनैरेते वकाराः किल ।

वल्लि-अग्नि, वारि-पानी, वणिक, विष, विषधर-माप, वैश, वेण्या, वसु-धन, वक्री-टेढा, वानर, वारण-हाथी, विषयान्ध, वैरी, वचक-ठग, व्याघ्र, वसुधाधिप-गजा, वनिता-स्त्री, वाजी-घोडा, वृक-भेडिया, वेनर-खच्चर, इतने 'वकार' आदि जानो का विद्वज्जनो को कभी विश्वास न करना चाहिए ।

७. न विश्वसेत कुमित्रे तु, मित्रे चापि न विश्वसेत् ।  
कदाचित् कुपित मित्र, सर्व गुह्य प्रकाशयेत् ॥

—चाणक्यनीति २।६

कुमित्र पर तो विश्वास करना ही नहीं चाहिये, किन्तु मित्र पर भी न करना चाहिये । कदाचित् मित्र भी नष्ट होकर मारा गुप्त भेद खोल दे ।

८ चार पर कभी भरोसा मत करो—

(१) शत्रु के प्रेम पर, (२) स्वार्थी की प्रशंसा पर,  
(३) ज्योतिषी की भविष्यवाणी पर, (४) धूर्त के नदानार पर ।

९. यथावतजी—राजा रायमिहजी का अविश्वास देखकर

दीवान कर्मचन्दजी बछावत सपरिवार वीकानेर मे दिल्ली चले गये । अकबर ने उन्हें कुछ ओहदा दे दिया । आखिर वीमार मुतकर महाराज उनमे मिलने गये एव रोये । कर्मचन्दजी ने अपने पुत्रो से कहा— आँसू दुख के न होकर मैं मुख मे मर रहा हूँ, इस बात के थे । भूलकर भी तुम इनका विश्वास न करना । उनकी मृत्यु के बाद पुत्रादि राजा के आग्रहवश वीकानेर आये, दीवान बने एव फिर सब कुमृत्यु मे मारे गये ।





१ न विश्वासघातात् पर पातकमस्ति ।

—नीतिवाक्यामृत २१।२२

विश्वासघात से बढकर कोई पाप नहीं ।

२. विश्वासप्रतिपन्नाना, वञ्चने का विदग्धता ।

अङ्कमारुह्य सुप्तं हि, हत्वा किं नाम पौरुषम् ?

—हितोपदेश ४।५१

विश्वास में आये हुये व्यक्तियों को ठगना कौनसी बुद्धिमत्ता है  
और गोद में सोये हुए को मारना कौनसी बहादुरी है ?

✱

१ विपरीततत्त्वश्रद्धा मिथ्यात्वम् ।

—जैनसिद्धान्तदीपिका ४।१६

जीवादि तत्त्वों को विपरीत समझना मिथ्यात्व है ।

२ अदेवे देवबुद्धिर्या, गुरुधीरगुरावपि ।

अधर्मो धर्मबुद्धिश्च. मिथ्यात्व तद्विपर्ययात् ॥

—योगशास्त्र २।३

नाग-हेमयुक्त देव में भगवद्बुद्धि का होना, महाप्रतहीन गुरु में नद्गुणबुद्धि का होना और अधर्म में धर्मबुद्धि का होना मिथ्यात्व है, क्योंकि यह विपरीत धारणा है ।

३ मिथ्यात्व परमो रोगो, मिथ्यात्व परम तमः ।

मिथ्यात्व परम. शत्रु-मिथ्यात्व परम विषम् ॥

—योगशास्त्र

मिथ्यात्व बड़ा भारी रोग है, घोर अन्धकार है. उत्कृष्ट शत्रु है और हानात्मक जहर है ।

४ मिच्छादिदिट्ठि न नेवेय्य ।

—धम्मपद १६७

मनुष्य को मिथ्याधारणा से बचना चाहिए ।

५ नउरन्य मिथ्यात्वयुत न जीवितम् ।

मिथ्याशब्दयुक्त जीवा मनुष्य के लिए उचित नहीं ।

★

- दो प्रकार का मिथ्यात्व है—लौकिक मिथ्यात्व और लोकोत्तर मिथ्यात्व ।
- ५. लौकिकमिथ्यात्व दो तरह का है—देवसम्बन्धी और गुरुसम्बन्धी ।
- ◆ लोकोत्तरमिथ्यात्व भी दो प्रकार का है—देवसम्बन्धी और गुरुसम्बन्धी ।



१ मिच्छादिदृष्टि समादाना, सत्ता गच्छति दुर्गति ।

—धम्मपद ३।६

मिथ्यादृष्टि को धारण करनेवाले जीव दुर्गति में जाते हैं ।

२. मिच्छादिदृष्टी अणारिया, ससारमणुयरियट्ट ति ।

—सूत्रकृताण २।३२

मिथ्यादृष्टि अनायं ससार में चक्र लगाते रहते हैं ।

३. मिच्छादसणरत्ता, सनियाणा हु हिंसगा ।

उय जे मरति जीवा, तेसि पृण दुल्लहा बोही ॥

—उत्तराध्ययन ३६।२५५

जो जीव मिथ्यादर्शन में रक्त है, निदानमहित है एवं हिंसा में प्रवृत्त है—ऐसी स्थिति में मरनेवालों को अग्रिम जन्म में सम्मान्य का मिलना कठिन है ।

४ कुपवयणपामळी, सब्बे उम्मग्गपट्ठिया ।

—उत्तराध्ययन २३।३३

'कृ' अर्थात् अमत्य प्रवृत्ति करनेवाले सभी पापवृत्ति उन्माद-गामी हैं ।

★

## तीसरा कोष्ठक

१

तत्त्व

१. तत्त्व पारमार्थिक वस्तु । —जैनसिद्धान्तदीपिका २।१

पारमार्थिक वस्तु का नाम तत्त्व है ।

२. जिणपन्नत्त तत्तं । —आवश्यक ४

जिनेश्वर देव प्ररूपित सवर-निर्जरारूप धर्म ही तत्त्व है ।

३. जीवाऽजीवा य वधो य, पुण्ण पावासवो तथा ।

सवरो निज्जरा मोक्खो, सतेए तहिया नव ।

—उत्तराध्ययन २८।१४

(१) जीव, (२) अजीव, (३) वध, (४) पुण्य, (५) पाप,  
(६) आस्रव (७) सवर, (८) निर्जरा, (९) मोक्ष—ये नव-  
तत्त्व सत् पदार्थ हैं ।

(स्थानाग ६।६६५ में भी नव सद्भाव पदार्थ कहे हैं)

४. अतरत्तच्च जीवो, वाहिरत्तच्च हवति सेसाणि ।

—कातिकेयानुप्रेक्षा ३३४

जीव (आत्मा) अन्तस्तत्त्व है, बाकी सब द्रव्य बहिस्तत्त्व हैं ।

५. एकागो हि बहिर्वृत्ति-निवृत्तस्तत्त्वमीप्यते ।

एकाग्र होकर बाह्यवृत्तियों में निवृत्त होनेवाला व्यक्ति ही तत्त्व  
(वस्तु के रहस्य) को पाता है ।

- ६ यथा-यथा समायाति, सवित्ती तत्त्वमुत्तमम् ।  
 तथा-तथा न रोचन्ते, विषया सुलभा अपि ।  
 यथा-तथा न रोचन्ते, विषया सुलभा अपि ।  
 तथा-तथा समायाति, सवित्तो तत्त्वमुत्तमम् ।

— इष्टोपदेश ३७-३८

बुद्धि में ज्यों-ज्यों उत्तमतत्त्व प्रवेश करता है त्यों-त्यों मूलभ होने पर भी इन्द्रियों के शब्दादि विषयो में रुचि नहीं रहती एव ज्यों-ज्यों वह रुचि हटती है, त्यों-त्यों आत्मतत्त्व बुद्धि में प्रविष्ट होता है ।

- ७ गहे तत्त्व जानी पुरुष, वात विचारि-विचारि ।  
 मथनहारि तजि छाछ को, माखन नेत निकारि ।  
 ८ समियति मन्नमाणस्स समिया वा असमिया वा समिया  
 होउ ।

—आचाराग ५।५

आत्माश्रिता से जिस तत्त्व को मत्त माना जाए, उनके लिए वह तत्त्व मत्त ही है, फिर चाहे वह मत्त हो या अमत्त ।

- १ द्रव्वं सल्लक्खणय, उप्पादव्वयधुवत्तसजुत्त ।  
—पञ्चास्तिकाय १०  
द्रव्य का लक्षण सत् है और वह सदा उत्पाद, व्यय एवं ध्रुवत्व-  
भाव से युक्त होता है ।
- २ सव्वं चिय पडसमयं, उपज्जइ नासए य निच्च च ।  
—विशेषावश्यकभाष्य ५४४  
विश्व का प्रत्येक पदार्थ प्रतिक्षण उत्पन्न भी होता है, नष्ट भी  
होता है और साथ ही नित्य भी रहता है ।
- ३ नो य उप्पज्जए अस । —सूत्रकृतांग १।१।१६  
असत् कभी सत् नहीं होता ।
- ४ अत्थित्त अत्थित्ते परिणमइ,  
नत्थित्त नत्थित्ते परिणमइ ।  
—भगवती १।३  
अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व नास्तित्व  
में परिणत होता है अर्थात् सत् सदा सत् ही रहता है और  
असत् सदा असत् ।
- ५ ण एव भूत वा भव्वं वा भविस्सति वा,  
ज जीवा अजीवा भविस्संति ।  
अजीवा वा जीवा भविस्सति ॥ —स्थानाङ्ग १०

न ऐसा कभी हुआ है, न होता है और न कभी होगा ही कि जो चेतन हैं, वे कभी अचेतन (जड) हो जाएँ, जोर जो जड अचेतन हैं, वे चेतन हो जाएँ !

६ गुणाणमासओ दव्व, एगदव्वस्सिया गुणा ।

लक्खण पज्जवाण तु, उभओ अस्सिया भवे ॥

—उत्तराध्ययन २८।६

पुद्गल में वर्ण-गंध आदि की तरह जिसमें गुण अवश्य रहे, वह द्रव्य है। जीव में चेतनता की तरह जो मदा द्रव्य के साथ ही रहे, वे गुण हैं तथा जो एकात्म, पृथक्त्व, सगुणा, आकार व समय-विभाग की तरह द्रव्य-गुण दोनों में रहे, वह पर्याय है।

७. धर्माधर्माकाय-पुद्गुल-जीवास्तिकाया द्रव्याणि, कालश्च ।

—जैनसिद्धान्तदीपिका १।१-२

धर्मान्तिकाय, अधर्मान्तिकाय, आकाशान्तिकाय, पुद्गलान्तिकाय और जीवान्तिकाय—ये द्रव्य हैं, और काल भी द्रव्य है।

८ द्रव्य पर्यायवियुत, पर्याया द्रव्यवर्जिता ।

न च कदा केन किं स्या, दृष्टा मानेन केन च ॥

पर्याय के बिना द्रव्य और द्रव्यरहित पर्यायों तथा, कब, किनसे, किस स्वरूप एवं प्रमाण से देखी ? अर्थात् किनी भी तरह नहीं मिलती।

९. निर्विशेष हि सामान्य, भवेत् स्वरविषाणवत् ।

सामान्यरहितत्वेन, विशेषान्तर्द्विदेव हि ॥

निर्देश के बिना सामान्य शब्दों के अभाव में और सामान्यरहित विशेष भी घना ही है।



८ गइलकखणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलकखणो ।  
 भायण सव्वदव्वाण, नह ओगाहलकखणं ॥६॥  
 वत्तणालकखणो कालो, जीवो उवओगलकखणो ।  
 नाणेण दसणेण च, सुहेण य दुहेण य ॥१०॥  
 सद्दन्धयार-उज्जोओ, पभा छायातवो वि य ।  
 वन्न-रस-गन्ध-फासा, पुग्गलाण तु लकखण ॥१२॥

—उत्तराध्ययन २८

गति में अपेक्षित सहायता करना धर्मद्रव्य का लक्षण है । ठहरने में अपेक्षित सहायता करना अधर्मद्रव्य का लक्षण है । आकाश सभी द्रव्यों का भाजन है । अवगाहन करना एव दूसरे द्रव्यों को अवकाश देना उमका लक्षण है ॥६॥

पदार्थों के परिवर्तन में सहायक होना कालद्रव्य का लक्षण है । जीवद्रव्य का लक्षण उपयोग है तथा ज्ञान, दर्शन, मुख और दुःख से भी जीव पहचाना जाता है ॥१०॥

शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श—ये पुग्गलद्रव्य के लक्षण हैं ॥१२॥

९ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य—

घटमौलिसुवर्णार्थी, नाशोत्पादस्थितिप्वलम् ।  
 शोक-प्रमोद-माध्यस्थ्य, जतो याति सहेतुकम् ॥१६॥  
 पयोव्रतो न दध्यत्ति, न पयोत्ति दधिव्रत ।  
 अगोरगव्रतो नोभे, तस्माद्वस्तु त्रयात्मकम् ॥६०॥

—आप्तमीमासा

तीन मनुष्य नुनार की दूजान पर गए । एक को स्वर्णघट देना था, दूसरे को स्वर्णमुकुट की आवश्यकता थी एव तीसरा केवल

स्वर्ण का डच्छुक था । सुनार स्वर्णघट को तोडकर स्वर्णमुकुट बना रहा था । उसे देखकर पहला शोकातुर हुआ, दूसरा खुश हुआ और तीसरा मध्यस्थ भाव में रहा । इनका कारण क्रमशः घट का नाश, मुकुट की उत्पत्ति और स्वर्ण की ध्रुवता थी ॥५६॥

दूध मात्र के ब्रतवाला दही नहीं खाता, दही के ब्रतवाला दूध नहीं पीता और गोरस के ब्रतवाला दूध-दही दोनों नहीं खा सकता—इसलिए वस्तु उत्पाद-व्यय-धौव्य तीनों गुणों से युक्त है ॥६०॥



१ अर्थस्यानेकरूपस्य, धीः प्रमाण तदगधी ।

नयो धर्मान्तरापेक्षी, दुर्णयोस्तन्निराकृति ॥

प्रमाण वस्तु के अनेक धर्मों का ग्रहण करता है और नय अन्य धर्मों की अपेक्षा रखता हुआ वस्तु के एक धर्म का ग्रहण करता है तथा दुर्णय एक धर्म का मण्डन करके दूसरे धर्मों का खण्डन करता है ।

२. सप्तभङ्ग्यात्मक वाक्य, प्रमाण पूर्णवोध कृत् ।

स्यात्पदादपरोल्लेखि, वचोयच्चैकधर्मगम् ॥

—उपाध्याय यशोविजयजी

सप्तभङ्गीरूप वाक्य स्यात्पद से युक्त होन के कारण पूर्णवोध अर्थात् वस्तु के सब धर्मों का ज्ञान करता है अतः वह प्रमाण है और जो एक धर्म विशेष का उल्लेख करता है, वह नय है ।

३ सत्त नया पण्णत्ता, त जहा—नैगमे, सगहे, ववहारे,

उजुसुत्ते, सद्दे, समभिरुद्धे, एवभूते । — स्यानाग ७।५५२

नात नय कहे हैं—(१) नैगम (२) सग्रह, (३) व्यवहार,

(४) ऋजुसूत्र, (५) शब्द, (६) समभिरुद्ध, (७) एवभूत ।

★

१. जइ जिणमय पवज्जह, ता मा ववहार-णिच्छए मुयह !  
एकेण विणा छिज्जई, तित्थ अण्णेण उ ण तच्च ॥

— समयसारवृत्ति, आगमसार

यदि तुम जिनमत स्वीकार करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय दोनों में से एक का भी त्याग न करो। व्यवहार के बिना तीर्थ एव आचार का उच्छेद हो जाता है और निश्चय के बिना तत्त्व का ही नाश हो जाता है।

२. ववहारणयो भासदि, जीवो देहो य ह्वदि खलु ढक्को ।  
ण दु णिच्छयस्स जीवो, देहो य कदापि एकट्ठो ॥

— समयसारवृत्ति २७

व्यवहार नय में जीव (आत्मा) और देह एक प्रतीत होते हैं, किन्तु निश्चयदृष्टि में दोनों भिन्न हैं, कदापि एक नहीं हैं।

३. तह ववहारेण विणा, परमत्वुवएसणमभवकां ।

— समयसारवृत्ति ८

धन्यकार (नय) के बिना परमार्थ (शुद्ध आत्मान्तर) का उपदेश करना असम्भव है।

४. कत्ता भोत्ता आदा, पोम्मलकम्मस्स होदि ववहारो ।

— नियमसार ६८

सत्ता पुद्गल-रमों का कर्ता और भोक्ता है, यह माय व्यवहार-दृष्टि है।



१ अर्थस्यानेकरूपस्य, धीः प्रमाण तदशधी ।  
 नयो धर्मान्तरापेक्षी, दुर्णयोस्तन्निराकृतिः ॥  
 प्रमाण वस्तु के अनेक धर्मों का ग्रहण करता है और नय अन्य धर्मों की अपेक्षा रखता हुआ वस्तु के एक धर्म का ग्रहण करता है तथा दुर्णय एक धर्म का मण्डन करके दूसरे धर्मों का खण्डन करता है ।

२ सप्तभङ्ग्यात्मक वाक्यं, प्रमाण पूर्णवोध कृत् ।  
 स्यात्पदादपरोल्लेखि, वचोयच्चैकधर्मगम् ॥

—उपाध्याय यशोविजयजी

सप्तभगीरूप वाक्य स्यात्पद मे युक्त होने के कारण पूर्णवोध अर्थात् वस्तु के सब धर्मों का ज्ञान करता है अतः वह प्रमाण है और जो एक धर्म विशेष का उल्लेख करता है, वह नय है ।

३ सत्त नया पण्णत्ता, त जहा—नैगमे, मगहे, ववहारे,  
 उजुसुत्ते, सद्दे, समभिरुद्धे, एवभूते । — स्थानाग ७।५५२  
 नात नय वहे हैं—(१) नैगम (२) मग्रह, (३) व्यवहार,  
 (४) ऋजुसूत्र, (५) शब्द, (६) नमभिरुद्ध, (७) एवभूत ।

★

१. जइ जिणमय पवज्जह, ता मा ववहार-णिच्छए मुयह ।  
एकेण विणा छिज्जई, तित्थ अण्णेण उ ण तच्च ॥

— समयसारवृत्ति, आगमसार

यदि तुम जिनमत स्वीकार करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय दोनों में से एक का भी त्याग न करो । व्यवहार के बिना तीर्थ एव आचार का उच्छेद हो जाता है और निश्चय के बिना तत्त्व का ही नाश हो जाता है ।

२. ववहारणयो भासदि, जीवो देहो य हवदि खलु इक्को ।  
ण दु णिच्छयस्म जीवो, देहो य कदापि एकट्ठो ॥

— समयसारवृत्ति २७

व्यवहार नय में जीव (आत्मा) और देह एक प्रतीत होते हैं, किन्तु निश्चयदृष्टि में दोनों भिन्न हैं, तथापि एक नहीं ? ।

३. तह ववहारेण विणा, परमत्युवएसणमगक्क ।

— समयसारवृत्ति ८

व्यवहार (नय) के बिना परमार्थ (सुख आत्मानन्द) का उपदेश करना असम्भव है ।

४. कत्ता भोत्ता आदा, पोग्गलकम्मन्न् होंदि ववहारो ।

— नियमसार १८

आत्मा पुद्गल-रत्नों का कर्ता नहीं होता, यह मात्र व्यवहार-दृष्टि में ।

★

अवद्धं परमार्थेन, वद्ध च व्यवहारत ।  
 ब्रुवाणो ब्रह्मवेदान्ती, नानेकान्त प्रतिक्षिपेत् ॥४॥  
 ब्रुवाणा भिन्न-भिन्नार्थान्, नयभेदव्यपेक्षया ।  
 प्रतिक्षिपेयुर्नो वेदा, स्याद्वाद सार्वतन्त्रिकम् ॥५॥

—अध्यात्मोपनिषद्

न्याय-वैशेषिक एक चित्र को अनेक रूपों में परिणत मानते हैं, वे 'अनेकान्त मिद्धान्त' का खण्डन नहीं कर सकते ।१॥

विज्ञानवादि-वाङ्मय एत आकार को अनेक आकारों से करविन (युक्त) मानते हैं, वे 'अनेकान्त मिद्धान्त' का खण्डन नहीं कर सकते ॥२॥

भट्ट और मुरारी के अनुयायी प्रत्येक वस्तु को सामान्य-विशेषात्मक मानते हैं, वे 'अनेकान्त मिद्धान्त का' खण्डन नहीं कर सकते ॥३॥

ब्रह्म वेदान्ती परमार्थ से ईश्वर को वद्ध और व्यवहार में उसको अवद्ध मानते हैं, वे अनेकान्त मिद्धान्त का खण्डन नहीं कर सकते ॥४॥

वेद भी स्याद्वाद का खण्डन नहीं कर सकते क्योंकि वे प्रत्यक्ष अर्थ (विषय) को नयकी अपेक्षा में भिन्न और अभिन्न दोनों मानते हैं । इस प्रकार प्रायः सभी मतावलम्बी स्याद्वाद को स्वीकार करते हैं ॥५॥

७ प्रश्नवशादेकस्मिन् वस्तुन्यविरोधेन स्यात्लाञ्छिता विधिनिषेधकल्पना सप्तभङ्गी ।

— जैनसिद्धान्तदीपिका ६।१६

प्रश्नवर्ता के अनुरोध से एक वस्तु में अविरोधरूप में 'स्यात्' शब्दयुक्त जो विधि-निषेध की कल्पना की जाती है, उसे सप्तभङ्गी कहते हैं । सप्तभङ्गी के मातृ भागों इस प्रकार हैं—

१ कथञ्चित् घट है, २ कथञ्चित् घट नहीं है, ३ कथचित् घट है और कथचित् घट नहीं है, ४ कथचित् घट अवक्तव्य है, ५ घट कथचित् है और कथचित् अवक्तव्य है, ६ घट कथचित् नहीं है और कथचित् अवक्तव्य है, ७ घट कथचित् है, कथचित् नहीं है और कथचित् अवक्तव्य है ।

८ तु गिया नगरी मे ५०० शिष्यो युक्त स्थविर पधारे ।  
श्रावक दर्शनार्थ गए एव प्रश्न किया—

सजमेण भते कि फले ? तवे कि फले ? (भगवन् ! सयम का क्या फल है एव तप का क्या फल है ?)

स्थविर 'सजमेण अण्हफले, तवेण वोदाणफले ।

(सयम का फल अनाभव होना है और तप का फल कर्मशुद्धि है ।)

श्रावक—यदि ऐसा ही है तो साधु देवलांक में किमने उत्पन्न होते हैं ?

कालियपुत्त ने कहा—पूर्वतप ने,

महिल ने कहा—पूर्वसयम ने,

आनन्द ने कहा—पूर्वकर्म श्रेय रह जाने ने,

काश्यप ने कहा—द्रव्यादि विषय के नग ने ।

भिन्न-भिन्न उत्तर सुनकर श्रावक कुछ मोच ही रहे थे कि ज्येष्ठस्थविर ने कहा—पूर्वसयम, पूर्वतप, पूर्वकर्म और मंग, स्वर्ग मे उत्पन्न होने के ये चारों ही कारण हैं, अतः चारों मुनियों का उत्तर नत्य है । मात्र अपेक्षा-भेद है । सुनकर श्रावक मनुष्ट हुए ।



उपरोक्त चर्चा सुनकर गौतम ने महावीर प्रभु से पूछा, उन्होंने भी यही उत्तर दिया ।

(आज यदि भिन्न-भिन्न संप्रदाय एक-दूसरे का खण्डन न करके स्याद्वाददृष्टि से चिन्तन करने लग जायें तो वैर-विरोध नष्ट होकर एकता हो जाय ।)

—भगवती सूत्र २।५ के आधार पर

- ◆ तीन देवों के नामांकित द्वारों से तीन मनुष्य मंदिर में गए—ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश का पृथक्-पृथक् पक्ष लेकर वाद-विवाद करने लगे । अन्त में पुजारी द्वारा (शिल्पी की कारीगरी से ही तीन रूप दीखते हैं, वस्तुतः एक ही मूर्ति है ।) समझाये जाने पर शान्त हुए ।
- ◆ रेल में भिन्न-भिन्न देशों के यात्री अंगूर खाना चाहते थे, लेकिन भाषा भिन्न होने से अरबी उसे एनब, तुर्की उजम, अंग्रेजी ग्रेप्स और हिन्दुस्तानी अंगूर नाम से पुकार रहा था । स्टेशन आया और सबने एक ही वस्तु (अंगूर) खाई । वास्तव में भाषा की अपेक्षा से भिन्नता थी ।



- १ जावइया उस्सग्गा, तावइया चेव हु ति अववाया ।  
जावइया अववाया, उस्सग्गा तत्तिया चेव ॥

—बृहत्कल्पभाष्य ३२२

जितने उत्सर्ग (निषेधवचन) हैं, उतने ही उनके अपवाद (विधि-वचन) भी हैं। और जितने अपवाद हैं, उतने उत्सर्ग भी हैं।

२. उस्सग्गेण णिसिद्धाणि, जाणि दब्बाणि मथरे मुण्णिणो ।  
कारणजाए जाते, सब्बाणि वि ताणि कप्पति ॥

—निशोधभाष्य ५२४५ तथा बृहत्कल्पभाष्य ३३२७

उत्सर्गमार्ग में नमर्ग मुनि जो जिन बातों का निषेध किया गया है, विशेष कारण होने पर अपवादमार्ग में वे सब वर्तव्यरूप में विहित हैं।

- ३ णवि किञ्चि अणुण्णाय, पट्टिनिद्धं चावि निणवरिदेहि ।  
एसा तेसि आणा, कज्जे नन्नेण होवव्व ॥

—निशोधभाष्य ५२४८ तथा बृहत्कल्पभाष्य ३३३०

जिनोपवर्तक ने न किसी काम को एसा ही अनुमति दी और न एसा ही निषेध ही किया है। उन्हीं कामों पर ही निषेध करने को ही है, पर नन्नेण, प्रमादितरुप में साध करने।

४ निक्कारणम्मि दोसा, पडिबधे कारणम्मि णिद्दोसा ।

—निशीथभाष्य ५२८४

बिना विशिष्ट प्रयोजन के अपवाद दोषरूप है, किन्तु विशिष्ट प्रयोजन की सिद्धि के लिए वही निर्दोष है ।

५. एगतेण निसेहो, जोगेसु न देसिओ विही वाऽपि ।

दलिअ पप्प निसेहो, होज्ज विही वा जहा रोगे ॥

—ओघनियुक्ति ५५

जिनशासन में एकान्तरूप से किसी भी क्रिया का न तो निषेध है, और न विधान ही है । परिस्थिति को देखकर ही उनका निषेध या विधान किया जाता है, जैसा कि रोग में चिकित्सा के लिए ।



## सिद्धान्त

अनुभव के आधार पर ही सिद्धान्त बनते हैं ।

—नायजी

सिद्धान्त सडक है, व्यक्ति उस पर चलनेवाला है ।

सिद्धान्त बड़ा क्यों ? रास्ता है । व्यक्ति बड़ा क्यों ?

बतानेवाला है । हीरा बड़ा क्यों ? रत्न है । जौहरी

बड़ा क्यों ? परीक्षक है । ऐसे ही गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र

अ र राजा-प्रजा के विषय में भी समझना चाहिये ।

ज मय सव्वमाहूण, त मय मल्लकत्तण ।

—सूत्रगुताग १५।२८

जो सिद्धान्त नहीं माधुओं द्वारा मान्य है—वही माया, विज्ञान

एव मिथ्यादर्शनरूप शून्य को देखेवाना है ।

महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त जन्मने होने आवश्यक हैं ।

—विश्व

वास्तविकता के द्वारा ही सिद्धांत कार्यमय में परिणत हो पाते हैं ।

—रूपर

मनुष्य की सञ्चार का एकमात्र प्रमाण यह है कि वह

अपने सिद्धान्त पर अपना सब कुछ त्याग करने का

तत्पर रहे ।

—गणेश

कोई भी मनुष्य नष्टियों और उन्मीलियों से ज्ञानों के लिए

माप नहीं रह सकता ।

—बनोईत

८ भुङ्क्ते न केवली न स्त्री-मोक्षमाहु दिगम्बरा ।

—विवेक-विलास

दिगम्बर जैन कहते हैं कि केवलज्ञानी भोजन नहीं करते और स्त्री को मोक्ष नहीं मिलता ।

९ मैं मानता हूँ धर्मशास्त्रों में,

ऊँचे-ऊँचे और अच्छे विचार हैं ।

धार्मिक लोग पूजा-पाठ और-

क्रियाकाण्डों में वैसे बरकरार हैं ।

लेकिन बात तो सारी-

इसी सवाल पर आकर अटक जाती है,

कि उन सिद्धान्तों पर कुर्बान-

होने के लिए कौन-कौन तैयार हैं ?

—'धुले आकाश' से

१०. वेद पौरुष्य—

ताल्वादिजन्मा ननु वर्णवर्गो,

वर्णात्मको वेद इति स्फुट च ।

पुंसश्च ताल्वादि ततः कथस्या-

दपौरुषेयोज्यमिति प्रतीतिः ॥

वर्णों का समूह तालु आदि ने उत्पन्न होना है । वेद वर्णात्मक है—यह स्पष्ट है । तालु आदि पुरुष के होने हैं फिर वेद अपौरुषेय (पुरुष के वर्ग उत्पन्न होनेवाले) कैसे रहे जा सकते हैं ?

१. चयरित्तकर चारित्त होड । —उत्तराध्ययन २८।३३  
कर्मों के चयन-रहि को रित्त करने के कारण चारित्र कह-  
नाता है ।

२ चर्यते-प्राप्यते मोक्षोऽने नेति चारित्रम् ।  
—उत्तराध्ययन २८।२ टीका  
एकके द्वारा मोक्ष प्राप्त किया जाता है अत यह चारित्र  
कहनाता है ।

३ चरिताऽऽज्ञैव चारित्रम् । —योगनार  
ग्रहण की हुई प्रतिज्ञा को श्रुत पालना ही चारित्र है ।

४ चारित्त नमभावो । —पञ्चास्तिकाय १०७  
नमभाव ही चारित्र है ।

५ मद्भाविस्त्रियमाधन चारित्त । —त्रिमुक्तिमग-१।२६  
शून्य और वीर्य (शक्ति) का नाशन (गौरव) चारित्र है ।

६. तत्त्वगुचि सम्यक्त्व, तत्त्वप्रत्यापक भवेज् ज्ञानम् ।  
पापकियानिवृत्ति - ज्ञानियमुक्त जिनेन्द्रेण ॥  
—ज्ञानार्णव, पृष्ठ ६६

जिनेन्द्र भगवान् ने तत्त्वविषयक ज्ञान का सम्यक्त्व, तत्त्व-  
विषयक त्रिनेत्रज्ञान का सम्यक्त्व और पापकियानिवृत्ति के  
निवृत्ति को सम्यक्चारित्र कहा है ।

७ सर्वसावद्ययोगाना, त्यागञ्चारित्रमिष्यते ।

— योगशास्त्र

सब प्रकार के सावद्ययोगों का त्याग करना ही चारित्र है ।

८ चारित्र दो प्रकार से बनता है—आपकी विचारधारा से और आपके अपने समय विताने के ढंग से ।

—जो० हावेज

९. चारित्रनिर्माण उससे होता है, जिसके लिए आप दृढता-पूर्वक खड़े होते हैं । सम्मान उससे मिलता है, जिसके लिए आप गिर पड़ते हैं ।

—बूलफोट

१०. चारित्र सम्बन्धी उन्नति का अर्थ है खुदी में खुदी को मिटाने की तरफ बढ़ना ।

—हार्टले

११. चारित्र सग (साथ) में विकसित होता है और वृद्धि-एकान्त में ।

—गेटे

१२. प्रत्येक मनुष्य के चरित्र के तीन रूप होते हैं—एक तो जैसा कि वह स्वयं समझता है, दूसरा जैसा कि उसे दूसरे व्यक्ति समझते हैं और तीसरा जैसा कि वह वास्तव में है ।

—अल्फान्सीकर

१३. चारित्र के लिए उतनी कोई घातक चीज नहीं, जितने अपूर्ण कार्य ।

—इ० ला० जार्ज

१४. चारित्र एक श्वेत कागज है जो एक बार कल्पित होने पर पूर्ववत् उज्ज्वल होना कठिन है ।

## चारित्र का महत्त्व

१. किं मुत्तम ? सच्चरितं यदस्ति । —शफर-प्रश्नोत्तरी  
 क्या वस्तु उत्तम है ? जो सच्चरित्र है, वही ।
२. बुद्धि से चारित्र बढकर है । —इमसन
३. चारित्र एक ऐसा हीरा है जो अन्य सभी पापाणखडों  
 को काट डालता है । —वारटल
४. जिनेश्वरैस्तद् गदितं चरित्रं, नमस्तकर्मक्षयहेतुभूतम् ।  
 —सुभाषितरत्नसन्दोह  
 चारित्र नमस्तकर्मों का क्षय करनेवाला है—ऐसा जिनेश्वर  
 देवों ने कहा है ।
५. चारित्र वृक्ष है और प्रतिष्ठा छाया ।  
 —इब्राहिम लिफन
६. जीवन का लक्ष्य सुख नहीं, चारित्र है । —बीचर
७. चरित्तं खलु धम्मो, धम्मो जो नो नमो त्ति णिद्धिट्ठो ।  
 मोहक्खोहविहीणो, परिणामो अप्पणो ह्यु नमो ॥  
 —प्रवचनमार १।७  
 चारित्र ही वास्तव में धर्म है, जीवन ही धर्म है, यह नमस्तकर्मों ।  
 मोह और शोक ने रहित आत्मा का अपना पुर परिष्कृत ही  
 समान्य है ।



८. मनुष्य की सफलता-असफलता का द्योतक चारित्र ही है  
यदि वह सफल है तो जीवन सफल है अन्यथा असफल ।  
—रोमो

९. कुलीनमकुलीन वा, वीर पुरुषमानिनम,  
चारित्रमेव व्याख्याति, शुचि वा यदि वा शुचिम् ।

—वाल्मीकिरामायण २।१०।६।४

मनुष्य के चारित्र (आचरण) से ही पता चलता है कि यह  
कुलीन है या कुलहीन, सच्चा वीर है या यो ही डींगे मारने-  
वाला तथा पवित्र है या अपवित्र ।

१०. सम्यक्चारित्र के विना इन्सान विना छत का  
मकान है ।

११. चारित्र के विना जीवन रोगन की हुई खोखली लट्ठी  
है ।

१२. धर्म, उपदेश, कविता, चित्र, नाटक आदि किसी भी  
चीज का विना चारित्र के मूल्याकन नहीं होता ।

—जे० जी० हातेण्ड

१३. शिक्षा नहीं अपितु चारित्र ही मनुष्य की सर्वोच्च आव-  
श्यकता है ।

—स्पेन्सर

१४. स पुमान् पटावृतोऽपि नग्न एव,  
यस्य नास्तिमञ्चारित्रमावरणम् ।  
न नग्नोऽप्यनग्न एव,  
यो भूपित सञ्चारित्रेण ॥

—नीतियाप्यामृत २६।५१-५२

• जो सदाचाररूप वस्त्र से अलंकृत नहीं है, वह सुन्दर वस्त्रों में वेष्टित होने पर भी नग्न ही है। सदाचार से विभूषित शिष्ट-पुरुष नग्न होने पर भी नग्न नहीं गिना जाता।

१५. चारित्र्य शुद्धिस्तु मता दुरापा ।

चारित्र्य की शुद्धि दुष्प्राप्य है।

★

## १० ज्ञान के साथ चारित्र आवश्यक

- १ विना चारित्र का ज्ञान शीशे की आँख के समान केवल दिखाने के लिये है । —स्विनॉक
२. चारित्रहीन-बौद्धिकज्ञान सुगन्धित शव के समान है ।  
—गाधी
- ३ No Knowledge In power Unless put in-to Action.  
नो नॉलिज इन पावर अनलेस पुट इन-टु ऐक्मन ।  
—अग्ने जी कहावत  
क्रियाशून्य ज्ञान शक्तिशाली नहीं है ।
४. सौ रूपयो की नौली मे निन्नानवे रूपये चारित्र है और एक रूपया ज्ञान है । —श्रीकालगणी
- ५ सुबहु पि मुयमहीय, किं काही चरणविप्पहीणस्स ।  
अघस्स जहा पलिता, दीवसयसहस्स - कोडीवि ॥  
— विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ११५२  
चारित्रहीन पुष्प को बहुत ने शाम्बो का अध्ययन भी क्या लाभ दे सकता है ? क्या लाखों दीपकों का जलना भी कहीं अग्ने को दीखने में महायक हो सकता है ?
६. क्रियाविहीनाः खरवद्वहन्ति । —सुश्रुत  
क्रिया-चारित्रहीन व्यक्ति गदहे के समान मात्र ज्ञान का घोडा डोनेवाना है ।

- ७ जहा खरो चदणभारवाही, भारस्स भागी न हु चदणस्स,  
एव खु नाणी चरणेण हीणो, भारस्स भागी नहु मुग्गईए ।

—विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ११५८

जैसे चन्दन का भार ढोनेवाला गदहा केवल भार का ही भागी है । चन्दन की शीतलता उसे नहीं मिल सकती । ऐसे ही चार्नित्रहीन ज्ञानी का ज्ञान केवल भाररूप है । वह नुगति का अधिकारी नहीं होता ।



१. जाइमरण परिन्नाय, चरे सकमणे दढे ।

—आचाराग २।२

जन्म-मरण के स्वरूप को भलीभाँति समझकर चारित्र में दृढ़ होकर विचरना चाहिए ।

२. वृत्त यत्नेन सरक्षेद्, वित्तमायाति याति च ।

अक्षीणो वित्तत क्षीणो, वृत्ततस्तु हतो हतः ॥

—विदुरनीति ४।१३०

यत्नपूर्वक चारित्र की रक्षा करो, धन तो आता है, चला जाता है । धनहीन व्यक्ति वास्तव में क्षीण नहीं है, किन्तु जो चाग्रिय से क्षीण हो गया, वह तो सचमुच ही मर गया ।

३. If wealth is lost nothing is lost

If health is lost something is lost.

If chractor is lost everything is lost

इफ वैल्य इज लोस्ट नर्थिंग इज लोस्ट ।

इफ हेल्थ इज लोस्ट समर्थिंग इज लोस्ट ।

इफ करेक्टर इज लोस्ट एवरीथिंग इज लोस्ट ।

—अंग्रेजी कहावत

धन घोया कुछ भी नहीं गोया, तन गोया कुछ गोया ।

अगर गो दिया सच्चरित्र को, तो धन ! मव कुछ घोया ॥

—दोहा-सदोह

४ ऊँचे गिरि से जो गिरे, मरे एक ही वार ।  
चरित्र गिरि मे जो गिरे, विगडे जन्म हजार ॥

—आचार्य उमाशंकर

५ प्रत्यह प्रत्यवेक्षेत, नरञ्चरितमात्मन ।  
किं नु मेपशुभिस्तुल्य, किं नु सत्पुरुषैरिति ॥

—शाङ्गधर

मनुष्य को प्रतिदिन अपना आचरण देखना चाहिए और मोचना चाहिए कि मेरा आचरण पशुओं के समान कितना है और सत्पुरुषों के समान कितना है ?

६ मा जातिं पुच्छ, चरणं च पुच्छ ।  
कट्ठाह्वे जायति जातवेदो ॥

—समुक्तिकाय १।७।६

जानि मत पूछो, आचरण (कर्म) पूछो । नकटी से भी आग पैदा हो जाती है ।

७ त्रियैव फलदा पु सां, न ज्ञानं फलद मतम् ।  
यतः स्त्री-भक्ष्य-भोगजो, न ज्ञानात् मुग्धभाग् भवेत् ॥

यान्त्रिक में दिया ही फल देनेवाली है, ज्ञान नहीं। तबोकि स्त्री, भोजन और भोग का जानकार भी मात्र ज्ञान में नहीं बनती। उसे दिया करने ही पत्नी है ।

८. शान्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मुग्धा,  
यन्तु जिनावान् पुम्प न विद्वान् ।  
नुचिन्तितं चोपधमानुगता,  
न नाममात्रेण नरोत्तमोत्तमम् ॥

- शास्त्र पढकर भी वे मूर्ख हैं, जो तदनुसार क्रिया (चारित्र्य) का अनुसरण नहीं करते। वास्तव में जो ज्ञानपूर्वक क्रिया करता है, वही विद्वान् है। औषधि के चिन्तन मात्र से रोगियों का रोग नहीं मिटता, उसका सेवन करना जरूरी है।
६. गर्ति विना पथज्ञोपि, नाप्नोति पुरमीप्तिम् ।  
गन्तव्य स्थान की ओर गमन किये विना मार्गज्ञाता भी मन चाहे शहर में नहीं पहुँच सकता, वैसे ही क्रिया-चारित्र्य के विना मनुष्य केवल ज्ञान से ही मुक्ति नहीं पा सकता।
१०. नाविरतो दुश्चरितान्, नाशान्तो नासमाहितः ।  
नाशान्तमनसो वापि, प्रज्ञानेनैवमाप्नुयात् ॥  
—फठोपनिषद् १।३।१४  
जो बुरे आचरणों से नहीं हटा है, जो अशान्त (उग्र) है, असमाधियुक्त-अशान्तमनवाला है, वह केवल प्रज्ञान-बुद्धिवाद में इस आत्मतत्त्व को नहीं पा सकता।
११. चरणगुणविप्पहीणो, वृड्डड सुवहुपि जाणतो ।  
—आवश्यकनियुक्ति ६७  
जो साधक चारित्र्य के गुण से हीन है, वह बहुत में शाम्भु पड लेने पर भी समार नमुद्र में डूब जाता है।
१२. देशोन चोदहपूर्वधारी मुनि भी चारित्र्य में हीन हाकर नरक-निगोद में चले जाते हैं और मात्र अष्ट प्रवचन-माता के आराधक मुनि चारित्र्य के बल में मुक्त हो जाते हैं।  
— जैनशास्त्र
१३. जानन्ति तत्त्व प्रभवन्ति कर्तुः,  
ते केपि लोके विग्ना मनुष्याः ।  
—रुद्रपप्रदीप

तत्त्व को जैसा जानते हैं, उसी प्रकार आचरण कर सकनेवाले व्यक्ति विरले है ।

- १४ मुननेवाले करोड़ो हैं, मुतानेवाले लाखो हैं, समझनेवाले हजारो हैं, किन्तु समझे मुताविक आचरण करनेवाले विरले ही हैं ।
- १५ आज धर्म का मात्र लेवल है । सील मोहर कायम रहने हुए भी माल गायब है ।





१. नियतस्य तु सन्यासः, कर्मणो नोपपद्यते ।  
 मोहात्तस्य परित्याग-स्तामस परिकीर्तितः ॥७॥  
 दुःखमित्येव यत्कर्म, कायक्लेशभयात्यजेत् ।  
 स कृत्वा राजस त्याग, नैव त्यागफल लभेत् ॥८॥  
 कार्यमित्येव यत्कर्म, नियत क्रियतेऽर्जुन ।  
 सङ्ग त्यक्त्वा फल चैव, स त्यागः सात्त्विको मतः ॥९॥

—गोता अध्याय १८

शास्त्रोक्त विधि से निश्चित जिस कर्म का त्याग करना योग्य नहीं है । मोहवश उस कर्म को छोड़ देना तामसत्याग कहा गया है । ॥७॥

जो कर्म है वह सब दुःखरूप ही है ऐसे सोचकर शारीरिक-क्लेश के भय से जो व्यक्ति कर्मों का त्याग करता है, वह राजस त्याग है । त्याग करने पर भी उसका फल नहीं मिलता ॥८॥  
 आसक्ति एवं फल का त्याग करते हुए, मात्र कर्तव्य समझकर जो शास्त्रोक्तविधि से निश्चित कर्म किया जाता है, वह सात्त्विकत्याग है ॥९॥

२. ण हि णिरवेक्खो चागो,  
 ण हवदि भिवग्गुस्स आसयविसुद्धी ।  
 अविसुद्धस्स हि चिन्तो,  
 कह णु कम्मक्खओ हांदि ॥

—प्रयत्नसारोद्धार ३।२०

जब तक निष्पेक्ष त्याग नहीं होता, तब तक नाधक की चित्त-  
शुद्धि नहीं होती और जब तक चित्तशुद्धि (उपयोग की निर्मलता)  
नहीं होती, तब तक कर्मक्षय कैसे हो सकता है ?

३ बाहिरचाओ विहलो, अदभतरगथजुत्तन्स ।

—नायपाहृद १३

जिनके आन्तर मे ग्रन्थि (पन्निग्रह) है, उनका बाह्यव्याग  
व्यर्थ है ।



- ५ पचविहे पच्चक्खाणे पणत्ते, त जहा—(१) सद्दहणसुद्धे, (२) विणयसुद्धे, (३) अणुभासणासुद्धे, (४) अणुपालणासुद्धे, (५) भावसुद्धे ।  
—स्थानाग ५।३

प्रत्याख्यान पांच प्रकार का कहा है—

- (१) श्रद्धान्शुद्ध—प्रत्याख्यान में पूरी पूरी श्रद्धा रखना ।  
(२) विनयशुद्ध—प्रत्याख्यान गुरु के सम्मुख विनयपूर्वक करना ।  
(३) अनुभाषणाशुद्ध—गुरु के पीछे से प्रत्याख्यान का पाठ शुद्धरूप में स्पष्ट बोलना ।  
(४) अनुपालनाशुद्ध—मकट के समय प्रत्याख्यान का शुद्ध पालन करना तथा विपत्तिकाल में भी उसे नहीं तोड़ना ।  
(५) भावशुद्ध—प्रत्याख्यान के प्रति शुद्धभाव रखना, दूषित-भाव न होने देना ।

- ६ दसविहे पच्चक्खाणे पणत्ते, तं जहा—  
अणागय-मइक्कत, कोडोसहिय नियटियि चैव ।  
सागामणागार, परिमाणकड निरवसेसे ।  
नकेय चैव अद्दाए, पच्चक्खाण भवे दसहा ॥

—स्थानाग १०।७४८ तथा भगवती ७।२

दस प्रत्याख्यान कहे हैं—

- (१) अनागतप्रत्याख्यान, (२) अतिशान्तप्रत्याख्यान, (३) रोटिसहितप्रत्याख्यान, (४) नियन्त्रितप्रत्याख्यान, (५) सागार-प्रत्याख्यान, (६) अनागान्प्रत्याख्यान, (७) परिमाणकड-प्रत्याख्यान, (८) निरवशेषप्रत्याख्यान, (९) नकेयप्रत्याख्यान, (१०) श्रद्धाप्रत्याख्यान ।

७. णमुक्कार पोरसोए, पुरिमड्ढेगासणेगट्ठाणे य ।  
 आयविले भत्तट्ठे, चरमे य अभिग्गहे विगइ ॥

—आवश्यकनियुक्ति ६।१५६७

काल की अपेक्षा से दस प्रत्याख्यान—

(१) नमुक्कारत्ती, (२) पौण्णी, (३) पुग्गिमाघं, (४) एग्गामन,  
 (५) एकस्थान, (६) आनामाम्ल, (७) उपवान, (८) चरम-  
 प्रत्याख्यान, (९) अभिग्रह, (१०) निविमृत्ति (नीवी) ।

★

१. शीलवृत्तफल श्रुतम् । —महाभारत, सनापर्व ५।१२३  
ज्ञान का फल शील एव आचार है ।
२. सारो परुवणाए चरण, तस्स वि य होइ निव्वाण ।  
—आचारागनियुक्ति, गाथा १७  
परुवणा का सार है—आचरण और आचरण का सार  
(अन्तिमफल) है—निर्वाण ।
३. अगाण किं सारो ? आयारो ।  
—आचारागनियुक्ति गाथा १६  
जिनवाणी (अगसाहित्य) का क्या सार है ? 'आचार' ।
४. जीवाहारो भण्णड आयारो ।  
—दशवैकालिक नियुक्ति २१५  
तप-मयमरूप आचार का मूल आधार आत्मा (आत्मश्रद्धा)  
ही है ।
५. आचारः प्रथमो धर्मो, नृणां श्रेयस्करो महान् ।  
—यजुर्वेद, मनुस्मृति १।१३८  
उत्तम आचार ही नवमे पहला धर्म है और मनुष्यों के लिए  
महानकल्याणकारी है ।
६. आचारलक्षणो धर्म, सन्तञ्चारिणलक्षणा ।  
नाधृतां च यथावृत्ता-मेतदाचारलक्षणम् ॥  
—महाभारत अनुशासनपर्व, अध्याय १०४

धर्म का स्वरूप आचार है । सदाचार ने युक्त पुण्य ही मत है ।  
मर्तो का जो जीवनक्रम है, वही आचार है ।

७ आचारात्लभते ह्यायु-राचासदीप्तिता प्रजा ।  
आचाराद्धनमक्षय्य-माचारो हृत्यलक्षणम् ॥

—मनुस्मृति ५।१५६

उत्तम आचार ने पूर्ण आयु इच्छित मन्तान की अक्षयधन  
प्राप्त होता है एवं दुःखों का नाश होता है ।

८. सदाचार के तीन फल हैं—

(१) लोक में कीर्ति बढ़ती है, (२) सम्पत्ति की वृद्धि  
होती है, ३) मरने के बाद मुक्ति मिलती है ।

- आचार जुलमान्यानि वपुःशान्यानि भोजनम् ।  
नभ्रम स्नेहमान्यानि, देजमान्यानि भाषणम् ॥

आचार शक्ति का पुत्र बनता है और शरीर भोजन  
(मुखादि) बनता है । नभ्रम स्नेह का शरीर भाषण के का  
परिचय देता है ।

१० मनुष्यो के कर्म उनके विचारों के सर्वांगिक  
परिचायक हैं ।

सदाचार-दुराचार—

११ पचविंशे अध्याये पञ्चमः, च चत्वारः—

आचारान्तर, दुराचार, परिचारान्तर, अज्ञान  
विनिदायन ।

पाँच प्रकार का आचार कहा है—

- (१) ज्ञानाचार—ज्ञान को विधियुक्त पढ़ना ।
- (२) दर्शनाचार—शका आदि दोषों को त्यागकर शुद्ध सम्यक्त्व का आराधन करना ।
- (३) चारियाचार—समिति-गुप्ति का शुद्ध पालन करना ।
- (४) तपआचार—आत्मकल्याण के लिए वारह प्रकार की तपस्या करना ।
- (५) वीर्याचार—धार्मिक कार्यों में शक्ति लगाना ।

१२. सदाचार-दुराचार—

सदाचार सोना है, दुराचार कथीर (राँगा) है ।

सदाचार स्वर्ग की सड़क है, दुराचार नरक का द्वार है ।

सदाचार मुख का खजाना है, दुराचार दुःख का पहाड़ है ।

सदाचार सच्चा शृंगार है, दुराचार जाज्वल्यमान अंगार है ।

सदाचार सच्ची श्रीमत्ता है, दुराचार दरिद्रता है ।

सदाचार सच्चा भूषण है, दुराचार भारी दूषण है ।

सदाचार सच्ची विद्वित्ता है, दुराचार निरीभूषिता है ।

सदाचार सच्चा मित्र है, दुराचार कट्टर शत्रु है ।

—एक विचारक

१३. सदाचार के बिना जीवन विटामिनयुक्त भोजन है ।

१४. गुना है—बूढ़े सत्य ने अपने जवान और झुलते बेटे सदाचार की आकस्मिक मात ने दुर्घा होकर आत्म-हत्या करली है ।

और यह भी सुना है कि बड़े सवेरे ही राजभवन में एक शपथग्रहणममारोह में जवान और लोकप्रिय अस्तित्व के लाइने मपूत अष्टाचार ने राष्ट्र के प्रति पूरी ईमानदारी बरतने की शपथ ले ली है।

—श्री नवीदियाकर





पाँच प्रकार का आचार कहा है—

- (१) ज्ञानाचार—ज्ञान को विधियुक्त पढ़ना ।
- (२) दर्शनाचार—शका आदि दोषों को त्यागकर शुद्ध सम्यक्त्व का आराधन करना ।
- (३) चारित्र्याचार—समिति-गुप्ति का शुद्ध पालन करना ।
- (४) तपआचार—आत्मकल्याण के लिए वारह प्रकार की तपस्या करना ।
- (५) वीर्याचार—धार्मिक कार्यों में शक्ति लगाना ।

१२. सदाचार-दुराचार—

सदाचार सोना है, दुराचार कथोर (राँगा) है ।

सदाचार स्वर्ग की सड़क है, दुराचार नरक का द्वार है ।

सदाचार मुख का खजाना है, दुराचार दुःख का महाड है ।

सदाचार सच्चा शृंगार है, दुराचार जाज्वल्यमान अंगार है ।

सदाचार सच्ची श्रीमत्ता है, दुराचार दरिद्रता है ।

सदाचार सच्चा भूषण है, दुराचार भारी दूषण है ।

सदाचार सच्ची विद्वित्ता है, दुराचार निरीमूर्खता है ।

सदाचार सच्चा मित्र है, दुराचार कट्टर शत्रु है ।

—एक विचारक

१३. सदाचार के बिना जीवन विटामिनशून्य भोजन है ।

१४. मुना है—बूढ़े मत्स्य ने अपने जवान और उबलीने बेटे सदाचार की आकस्मिक मौत में दुःखी होकर आत्म-हत्या करली है ।

और यह भी सुना है कि वटे सवेरे ही राजभवन में एक शपथग्रहणसमारोह में जवान और लोकप्रिय असत्य के लालचे सपूत अष्टाचार ने राष्ट्र के प्रति पूरी ईमानदारी बरतने की शपथ ले ली है।

—श्री रविदिवारर



१. अध्यात्मशास्त्र की बड़ी-बड़ी बातें बनानेवाले बीड़ी-सिगरेट गुम होते ही लाल-पीले होने लगते हैं, भगवती के भागे अंगुलियों पर गिन लेनेवाले श्रावक हराम का पैसा हजम कर जाते हैं, समयसार का निचोड़ निकालनेवाले भाई भाइयों से लड़ते नहीं शरमाते । वेद, उपनिषद्, गीता, पुराण, कुरान व वाइविल के ज्ञाता रडियों में भटकने से वाज नहीं आते । अब बतलाएँ कि आचरण के सुधरे विना ज्ञान का क्या मूल्य ?
२. जो कुछ नहीं करता, वह कुछ नहीं जानता, अपने सिद्धान्तों को परखो कि वे आग्निपरीक्षा में चरे उतरते हैं या नहीं ।

—एलोयासिस



१. अज्ञेभ्यो गन्धिन. श्रेष्ठा, गन्धिभ्यो धारिणो वरा ।  
धारिभ्यो ज्ञानिन श्रेष्ठा, ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः ।

—मनुस्मृति १२।१०३

वर्णों में गन्ध पत्तियोंमें श्रेष्ठ है, उनमें श्रेष्ठों में धारिणोंमें  
(गाइर ज्ञानियों) श्रेष्ठ है, उनमें श्रेष्ठों में व्यवसायियों में ज्ञानि-  
योंमें धारिणोंमें श्रेष्ठ है और ज्ञानियों में व्यवसायियों में श्रेष्ठ-  
योंमें श्रेष्ठ होते हैं ।

२. जो नेक अमल करेगा, वह अपनी राह मसारेगा ।

—गुणवत् ३०।४४

३. निष्कृति पटुताचारे सैव आर्ये ऽनि स्मृत ।

जो प्रार्थना के लक्षणों में निष्कृति पटुताचारे में, सही आर्य माना  
गया है ।

४. आयागुणैः ।

आयागुणों के लक्षणों में आयागुणों में आयागुणों में  
(आयागुणों) ।

५. जो सीखे उसे अमल में लारा ।

—संस्कृत-विद्यालय

६. जिसने ज्ञान को आचरण में उतार लिया, उसने ईश्वर को मूर्तिमान कर लिया ।  
—विनोबा
- ७ कौरवों-पाण्डवों का पढ़ाते समय द्रोणाचार्य ने क्षमाकुरु यह पाठ पढ़ाया । सबने याद करके सुना दिया । युधिष्ठिर ने कहा—अभी याद नहीं हुआ । गुरु ने धमकाया । दूसरे दिन फिर पूछा । वही उत्तर मिला । द्रोणाचार्य ने उन्हें खूब पीटा । इस प्रकार कई दिन मार खाते-खाते याद हुआ । गुरु के पूछने पर धर्मपुत्र ने रहस्य खोला कि जब तक क्रोध आता रहा तब तक याद हुआ यह कैसे कहूँ ?
८. चार वेदों के ज्ञाता की अपेक्षा उनका आचरण में लाने-वाला बड़ा है ।  
—एक विचारक
- ९ करनी करै सो पूत हमारा, कथनी करै सो नाती ।  
रहणी रहै सो गुरु हमारा, हम रहणी के मायी ॥  
—एचर
१०. गांधी जी जब लन्दन में रहते थे, एक पादरी ने उगाई बनाने की नीयत में उन्हें भोजन का निमन्त्रण देता तथा उनके लिए खाना अलग बनवाया करता । पादरी के बच्चों ने पूछा—खाना अलग क्यों बनाया जाता है ? पादरी ने कहा - ये अहिंसक हैं, मांस नहीं खाते, इसलिए खाना अलग बनाया जाता है । बच्चों ने फिर प्रश्न किया—वे मांस क्यों नहीं खाते ? तब पादरी

ने गाधीजी को जीवनचर्या एवं उनकी अहिंसा का विवेचन किया। वच्चे उनसे काफी प्रभावित हुए और कहने लगे, पित्तार्जी आज मे ह्म लोग भी मान्न नही खाएँगे। पादरी महोदय घबराए और उन दिन ने गाधीजी को निमन्त्रण देना ही वन्द कर दिया।

★

१. आचारहीनं न पुनन्ति वेदा ।

—वाशिष्ठस्मृति-६।३

आचारहीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते ।

२. अनाचरतो मनोरथा. स्वप्नराज्यसमाः ।

—नीतियाप्यामत

आचरण नहीं करनेवालो के मनोरथ स्वप्नराज्य के समान हैं ।

३. विचार की भूलवाला मूर्ख है तो आचार की भूलवाला दुष्ट (पापी) है ।

—एक विचारक

४. चन्दन जन परिचय बढ़ा, त्यो-त्यो बढ़ा विकार ।

हानि पड़ी आचार में, न्यो-ज्यो बढ़ा प्रचार ॥

५. उसका इरादा अच्छा है, यह व्यर्थ है—यदि वह अच्छा काम न करे ।

६. मन राजा सो, करम कमेडी सो ।

—राजस्थानी कहायत



## २१ कथन के समान आचरण आवश्यक

१. यथा वाचि तथा क्रियायाम् ।  
कर्मो न समान कर्मो भो होनी चाहिए ।
२. कहनी करनी एकसार बना, तुलनी तेराफ्त पाएँ हम ।  
—आचार्य तुलनी
३. कर्णी ही रहणी नहीं, रहणी का प्र हूँ ।  
कहणी तो कारा करे, चारो वेद मजूर ॥  
—राजधानी दोहा
४. हमे कहना आता है, करना नहीं आता ।  
हमे बोलना आता है, चलना नहीं आता ।
५. यह गितनी गलत बात है कि हम मँदे रहे और इनको  
तो साफ मँदे तो मन्दा है ।  
—गाथी
६. यत्किं कर्मिण न हि क्वे च न कर्मिण न न वदे ।  
अपरोक्ष भावनाय परिश्रमनि पण्डिता ॥  
—वेदशास्त्र २।२२६
७. ये मन्दे मँदे ही न कर्मिण, ये न कर्मिण, ये न कर्मिण  
न कर्मिण । ये मन्दे मँदे ही न कर्मिण, ये न कर्मिण  
न कर्मिण ।
८. ये मन्दे मँदे ही न कर्मिण, ये न कर्मिण, ये न कर्मिण  
न कर्मिण ।  
—वेदशास्त्र २।२२६



७ है विरले नर या जग में,

जो कहे सो करे न, करे सो कहे ना । —ग्वाल फकि

८ ससार मे तीन प्रकार के पुरुष होते है —

(१) पाटल (कटहल) सदृश, जो केवल फलते है ।

(२) रसाल (आम्र) सदृश, जो फूलते और फलते है ।

(३) पनस (आक) सदृश, जो केवल फूलते है ।

अर्थात् एक वे मनुष्य जो कहते नहीं, करते है । दूसरे कहते है और करते भी हैं । तीसरे केवल फहते है, करते नहीं ।

—रामचरितमानस

९. कहणी मीठी खाड सी, करनी विप सम होय ।

कहणी सी करणी हुए, तो विप ही अमृत होय ॥

—राजस्थानी दोहा

१० गव्द पृथ्वी की पुत्रियाँ हैं ओर कार्य स्वर्ग के पुत्र ।

—सेमुएल जानसन

११ यदि वयस्कलांग उन उपदेशो पर अमल करे जो वे वच्चो को देते है, तो दुनिया अगले सोमवार को ही स्वर्गतुल्य बन जाए ।

—आर० विंग

१२ न नश्यति तमो नाम, कृतया दीपवातया ।

न गच्छति विना पान, व्याधिरीपधियवदत ॥

—दिवेकचूडामणि

दीपक की बान करने में अंधेग नहीं मिटना और औषधि का पान किए बिना औषधि पत्र के उच्चारण करने में रोग नहीं जाता ।

१३ मिनरी-मिनरी कहा न्यू मुह भीठो को हूवै नो ।

—राजन्यानों पहावन

१४. नट्टू की बातो मे मुह भीठा नही होना, कम्बल की बातो मे गर्दो नही उरनी, व्यापार की बातो मे लखपनी नही बना जाना, विवाह की बातो मे बह घर नही आवी, राज्य की बातो मे राज्य नही मिलता, विद्या की बातो मे विद्वान् नही बना जाता । व्रता की बातो मे श्रावक नही होना अपितु तदनुसार क्रिया करने मे उच्छिन्न वस्तु की प्राप्ति होती है ।

—एक विचारक

१५ Fine word better no Pursue

फाइन वर्ड्स बेटर नो पुर्सू निसर्ग ।

—अर्थों पहावन

फाइन वर्ड्स बेटर नो पुर्सू निसर्ग ।

१६ तन नूयों बातो मे हा मन-मेल,

बली पाने मे न निकलना मे ।

न बातो नगार ही बहाना जी ।

वे पारो रिनीमे मे निकले न पौ ।

अमल मे मुताबिक मिया तो मुदाम,

के हमली मे उमरी हो, यमो मे आम ॥

—उरं मेर



१. शील विसयविरागो । — शीलपाहृष्ट ४०  
इन्द्रियों के विषय से विरक्त रहना शील है ।
२. मिरट्ठो शीलट्ठो, सीतलट्ठो शीलट्ठो ।  
— विमुद्धिमग्गो १।१६  
शिरार्थ (सिर के समान उत्तम होना) शील का अर्थ है । शीत-  
लार्थ (शीतल-शान्त होना) शील का अर्थ है ।
३. शील सासनस्स आदि । — विमुद्धिमग्गो १।७  
शील धर्म का आरम्भ है, आदि है ।
४. शील मांखस्स सोवाण । — शीलपाहृष्ट २०  
शील (नदाचार) मोक्ष का सोपान है ।
५. शीलगन्ध समो गधो, कुतो नाम भविस्सति ।  
यो नम अनुवाते च, पटिवाते च वायति ॥  
— विमुद्धिमग्गो १।२४  
शील की गन्ध के समान दूमरी गंध नहीं है जो पवन ही अनु-  
कूल और प्रतिकूल दिशाओं में एक समान बहती है ।
६. शील वन्द अण्णटिम, शील आवुधमुत्तम ।  
शीलमाभरणं सेट्ठ, शील कयन्तमवभुन ॥  
— घेरगाथा १२।६१४

शील श्रेष्ठ आभूषण है और शील रक्षा करनेवाला अद्भुत  
मन्त्र है ।

७ हिरोत्तप्पे हि नति सील उप्पज्जति चेव-तिट्ठति च ।  
अनति नेव उप्पज्जति, न तिट्ठति ।

—विमुद्धिमग्गो १।२२

नज्जा और नत्तेन होने पर ही चीज उत्पन्न होता है और  
दाहता है । नज्जा और नत्तेन न होने पर चीज न तो उत्पन्न  
होता है और न दाहता है ।

८ मीलपरिधोता पञ्जा, पञ्जा परिधोत सील ।

यस्य सील तस्य पञ्जा, यतः पञ्जा तस्य सील ॥

—दीपनिषाय १।४४

मील में प्रजा (ज्ञान) प्रकाशित होती है, प्रजा में मील  
(धम्म) प्रकाशित होता है । जहां मील है, वहां प्रजा है  
जहां प्रजा है वहां मील है ।

९ तीचदया-दम-नच्च, वनोन्विय दमचेर-न्ततोनि ।

सम्मट्ठ नण-पाणे, तज्जा य मीलस्स परिजानो ॥

—मोनपण्ह १६

तीच दया, दम, नच, वनोन्विय प्रकृत्यर्थ, नोन्विय, सम्मट्ठसोत्त,  
ज्ञान और पर—यह सब मील के परिचय है । अन्विय शब्द के  
अर्थ हैं ।

१० सिद्धिं च ज्ञानं स्वमनीष तावधि,

विद्यते यं पुण्यं नयनं च एवम् ।

सर्वेषु मीलं अनुसन्धयन्तानां

सुमेवता तेषु मया समानया । विमुद्धिमग्गो १।६०

श्लोक—सिद्धि के ज्ञान के साथ ही, विद्यमान है पुण्य का, नयन  
सर्वेषु मीलं अनुसन्धयन्तानां मया समानया ।

के साथ रक्षा करता है, वैसे ही अपने शील को अविच्छिन्न-रूप से रक्षा करते हुए उसके प्रति सदा गौरव की भावना रखनी चाहिए ।

११. न सतसति मरणंते, सीलवंता बहुस्सुया ।

—उत्तराध्ययन ५।२६

ज्ञानी और सदाचारी आत्माएँ मरणकाल में भी प्रसन्न अर्थात् भयाश्रान्त नहीं होती ।

१२. सील-गुणवज्जिदाण, णिरत्थय माणुस जम्म ।

—शीलपाट्ट १५

शीलगुण में रहित व्यक्ति का मनुष्यजन्म पाना निरर्थक ही है ।

१३. सम्पन्नसीला, भिक्खवे विहरथ ।

—मज्झिमनिकाय १।६।१

भिक्षुओ ! शील सम्पन्न होकर विचरो !



१ व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।

दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया नत्वमाप्यते ॥

—यजुर्वेद १६।३०

यज्ञ (आनरण) में मनुष्य को दीक्षा अर्थात् उग्रज जीवन की योग्यता प्राप्त होती है । दीक्षा में दक्षिणा यानी प्रयत्न ही सम्पत्ति मिलती है । दक्षिणा में अपने जीवन में साधनों में श्रद्धा होती है । जीव श्रद्धा में नश्य की प्राप्ति होती है ।

२ भित्त्याए वा गिहृत्ये वा, गृध्रए त्स्मर्त्तुं दिव ।

— उत्तराख्येन ५।२२

नाशु हो, गार्हे मृग्य हो, अर्थात् प्रयोगवादा स्मर्त्तुं में जाता है ।

३ व्रताभिरक्षा हि मत्तामलप्रिया ।

व्रता की तुल्य पालना ही मनुष्यों का मृगादि है ।

४ व्रतो की विधि दुष्कर होने पर भी उसे पालने का प्रयत्न करने ।

५ व्रतो के आभूषणों में भी व्रतो की विशेष सम्मान रखी, तापसा में दीक्षा होकर नष्ट-नष्ट हो जायेंगे ।

६ व्रत टूटने पर मनुष्य ही सात मास व्रतों ।

७ व्रतों के भय में व्रत मत्त ठाही ।

निते—व्रतों के भय में व्रत पालना नहीं होकर,

के साथ रक्षा करता है, वैसे ही अपने शील की अविच्छिन्न-रूप से रक्षा करते हुए उसके प्रति सदा गौरव की भावना रखनी चाहिए ।

११. न सतसति मरणते, सीलवता बहुस्सुया ।

—उत्तराध्ययन ५।२६

ज्ञानी और सदाचारी आत्माएँ मरणकाल में भी त्रस्त अर्थात् भयाक्रान्त नहीं होती ।

१२. सील-गुणवज्जिदाण, णिरत्थय माणुस जम्म ।

—शीलपाहुड १५

शीलगुण से रहित व्यक्ति का मनुष्यजन्म पाना निरर्थक ही है ।

१३. सम्पन्नसीला, भिक्खवे विहरथ ।

—मज्झिमनिकाय १।६।१

भिक्षुओ ! शील सम्पन्न होकर विचरो !



१. व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।  
दक्षिणा क्षत्रामाप्नोति, क्षत्रया नक्षत्रमाप्यते ॥

—मनुस्मृत १८।३०

व्रत (भास्वरा) में मनुष्य को दीक्षा क्षत्रात् उपलब्ध होने की दीक्षया प्राप्त होती है । दीक्षा में दक्षिणा यानी व्रत में नक्षत्रता मिलती है । दक्षिणा में अपने ऊपर के जन्मों में श्रद्धा होती है । क्षत्र श्रद्धा में मनुष्य को प्राप्ति होती है ।

२. भिक्षया वा गितदये वा, मुष्याय कम्मटं शिव ।

—उत्तमस्ययन ४।२२

गण्डु हो, चाहे गुग्गुलु हो, बज्रों, प्रोक्षणा मन्त्रों में जला है ।

३. अताभिन्दता हि अतामलप्रियया ।

व्रता को दुग्ध पासना ही मनुष्यों का श्रुतम् ४ ।

४. व्रतों की विधि दुष्कर होने पर भी उन्हें पालने का प्रयत्न करें ।

५. मन्त्रों के आभूषणों में भी व्रतों की विशेष सम्भाल रखी, लक्ष्मणा के दुर्भिक्ष होकर नाष्ट-भ्राष्ट ही पार्ष्णि ।

६. व्रत करने पर मनुष्य की मान्यता बढ़ती है ।

७. व्रतों के अर्थ में व्रत मनुष्यों ।

व्रतों के अर्थ में व्रत मनुष्यों के अर्थ में व्रत मनुष्यों ।



भिक्षुओं के भय से भोजन बनाना नहीं छोड़ते, टिड्डियों के भय से खेती करना नहीं छोड़ते, दुर्घटना के भय से मोटर या रेल आदि की सवारी करना नहीं छोड़ते, नुकसान के भय से व्यापार करना नहीं छोड़ते तथा मक्खियों के भय से दूध पीना नहीं छोड़ते, - वैसे ही टूटने के भय से व्रत लेना भी नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि टूटे इजन, फूटे वर्तन एवं फटे वस्त्र की तरह दूषित व्रत भी प्रायश्चित्त द्वारा पुनः निर्मल हो सकते हैं ।

८ सर्वप्रयत्नेन चातुर्मासे व्रती भवेत् । — भविष्योत्तरपुराण  
चतुर्मास के समय सभी प्रकार के प्रयत्नों से कुछ न कुछ व्रत-  
नियम अवश्य करना चाहिए ।

९ गृहिवासे त्रि सुव्वए । — उत्तराध्ययन ५।२४  
धर्मशिक्षासम्पन्न गृहस्थ गृहवास में भी सुव्रती है ।

१० एकाद/त्र का ढोग —

(क) भोर उठ स्नान कियो, सेर पक्की दूध पियो,  
सैकडो सिंघाडे खाये, चित्त तो सवादी है ।  
दोपहरी में भाग छानी, पाव चीनी सेर पानी,  
सोलह गक्करकदी खाई, खोद्योडी नवादी है ।  
पाव पक्की वरफी खाई, पाव पक्का पेडा खाया,  
वीसो अमरूद खाये, आई नहीं वादी है ।  
कहे 'ब्रह्मदत्त' ऐसी व्रत नित्य होय यारों ।  
कहने की एकादशी पै द्वादशी को दादी है ॥

(ख) गिरि ने झुहारा खाय जिसमें विद्वान् विद्वान् खाय.

सब ने सिखाया खाय नाँठे जो नवादी है ।

गुदपाक खड-खोर. बरगो डक्करी रु.

कलान्द खाय. खुब लींटे पड़्यो गदी है ।

जान खरडूज खाय. नकड़े मरीर खाय.

मूली बोर मोपरी में खुब प्रीति मवी है ।

नाम तो काहार अल्प, कीन्हों भरपुर मर.

बहने की एकादगी ने हावकी को गदी है ॥

—प्रयागलोकसागर



१. पच मह्व्वया पण्णत्ता, त जहा—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमण । जाव सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण ॥

—म्यानाग ५।१।३८४

भगवान ने पाँच महाव्रत कहे हैं—(१) सर्वथा जीव-हिंसा से विरत होना, (२) सर्वथा झूठ से विरत होना, (३) सर्वथा चोरी से विरत होना, (४) सर्वथा अब्रह्मचर्य ने विरत होना, (५) सर्वथा परिग्रह से विरत होना ।

- २ अहिंसा-मत्याऽस्तेय-ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमा ।

—पातंजल-योगदर्शन २।३०

(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय, (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह - ये पाच यम हैं ।

३. एते जाति-देश-काल-समयानवच्छिन्ना ।

सार्वभौमा महाव्रतम् ॥

—पातंजल-योगदर्शन २।३१

ये यम जाति, देश, काल, समय के अपवाद में रहित हो और सभी अवस्थाओं में पाले जायें तो महाव्रत कहलाते हैं ।

- ४ डच्चेइयाइं पच मह्व्वयाइ राइभोयणवेरमणछट्ठाइ ।

अत्तहियट्ठयाए उवसपज्जित्ताणं विहरामि ॥

—दशवैफालिक ४

ये पाँच महाव्रत और छट्ठा रात्रिभोजन-व्रत इनको आत्मा के हित के लिए धारण करके विचरता हूँ। सासारिक सुखों की इच्छा से नहीं।

५ माहृणेण मईमया जामा तिन्नि वियाहिया ।

—आचारांग ८।१

सर्वज्ञ भगवान ने तीन याम अर्थात् महाव्रत कहे हैं—अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह ।

- १ सभ्यता चारित्र्य का वह रूप है, जो मनुष्य को कर्तव्य का मार्ग दिखलाता है ।

—भाषी

- २ नोच्चैर्हसेत्, न शब्दवन्त मारुत मुञ्चेत्, नाऽनावृत-  
मुखो जृम्भां क्ष्वथु हास्य वा प्रवर्तयेत्, न नासिका  
कुष्णीयात्, न दन्तान् विघट्टयेत्, न नखान् वादयेत् ॥

।—चरकसहिता सूत्रस्थान ८।१६

सभ्य मनुष्य को चाहिए कि वह अधिक जोर से न हसे, शब्द-  
युक्त अपानवायु का त्याग न करे, मुख को बिना ढके जभाई,  
छीक व खासी को न निकाले, अगुली से नासिका को न कुरेदे,  
दातों को न किटकिटावे एवं नखों को न बजावे ।

(अत्रिऋषि द्वारा अग्निवेश को उपदेश)

- ३ नास्त्रमद्यादेकवासा, न नग्न स्नानमाचरेत् ।  
न मूत्र पथि कुर्वीत, न भस्मनि न गोव्रजे ।

—मनुस्मृति ४।४५

एक वस्त्र से भोजन, नग्न होकर नहाना, मार्ग में, राख के  
ढेर में तथा गोव्रज में मूत्र करना—ये काम निषिद्ध हैं ।

४ यदि तुम मनुष्य को सभ्यता सिखाना चाहते हो तो उसका प्रारम्भ दादी से करो ।

—विक्टर ह्यूगो

५ सभ्यता और धर्म की प्राचीनता की दृष्टि से कोई भी राष्ट्र आर्य-सभ्यता की समता नहीं कर सकता ।

—हे० एन० ग्राम



१ मोक्षेण जोयणाओ, जोगो सव्वोवि धम्मववहारो ।

—हरिभद्र-योगविशिका

जो आत्मा को मोक्ष के साथ जोड़ता है, वह सभी धार्मिक व्यवहार योग है ।

२ योगश्चित्तवृत्तिनिरोध । —पातंजलयोगदर्शन १।२

चित्तवृत्ति का निरोध योग है ।

३. कुशलप्रवृत्तियोग । —बौद्ध

सत्प्रवृत्ति का नाम योग है ।

४ समत्व योग उच्यते । —गीता

समता को योग कहते हैं ।

५. य सन्यासमिति प्राहु-र्योग त विद्धि पाण्डव ।

—गीता ६।२

पाण्डुनन्दन ! जिसको सन्यास कहते हैं, उसी को तू योग समझ ।

६. यम-नियमाऽऽसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान—

समाधयोऽष्टावङ्गानि । —पातंजल-योगदर्शन २।१६

योग के आठ अंग हैं—

(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम,  
(५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान, (८) समाधि ।

७ योग की आठ दृष्टियाँ हैं—

(१) मित्रा, (२) तारा, (३) बला, (४) दीप्रा,  
(५) स्थिरा, (६) कान्ता, (७) प्रभा, (८) परा—ये  
क्रमशः योग के आठों अंगों से युक्त होती हैं।

८ योगदृष्टियों में क्रमशः नहीं होनेवाले ये आठ दोष हैं—

(१) खेद, (२) उद्वेग, (३) क्षोप, (४) उत्थान,  
(५) भ्रान्ति, (६) अभ्युदय, (७) सङ्ग (८) आसङ्ग।

९. योगदृष्टियों में क्रमशः होनेवाले आठ गुण ये हैं—

(१) अद्वेष, (२) जिज्ञासा, (३) सुश्रूषा, (४) श्रवण,  
(५) बोध, (६) मीमासा, (७) प्रतिपत्ति, (८) प्रवृत्ति।

—योगदृष्टि-समुच्चय



१ मोक्षोपायो योगो ज्ञान-श्रद्धान-चरणात्मकः ।

—अभिधानचिन्तामणि १।७७

योग ज्ञान-दर्शन-चारित्र्यमय है एव मोक्ष का उपाय है ।

२. योग. कल्पतरु श्रेष्ठो, योगश्चिन्तामणि परः ।

योग प्रधान धर्माणा, योग सिद्धे. स्वय ग्रह. ॥

—योगविन्दु ३७

योग श्रेष्ठ कल्पतरु है, योग दूसरा चिन्तामणि है । योग सभी धर्मों में उत्कृष्ट है एव योग्य स्वय सिद्धि-मुक्ति को ग्रहण करनेवाला है ।

३ आत्मज्ञानेन मुक्ति स्यात्, तच्चयोगादृते नहि ।

—स्कन्दपुराण

आत्मा का ज्ञान होने से ही मुक्ति होती है, किन्तु वह ज्ञान योग के बिना नहीं होता ।

४. स एवाह स एवाह—मिति भावयतो मुहु ।

योग स्यात्कोऽपि नि शब्द , शुद्ध स्वात्मनि यो लय ॥

मैं वही हूँ ! मैं वही हूँ ! ऐसी भावना करते-करते जो शुद्ध योग-शब्दरहित हो जाता है, उसे अपनी आत्मा में लय होना कहते हैं ।

- ५ नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति, न चैकान्तमनश्नतः ।  
 न चातिस्वप्नशीलस्य, जाग्रतो नैव चार्जुन । १६ ॥  
 युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।  
 युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दुःखहा ॥ १७ ॥

— गीता ६

अर्जुन । न तो अधिक खानेवाले का योग मिद्ध होता है एव  
 न बिल्कुल न खानेवाले का । न अत्यधिक सोनेवाले का योग  
 सम्पन्न होता है और न अत्यधिक जागनेवाले का ॥ १६ ॥

उसी का योग दुःखनाशक होता है, जिसके आहार-विहार  
 नियमित हैं, कर्म करने में चेष्टा नियमित है तथा सोना और  
 जागना नियमित हैं ॥ १७ ॥

- ६ असयतात्मना योगो, दुष्प्राप्य इति मे मतिः ।  
 वश्यात्मना तु यतता, शक्योऽवाप्तुमुपायत ॥

— गीता ६।३६

मन को वश में करनेवाले पुरुष को योग की प्राप्ति बहुत  
 कठिन है । उपाय से आत्मा को वश करनेवाला योग को  
 प्राप्त हो सकता है ।

- ७ योगास्त्रयो मया प्रोक्ता, नृणां श्रेयो विधित्सया ।  
 ज्ञान कर्म च भक्तिञ्च, नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ॥

— भागवत ११।२०।६

मनुष्यों के कल्याण की इच्छा से मैंने तीन योग कहे हैं—  
 ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग । इनके अलावा जन्म-  
 दन्त्राण का कही कोई उपाय नहीं है ।

## योगशब्द का दूसरे प्रकार में प्रयोग—

८. कायवाङ्-मनोव्यापारो योगः ।

—जैनसिद्धान्तदीपिका ४।२६

शरीर, वचन एव मन के व्यापार को योग कहते हैं ।

९. जोगसच्चेण जोग विसोहेइ । —उत्तराध्ययन २६-५२

योग-सत्य से जीव योगो की विशुद्धि करता है अर्थात् मन-वचन-काय की प्रवृत्ति को शुद्ध बनाता है ।

१०. जोग च समणधम्ममि, जु जे अनलसो धुव ।

—दशवैकालिक ८।४३

आलस्य को छोड़कर योगो को सदा श्रमणधर्म में जोड़ना चाहिए ।



२८

## योगी

१ योग समाधि , सोऽस्यास्ति इति योगवान् ।

—उत्तराध्ययन-बृहद्वृत्ति ११।४

योग का अर्थ समाधि है। जिसकी आत्मा में समाधि हो, वह योगवान योगी है।

२ दृष्टि स्थिरा-यस्य विनापि दृश्य,  
वायु स्थिरो यस्य विना प्रयत्नात् ।  
मन स्थिर यस्य विनावलम्ब,  
स एव योगी स गुरु स मेव्यः ।

—गोरक्षाशतक २८

दृश्य पदार्थों के विना जिसकी दृष्टि स्थिर है, प्रयत्न किये विना जिसका पवन स्थिर है एवं किसी भी अवलम्बन के विना जिसका मन स्थिर है, वही योगी है, वही गुरु है और उसी की सेवा करनी चाहिए।

३. ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा, कूटस्थो विजितेन्द्रिय ।

युक्त इत्युच्यते योगो, समलोष्टाश्मकाञ्चन ॥

—गीता० ६।८

जिसकी आत्मा ज्ञान-विज्ञान में तृप्त है, जो कूटस्थ है, विजितेन्द्रिय है एवं मिट्टी, पत्थर तथा सुवर्ण को समान समझता है, वह योगी युक्त (भगवत्प्राप्तिवाला) कहा जाता है।

४. आत्मौपम्येन सर्वत्र, सम पश्यति योऽर्जुन ।  
मुख वा यदि वा दुःख, स योगी परमो मतः ॥

—गीता० ६।३२

दूमरो के सुख-दुःख को जो अपने सुख-दुःख के समान समझता है, हे अर्जुन । वह परमयोगी माना जाता है ।

५. किमिद कीदृश कस्य, कस्मात् क्वेत्यविशेषयन् ।  
स्वदेहमपि नावैति, योगी योगपरायण ॥

—इष्टोपदेश ४२

योग में लीन योगिराज यह क्या है ? किसका है ? किस कारण से है ? एव कहा है ? अपने शरीर के प्रति भी ऐसा विशेष विचार नहीं करता ।

६. यद् यदाचरित्त पूर्वं, तत् तदज्ञानचेष्टितम् ।  
उत्तरोत्तरविज्ञानाद् योगिनः प्रतिभासते ॥

—आत्मानुशासन २।१

उत्तरोत्तर विशेष ज्ञान होने से योगिजनो को पूर्वकाल में जो-जो आचरण किए थे, वे अज्ञान की चेष्टाएँ थी—ऐसे प्रतीत होने लगता है ।

७. निर्भय शक्रवद् योगी, नन्दत्यानन्दनन्दने ।

—ज्ञानसार

इन्द्र की तरह निर्भय योगिराज आत्मानन्दरूप नन्दनवन में मौज करता है ।

८. चाण्डाल किमय द्विजातिरथवा शूद्रोऽय किं तापसः,  
किंवा तत्त्वनिवेशपेगलमतिर्योगीश्वर. कोऽपि किम् ?

इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः सम्भाष्यमाणो जनैर्,  
न क्रुद्धा. पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वय योगिनः ॥

— भर्तृहरि-वैराग्यशतक २४

क्या यह चाण्डाल है अथवा ब्राह्मण है ? शुद्र है या तपस्वी है ?  
अथवा क्या कोई तत्त्व के विवेक में चतुर योगिराज है ? ऐसे  
विचित्र प्रकार के विकल्पो द्वारा लोगो से सम्भाष्यमाण  
योगिराज राग-द्वेष न करते हुए अपने मयममार्ग में विहरण  
करते रहते हैं ।

६ तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक. ।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद् योगी भवार्जुन ।

—गीता ६।४६

तपस्वियों से योगी बड़ा है, शास्त्रज्ञानियों से भी योगी बड़ा है  
और कर्मकाण्डियों से भी योगी बड़ा है अतः हे अर्जुन ! तू  
योगी बन ।

१० राजा जोगी दोनू ऊँचा, तावा तु वा दोनू सुच्चा ।

तावा डूवे तुंवा तिरे, राजा जोगी के पैरो पडे ॥

११ राजा ने एक योगी को सम्मान एव सुविधापूर्वक राज-

महल में रखा ? फिर सन्देह हुआ कि मेरे मे और इसमें

क्या फर्क है । योगी समझकर महलों से निकल चला ।

राजा-रानी खोजते-खोजते योगी के पास आए । वह

वृक्ष के नीचे सूखी रोटी खा रहा था । राजा ने कहा—

चलिए महल में । योगी ने कहा—पहले तुम यह ग्रामीण

भोजन करो । सूखी रोटिया खाते ही राजा-रानी का

गला छिल गया एव उबकाई होने लगी । योगी ने तत्त्व

समझाते हुए कहा—तुम दो ग्रास में ही घबरा गए और मैं जिस प्रसन्नता से तुम्हारा मोहनभोग खाता था, उसी प्रसन्नता से यहाँ सूखी रोटियाँ भी खा रहा हूँ बस, तुम्हारे और मेरे में इतना ही अन्तर है।

१२ ईहे प्रभु ताको जो किशन, प्रभुता को त्यागे,  
छारी ना विभूति तो विभूति कहा धारी है।  
जो लौ भग तजो नाहि तो ली भगतजी नाहि,  
काहे को गुसाई जो गुसाई से न यारी है।  
काहे को विराहमन जोको नवि राहमन,  
कहा पीर जो पै पर-पीर ना विचारी है।  
कैसे वह जोगी जन जाको न विजोगी मन,  
आसन ही मार जान्यो आस नहि मारी है।

—फिसनवावनी

१३ जनेभ्यो वाक् तत स्पन्दो, मनसश्चित्तविभ्रमः।  
भवन्ति तस्मात्ससर्गं, जनैर्योगी ततस्त्यजेत् ॥

—समाधिगतक

जहाँ बहुतजनों से सम्पर्क हो, वहाँ बोलना पड़ता है। बोलने से मन में स्पन्दन पैदा होता है और स्पन्दन से मकल्प-विकल्प बढ़ते हैं, अतः योगी को जनसम्पर्क का त्याग करना चाहिए।

- १ गोरखनाथ—गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ असम में "महिलासुन्दरी" में फँसे, दो-तीन पुत्र भी हो गये। 'जाग मछेन्द्र गोरख आया'—इस प्रकार का आह्वान करके गोरख ने जाकर उन्हें जागृत किया एवं साथ लेकर देश को चले। महिलासुन्दरी ने प्रियतम की झोली में एक सोने की ईंट डालदी। जंगल में मत्स्येन्द्रनाथ फिर-फिरकर पूछते थे—गोरख ! यहाँ डर तो नहीं है ? गोरख ने तत्त्व समझकर ईंट को फेंक दिया और उत्तर दिया—डर तो पीछे रह गया। गुरु कुछ उदास हुए। शिष्य ने पेशाव करके गिला सोने की बनाई और गुरु का मोह शात किया।
- २ पादलिप्त और सिद्ध नागार्जुन दो भाई थे। सिद्ध नागार्जुन ने स्वर्ण-सिद्धि-रस की एक तुम्बी भेटरूप में भाई को दी। पादलिप्त ने उसे फेंककर पेगाव द्वारा पत्थर का सोना बनाकर दिखाया।
३. दिल्ली विडलामदिर में एक योगी ने मन्त्र-शक्ति से पानी का दूध, ईंट की मिश्री एवं चम्मच को सोने का



वना दिया। अनेक विदेशी राजदूत भी दर्शको में शामिल थे।

— हिन्दुस्तान, स० २००६, आसोज सुदी

४ हरिदास नामक एक भारतीय योगी अपनी जीभ को ऊपर उठाकर बड़ी आसानी से माथे को छू लेता है।

— हिन्दुस्तान, १३ जून १९७१

५. बद्रीनाथ (भारत) का वैरागी गिरि दिन में पाँच बार प्रार्थना किया करता था और प्रत्येक बार अपने लोहे के डंडे को आग में तपाकर जीभ में चाट लिया करता था। कहते हैं, वह ५२ वर्षों तक इस साधना में सलग्न रहा।

— विचित्रा, वर्ष ३ अंक ४, १९७१

६ लगभग साठे छ सौ वर्ष पहले की बात है। दिल्ली के तख्त पर तब सुलतान "मुहम्मद तुगलक" साहब विराजमान थे। उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका के मरक्को नामक देश का एक यात्री "इब्नवतूता" दुनियाँ की सैर करता हुआ दिल्ली आ पहुँचा। मुहम्मद तुगलक ने उसका बहुत आदर-सत्कार किया, यहाँ तक कि उसे दिल्ली का काजी बना दिया।

एक दिन दरवार में योगियों के चमत्कार की बात चली और दो योगी (गुरु-शिष्य) उपस्थित हुए। गुरु ने अपने शिष्य को कुछ सकेत दिया। शिष्य ने पद्मासन लगाया, प्रणायाम किया और एक क्रिया ऐसी की कि बिना किसी सहारे के ऊपर उठ गया और उठता ही चला

गया । महल को छत बहुत ऊँची थी । वह उससे भी बहुत ऊँचे चला गया, और आकाश में अधर ठहर गया । फिर बादशाह के इशारे पर अपने शिष्य को नीचे उतारने के लिए गुरु ने कुछ कहा लेकिन शिष्य इतना ध्यानमग्न था कि उसने कुछ नहीं सुना । तब गुरु ने अपनी झोली में से एक खडाऊ निकालकर नीचे रखी और ध्यानमग्न होकर उस पर दृष्टि जमाई । खडाऊ ने ऊपर जाकर शिष्य के चारों ओर चक्कर लगाया और उसकी गर्दन पर कई बार तड़ातड़ वार किया । तब शिष्य का ध्यान भग हुआ और वह धीरे धीरे नीचे उतरने लगा । अंत में वह उसी आसन में जमीन पर आ बैठा । खडाऊ पहले ही गुरु के पास वापस आ गई थी । इन्द्रवतूता आदि दर्शकों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा ।

७ सुना है कि स्वामी दयानन्द ने सोलह हाँस पावरवाली चार घोड़ों की गाड़ी को एक अगूठे से रोक दिया था । यह देखकर जोधपुर नरेश उनके पैरों में पड़ गये एवं भक्त बन गये ।

८ पंजाब के योगिराज देवमूर्ति ने मेरठ में कई हजार की भीड़ में अपनी छाती पर दो हाथियों को खड़ा किया । लोहे की मोटी थाली को दिखलाकर उन्होंने उसे हाथों से कागज की तरह फाड़ डाला ।

एक बैलगाड़ी में वजन भरा गया। लगभग ५० मन वजन अवश्य होगा। योगीजी ने बैलगाड़ी में रस्सी बाँधकर उसके छोर को अपने सिर के बालों से बाँध लिया। उस गाड़ी को वह काफी दूर तक अपने बालों से ही खींचते रहे।

दो कारे इधर-उधर खड़ी की गईं। दोनों के पीछे दो रस्से बाँध दिये गये। दोनों रस्सों को उन्होंने पकड़ लिया। ड्राइवरो के अथक प्रयत्न करने पर भी कारे जरा भी हिल न सकी।

३०० मन वजन से भरे हुए एक ट्रक को उन्होंने छाती पर चढ़ा लिया और उचक-उचक कर उसे हिलाते रहे।

—बिचित्रा वर्ष ३, अंक ४, १९७१

६. कुंभक-प्राणायाम के विशिष्टअभ्यासी प्रो० राममूर्ति—  
ये इतने बलिष्ठ थे कि ४०-४० मन के पत्थर को छाती पर रखवाकर तुड़वा देते थे, मनुष्यों से भरी हुई गाड़ी छाती पर से निकलवा देते थे, छाती पर हाथी को खड़ा कर लेते थे, बड़ी-बड़ी मजबूत लोहे की जजीरें हाथों से या गले में लपेट कर तोड़ डालते थे एवं १६ होर्स पावरवाली दो-दो मोटरों को रोक लेते थे। इतना कुछ करने पर भी इनके शरीर पर कहीं निशान तक नहीं पड़ता था।

१०. प्रोफेसर राममूर्ति की शिष्या कुमारी तारावाई—

छाती पर १३॥ मन के भारी पत्थर रखवाकर हथौडो से तुडवाना, बालो की सहायता से ३ मन के पत्थरकी चट्टान उठा लेना, मनुष्यो से भरी समूची गाडी को अपनी छाती पर से पार करा देना कुमारी तारावाई के लिए बाएँ हाथ का खेल था । उनका सबसे अधिक आश्चर्यजनक काम अपने माथे की सहायता से गाडी को ठेलकर ले जाने का था । इस गाडी पर अनेक आदमी भी लदे रहते थे । इतना ही नहीं, गाडी के आगे एक तेज छुरा बँधा रहता था और तारावाई इसी छुरे की नौक पर अपना माथा भिडा देती थी तथा गाडी को ठेलकर दूर तक ले जाती थी ।

११. श्री सोमेशचन्द्र वसु—

१८ अप्रैल सन् १९३१ को न्यूयार्क (अमेरिका) के वैनडाइक स्टूडियो मे वगाल प्रान्तस्थ ढाका जिले के निवासी "श्रीसोमेश चन्द्र वसु" ने योगाभ्यास द्वारा गणितसम्बन्धी एक जटिल प्रश्न का आश्चर्यजनक समाधान किया । प्रश्न-कर्ता उक्त स्टूडियो के कलाकार श्री जॉनओ नील ने कागज का एक टुकडा उनकी ओर वढा दिया । उसपर लिखा था—

८५३१२७४६३३७६८४१३२५७२६१४ ३५६३३३७८१२६४७३६  
 ८२५७३१२४८७३६४३७१२५६५३२७ ३४७८१७२८६३५७२३  
 ७४८१२५२५७४३१२८३६३२४३७६१८५३

को

७४६३८१२५७३६४७६२८३७४३५ १७६६२६७६४३६८१७८  
 ६६७६१२८५७४६५३५६८३८१४२८१२५६५६१८१ ५१२७६३  
 ६७८२६५७८१६३६५३२८६६४७२५७३६६  
 से गुणा कीजिए ?

इन अकसमूहो पर एक दृष्टि डालकर वसु महोदय ने अपनी आँखे बंद करली और मूर्तिवत् बैठे हुए इस प्रश्न को मन ही मन लगाने लगे। स्टुडिओ की खिडकियाँ खुली हुई थी—बाहर सडक पर मोटरे, लारियाँ फायर-इजन आदि शोर-गुल मचाते दौड़ रहे थे। लेकिन वसु महोदय की गणना मे इन सबसे तनिक भी बाधा न पडी। वे चुपचाप बैठे हुए अपने प्रश्न को हल करते रहे। ५२ मिनट ५० सेकण्ड मे उत्तर तैयार हो गया। उन्होंने इस प्रकार लिखा—

६३६७५८३५३२८५६३०६२५६३२८६७७३६६२०१३१३१७२  
 ८२२०३२५६६७५४४०१७०८१७७३५४६१८६७१६३३६७३८  
 २६५६५८५७२५०१०४३५७४५६६७६६१६६८३२०७२६४६७  
 ४१६२८२७०२७२८१५६२७८०८५४४३६६६७३५००५७७४२  
 ८५७६७१५८०४५७४१ ५७८२३७७४०७४१६८३४८१४८५२  
 ०६२३३३६३५७४४७५७ ।

उत्तर मिल जाने के बाद नील महोदय ने श्री वसुजी से पूछा—६५वी पक्ति का ३३ वाँ अक क्या है ? पलक

मारने ही वसुजी ने उत्तर दिया—आठ अर्थात् १८ के ८ रखे गये और एक हासिल लगा ।

नील महोदय सहित सभी उपस्थित लोग आश्चर्य से स्तम्भित हो गये ।

केवल गुणन ही नहीं, लम्बे-चौड़े भाग, भिन्न, दशमलव, पुनरावर्त-दशमलव, समीकरण आदि के प्रश्न आप इतने थोड़े समय में मन ही मन लगा लेते थे कि लोग चकित रह जाते थे । लम्बी-चौड़ी सैकड़ों अंकों की पूर्ण सख्याओं के वर्गमूल, घनमूल, चतुर्घातमूल पचघात-मूल आदि से लेकर १०६ वा घातमूल तक बिना कागज पैसिल के निकाल लेना आपके लिए एक दम साधारण और अधिक से अधिक एक सैकिंड का काम था ।

—विचित्रा वर्ष ३ अफ ४, १९७१



## संयम से लाभ

१. अणुहृत जणयइ । —उत्तराध्ययन २६।२६  
 नद मे जीव बनासव अथत् आश्रव-निरोध को उत्पन्न
२. उवसमस। त्तः ।  
 श्रमणत्व क- सापहत्येन, प्राप्नोति परमा गतिम् ।  
 —मनुस्मृति ६।६६
३. सयम खलु  
 सयम ही जीव सापहत्ये से पापकर्म का नाश करके परमगति को
४. सयमो हि मह  
 प्राणियो की मत् पवित्रः स्याद्, दासो विश्वेशतां भजेत् ।
५. श्रमणत्वमिद र  
 यद् साधुपना-सयम न् ज्ञानानि, मङ्क्षु दीक्षाप्रसादतः ॥  
 —चन्द्रचरित्र, पृष्ठ १०६
६. जाइ सद्धाइ निक  
 तमेव अणुपालिज्ज  
 जिस श्रद्धा के साथ स  
 उसी श्रद्धा के साथ पा  
 इतिहास  
 गर
- मे २० वर्ष लगे  
 कि ग्रीस का  
 एव पतन
७. धम्म चरमाणस्स प  
 छक्काए, गणो, राया,  
 संयमधर्म, मे विचरनेवा  
 अवलवन कहे हैं—(१) छ

(३) राजा, (४) गाथापति, (५) शरीर (तप-मयम आदि के अनुष्ठान शरीर से होते हैं) ।

७ संयम का स्वरूप —

निन्नेहा निल्लोहा, निम्मोहा निव्वियार-निककलुसा ।

निब्भय-निरासभावा, पवज्जा एरिसा भणिया ॥ ६॥

सत्तु-मित्ते य समा, पसस-निदा अलद्धि-लद्धिसमा ।

तण-कणए समभावा, पवज्जा एरिसा भणिया ॥४७॥

उत्तम-मज्झिमगेहे, दरिद्दे ईसरे निरापेक्खा ।

सवत्तगहितपिण्डा, पवज्जा एरिसा भणिया ॥४८॥

— षट्प्राप्त २

प्रव्रज्या अर्थात् संयम को पर्याय मे, न स्नेह होता, न लोभ होता, न मोह होता, न विकार होता, न क्लुपभाव होता, न भय होता और न किसी की आशा होती उसमे शत्रु-मित्र, प्रशंसा-निन्दा, लाभ-हानि और तृण-कनक समान भाव से देखे जाते हैं । प्रव्रज्या मे सभी धरो मे भिक्षा की जाती है । वहाँ बड़े-छोटे का और गरीब-धनवान का भेद नहीं रखा जाता ।



- १ सजमेण अण्हयत्त जणयइ । —उत्तराध्ययन २६।२६  
संयम से जीव अनास्रव अर्थात् आश्रव-निरोध को उत्पन्न करता है ।
- २ सन्यासेनापहत्यैन , प्राप्नोति परमा गतिम् ।  
—मनुस्मृति ६।६६  
आत्मा संन्यास से पापकर्म का नाश करके परमगति को प्राप्त होता है ।
३. अपवित्र. पवित्रः स्याद्, दासो विश्वेशता भजेत् ।  
मूर्खो लभेत् ज्ञानानि, मङ्क्षु दीक्षाप्रसादत. ॥  
—चन्द्रचरित्र, पृष्ठ १०६  
दीक्षा के प्रभाव में अपवित्रव्यक्ति पवित्र बन जाता है, दास जगन्नाथ बन जाता है और मूर्ख शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त कर लेता है ।
- ४ गौडन को ग्रीस का इतिहास लिखने में २० वर्ष लगे होंगे लेकिन उसका सार इतना ही है कि ग्रीस का उत्थान संयम और सादगी में हुआ एवं पतन विलासिता से ।
५. लोगस्स सार धम्मो, धम्म पि य नाणसारिय विति ।  
नाणं संजमसार, सजमसार च निव्वाण ॥  
—आचारांगनिर्युक्ति २४४

विश्व-सृष्टि का सार धर्म है, धर्म का सार ज्ञान (सम्यग्-बोध) है, ज्ञान का सार सयम है, और सयम का सार निर्वाण ।

६ सजमहेउ देहो, धारिज्जइ सो कओ उ तदभावे ।

सजमफाडनिमित्त देहपरिपालणा इट्ठा ॥

—ओघनियुंक्ति गाथा ४७

यह देह सयम के लिए ही धारा जाता है, क्योंकि देह बिना सयम नहीं रह सकता । अतः सयम की वृद्धि के लिए ही देह-का पालन इष्ट है ।



- १ जावज्जीवमविस्समो, गुणाण तु महब्भरो ।  
 गुरुओ लोहभारुव्व, जो पुत्ता होइ दुव्वहो ॥३६॥  
 वालुया कवले चैव, निरस्साए उ सजमे ।  
 असिघारागमण चैव, दुक्कर चरिउ तवो ॥३८॥  
 अहीवेगतदिट्ठीए, चरित्ते पुत्त । दुक्करे ।  
 जवा लोहमया चैव, चावेयव्वा सुदुक्कर ॥३९॥  
 जहा अग्गिसिहा दित्ता, पाउ होइ सुदुक्करा ।  
 तहा दुक्कर करेउ जे, तारुण्णे समणत्तण ॥४०॥  
 जहा भुयाहि तरिउ, दुक्कर रयणायरो ।  
 तहा अणुवसतेण, दुक्कर दमसागरो ॥४३॥

—उत्तराध्ययन १६

हे पुत्र ! इस संयम मे जीवनपर्यन्त विश्राम नही है । भारी लोहभार की तरह सदा गुणो का भार उठाना बहुत मुश्किल है ॥ ३६ ॥

वालुरेत के कवल के समान संयम निस्वाद है । तथा खड्ग-धारा पर चलने के समान यह तय करना दुष्कर है ॥३८॥

जैसे—लोह के जवो का चवाना कठिन है, वैसे ही सर्प की तरह एकान्तदृष्टि से चारित्र्य का पालना भी कठिन है ॥३६॥

जिस प्रकार प्रज्वलित अग्निशिखा का पीना कठिन है, उसी प्रकार तरुणावस्था में सयम पालना बहुत कठिन है ॥४०॥

जैसे—भुजाओ से समुद्र का तैरना दुष्कर है, वैसे ही अनुप-शान्त आत्मा द्वारा सयमरूपी समुद्र तैरना भी बहुत कठिन है ॥४३॥



१. देवलोगसमाणो उ, परिआओ महेसिण ।  
रयाण अरयाण च, महानरयसारिसो ।

—दशवैकालिक-चूणि १।१०

सयम मे अनुरक्त महिर्पियो के लिए तो चारित्र्य-पर्यायि स्वर्ग के समान है एव अरक्तो के लिए घोर नरक के समान है ।

२. साधु - मारग साकडा, जैसा पिंडखजूर ।  
चढे तो चाखे प्रेम रस, पडे तो चकनाचूर ।

—हिन्दी दोहा

- ३ नारति सहइ वीरे वीरे न सहइ रति ।

—आचाराग २।६

वीरपुरुष न तो सयम मे अरति (नाराजगी) को सहन करता है और न असयम मे रति (खुशी) को सहन करता है ।



## संयम-दीक्षा का समय आदि

कप्पड निग्गथाण वा निग्गथीण वा खुड्डगस्स खुड्डिया  
वा साइरेगट्ठवा सजाय उवट्ठावित्ताए वा सभु जित्ताए वा ।

—व्यवहार १०।३०

साधु-साध्वियाँ साधिक आठ वर्ष (गर्भ महित नव वर्ष) के  
बालक-बालिका को दीक्षा दे सकते हैं एव उनके साथ भोजन  
कर सकते हैं ।

वनेषु च विहृत्यैव, तृतीय भागमायुष ।

चतुर्थमायुषो भाग, त्यक्त्वा सङ्गान् परिव्रजेत् ॥

—मनुस्मृति ६।३३

आयुष्य के तीसरे भाग में वन में विचर कर चौथे भाग में सब  
विषयो का त्याग करके सन्यास-दीक्षा ले ।

यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेद्, ब्रह्मचर्याद्वा गृहाद्वा ।

अथ पुनरव्रती वा, व्रती स्नातको वोत्सन्नाग्निकोवा ।

—जावालभृति

जिस दिन वैराग्य हो, उसी दिन प्रव्रजित हो जाना चाहिए ।  
चाहे ब्रह्मचर्याश्रम में हो या गृहस्थाश्रम से हो । वह व्यक्ति  
चाहे अव्रती हो, व्रती हो, स्नानक हो या उत्सन्नाग्निक ।

४ प्रव्रजेद् ब्रह्मचर्याद्वा, प्रव्रजेद् वा गृहादपि ।

वनाद्वा प्रव्रजेद् विद्वान्नातुरो वाथ दु खित ।

—अङ्गिरास्मृति

विद्वान् ब्रह्मचर्यादि किसी भी आश्रम से, रुग्ण या दुःखित किसी भी अवस्था में प्रव्रजित हो सकता है ।

५. दो दिसाओ अभिगिञ्ज कप्पई निग्गथाण वा निग्गथीण वा पव्वावित्तए तजहा—पाईण वा उदीण वा ।

—स्थानाग २।१

दो दिशाओं में साधु-साध्वियों को दीक्षित करना कल्पता है—पूर्व और उत्तर ।

६. तओ णो कप्पइ पव्वावेत्तए, तजहा—पडए, वाइए, कीवे ।

—स्थानाग ३।४।२०२

तोनो को दीक्षा देना नहीं कल्पता-जन्म के नपुंसक को, वायु की व्याधि से जिसका शरीर इतना मोटा बन गया हो कि वह उठ-बैठ भी नहीं सकता हो, उसको तथा क्लीव को । (क्लीव चार प्रकार का होता है—१ दृष्टिक्लीव, २ शब्दक्लीव, ३ आदिग्ध-क्लीव, ४ निमन्त्रणाक्लीव ।)

७. ग्रन्थो मे १८ प्रकार के पुरुष तथा बीस प्रकार की स्त्रियाँ भी दीक्षा के अयोग्य कहे हैं ।

—स्थानाग ३।४।२०२ टीका

८. पच्चयत्थ च लोगस्स, नाणाविहिविग्गप्पण ।

—उत्तराध्ययन २३।३२

घर्मों के वेप आदि के नाना विकल्प जनसाधारण में प्रत्यय (परिचय-पहिचान) के लिए हैं ।

९. भावे अ असजमो सत्थ ।

—आचारांगनियुंक्ति ९६

भावदृष्टि से ससार में असयम ही सबसे बड़ा शत्रु है ।

## ६ संयम से भ्रष्ट होने के अठारह स्थान

- १ दसअट्ठ य ठणाड, जाड वालोऽवरज्जइ,  
तत्थ अन्नयरे ठाणे, निग्गधत्ताओ भस्सइ ।  
वयछक्क कायछक्क, अकप्पो गिहिभायण,  
पालियकनिसज्जा य, सिणाण सोह्वज्जण ।

— दशवैकालिक ६।७-८

छ व्रत—पाच तो महाव्रत छट्ठा रात्रिभोजन व्रत ६, काय-पट्क—छ काय के जीवो की हिंसा के त्याग १२, अकल्पनीय आहार आदि का त्याग १३, गृहस्थ के वर्तन में भोजन करने का त्याग १४, पल्पङ्क आदि आसन का त्याग, १५, गृहस्थ के अन्तरघर में बैठने का त्याग १६, स्नान का त्याग १७, शोभा-विभूषा का त्याग १८, संयम की रक्षा के लिये साधु को इन अठारह स्थानो-नियमो का अखण्ड-रूप से पालन करना परम आवश्यक है । जो अज्ञानी मुनि इन अठारह नियमो में से किसी एक का भी भंग करता है, वह निर्ग्रन्थता—नयम से भ्रष्ट हो जाता है ।

- २ संयम से भ्रष्ट होते समय साधु को इन अठारह बातों का सम्यक् प्रकार से चिन्तन करना चाहिए —  
ह भो ! १ दुस्सामए दुप्पजीवी, २ लहुसगा उत्तरिआ गिहीण कामभोगा, ३ भुज्जो अ साडवहुला मणुस्सा,



४ इमे अ मे दुक्खे नचिरकालोवट्ठाई भविस्सइ, ५ ओम-  
ज्जणपुरक्कारे, ६ वतस्स य पडिआयाण, ७ अहरगइ  
वासोवसपया, ८ दुल्लहे खलु भो ! गिहीण धम्मे गिही-  
वास मज्झे वसताण, ९ आयके से वहाय होइ, १०  
सकप्पे से वहाय होइ, ११ सोवक्केसे गिहिवासे-निरुक्के  
से परिआए, १२ वधे गिहवासे-मुक्खे परिआए, १३ साव-  
ज्जे गिहिवासे-अणवज्जे परिआए, १४ बहुसाहारणा  
गिहीण कामभोगा, १५ पत्तेय पुन्न-पाव, १६ अणिच्चे खलु  
भो ! मणुआण जीविए, कुसग्गजलविन्दु-चचले, १७ बहु  
च खलु भो ! पाव कम्म पगड, १८ पावाण च खलु भो !  
कडाण, कम्माण, पुव्वि दुच्चिन्नाण, दुप्पडिकताण,  
वेइत्ता मुक्खो, नत्थि अवेइत्ता, तवसा वा झोसइत्ता ।

— दशवैकालिक-चूर्ण १

- १, इस दुष्पमकाल मे दुख-पूर्वक जीवन व्यतीत होता है  
२ गृहस्थ लोगो के काम-भोग तुच्छ और क्षणस्थायी हैं, ३ वर्तमान  
काल के बहुत से मनुष्य छली एव मायावी हैं, ४ यह जो मुझे  
दुख उत्पन्न हुआ है, वह चिरकालपर्यंत नहीं रहेगा ५ समय  
के त्यागने से नीचपुरुषो की सेवा करनी पड़ेगी, ६ वान्त  
भोगो का पुन पान करना होगा, ७ नीच गतियो मे ले जाने-  
वाले कर्म बँधेगे, ८ पुत्र-पौत्रादि गृहपाशो मे फसे हुए गृहस्थो  
को धर्म की प्राप्ति दुर्लभ है, ९ विसूचिकादि रोग धर्महीन के  
वध के लिये होते हैं, १० सकल्प-विकल्प भी उसको नष्ट करने-  
वाले हैं, ११ गृहस्थावास क्लेशमहित है और चारित्र्य क्लेश से  
रहित है, १२ गृहवास वधनरूप है और चारित्र्य मोक्षरूप है,  
१३ गृहवास पापरूप है और चारित्र्य पाप से सर्वथा रहित

है, १४ गृहस्यो के काम - भोग बहुत साधारणरूप हैं, १५ प्रत्येक आत्मा के पुण्य एव पाप पृथक्-पृथक् हैं, १६ मनुष्य का जीवन कुश के अग्रभाग पर स्थित जलविन्दु के समान चंचल है, अतएव निश्चित रूप से अनित्य है, १७ बहुत ही प्रबल पापकर्मों का उदय है, जो मुझे ऐसे निन्दनीय विचार उत्पन्न होते हैं, १८ दुष्टविचारों से एव मिथ्यात्व आदि से बाधे हुए, पूर्वकृत कर्मों के फल को भोगने के पश्चात् मोक्ष होता है, बिना भोगे नहीं होता अथवा तप द्वारा उक्त कर्मों का क्षयकर देने पर मोक्ष हो सकता है ।

★

(५) प्रतिश्रुता—शालिभद्र के वहनोई घनासेठवत् आवेश मे आकर ली गई दीक्षा ।

(६) स्मारणिका—पूर्वभव का स्मरण करवाने से मल्लिप्रभु के पूर्वभव के मित्र प्रतिबुद्धि आदि छह राजाभो की तरह ली गई दीक्षा ।

(७) रोगणिका—रोग उत्पन्न होने के कारण सनत्कुमार चक्रवर्तिवत् ली गई दीक्षा ।

(८) अनाहता—किसी के द्वारा अनादर किये जाने पर नन्दी-पेणवत् (वसुदेव के पूर्वभव मे) ली गई दीक्षा ।

(९) देवसन्नप्ति—देवता के प्रतिबोध देने पर भेतायंमुनिवत् ली गई दीक्षा ।

(१०) वत्सानुवन्धिका—पुत्रस्नेह के कारण वज्रस्वामी की मातावत् ली गई दीक्षा ।

६. चउव्विहा पव्वज्जा पणत्ता त जहा—इहलोगपडिवद्धा, परलोगपडिवद्धा, दुहओलोगपडिवद्धा, अप्पडिवद्धा ।

—स्थानाग ४।४।३५५

चार प्रकार की प्रसन्न्या कही है—

(१) इहलोकप्रतिवद्धा—जीवन का निर्वाह करने के लिये ली जानेवाली दीक्षा ।

(२) परलोकप्रतिवद्धा—परलोकसम्बन्धि-पौद्गलिकमुखो की प्राप्ति के लिये ली जानेवाली दीक्षा ।

(३) उभयलोकप्रतिवद्धा—पूर्वोक्त दोनों प्रकार की इच्छा रखते हुए ली जानेवाली दीक्षा ।

(४) अप्रतिवद्धा—किसी भी प्रकार की आशा न रखकर आत्म-कल्याण के लिये ली जानेवाली दीक्षा ।

७ चत्तारिपुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—सीहत्ताए णाममेगे णिक्खति सीहत्ताए विहरति। सीहत्ताए णाममेगे णिक्खति सियालत्ताए विहरति। सियालत्ताए णाममेगे णिक्खति, सीहत्ताए विहरति। सियालत्ताए णाममेगे णिक्खति। सियालत्ताए विहरति। —स्थानाग ४।३।३२७

दीक्षित व्यक्ति चार प्रकार के कहे हैं—

(१) मिहवत् (उन्नतभावो से) दीक्षा लेकर उग्रविहारादि द्वारा सिहवत् पालनेवाले (घन्नासेठवत्)।

(२) मिहवत् (उन्नतभावो से) दीक्षा लेकर शृगालवत् (दीन-वृत्ति से) पालनेवाले (कण्डरीकवत्)

(३) शृगालवत् दीक्षा लेकर मिहवत् पालनेवाले (मेतार्य मुनिवत्)।

(४) शृगालवत् दीक्षा लेकर शृगालवत् पालनेवाले (सोमाचार्यवत्)।

८ चार अन्तक्रियाएँ कही हैं—

(१) अल्पवेदना-दीर्घपर्याय-भरतवत्।

(२) महावेदना-अल्पपर्याय-गजसुकुमालवत्।

(३) महावेदना-दीर्घपर्याय-सनत्कुमारचक्रवर्तिवत्।

(४) अल्पवेदना-अल्पपर्याय-मरुदेवीमातावत्।

—स्थानाग ४।१।२३५

- १ साधना के बिना ईश्वर नहीं मिलता । —स्वामी रामकृष्ण
- २ नित्य साफ न करने से पीतल के पात्रों की तरह साधना का हृदय भी अपवित्र हो जाता है । —तोतापुरी
३. पानी पर किस्ती हो, तरेगी खूब,  
किस्ती में पानी हो, जायेगी डूब । —उर्दू शेर
- भावार्थ—पानी पर किस्ती की तरह ससार में रहकर तो साधक तर सकते हैं, किन्तु किस्ती में पानी की तरह यदि साधको के मन में मोह-मायारूप ससार घुस गया, तो फिर वे कभी नहीं तरेंगे । जैसे-छाछ में मक्खन का रहना अच्छा है, किन्तु मक्खन में छाछ का रहना ठीक नहीं । उसी प्रकार ससारियों में साधुत्व की भावना का रहना अच्छा है, किन्तु साधुओं में ससार की भावना का रहना ठीक नहीं ।
४. पहली डुबकी में यदि रत्न न मिले तो रत्नाकर को रत्नहीन मत समझो ! —स्वामी रामकृष्ण
५. अणुवओगो दव्व । — अनुयोगद्वार-सूत्र १३  
उपयोगशून्य साधना द्रव्य है, भाव नहीं ।

- १ सम्यग्दर्शनादियोगैरपवर्गं साधयतीति साधु ।  
—दशवैकलिक १।५ टीका  
सम्यग्दर्शनादि द्वारा जो मोक्ष की साधना करता है, वह साधु है ।
- २ साध्नोति स्व-परकार्याणीति साधु ।  
जो अपने और दूसरो के आत्मिक-कार्यों को मिट्ट करता है, वह साधु है ।
- ३ आगमचक्खू साहू,  
इदियचक्खूणि सव्वभूदाणि । —प्रवचनसार ३।३४  
अन्य मत्र प्राणी इन्द्रियो की आँखवाले हैं, किन्तु साधु आगम की आँखवाना है ।
- ४ धर्मवित्ता हि साधन । —श्राद्धविधि  
साधु धर्मरूपी धनयुक्त होते है ।
- ५ साधवो दीनवत्सला ।  
साधु दीनदयालु होते हैं ।
- ६ विविहकुलुप्पण्णा साहवो कप्परुक्खा ।  
—नन्वीसूत्र चूर्ण २।१६  
विविध कुल एव जातियो मे उत्पन्न हुए साधूपुरुष पृथ्वी के कल्पवृक्ष है ।

७ जीवियास-मरणभयविप्पमुक्का ।

—औपपातिक समवसरण अधिकार तथा भगवती ८।२ साधु जीने की आशा और मरने के भय से विप्रमुक्त होते हैं ।

८ जात्यैवेते परिहितविधौ साधवो बद्धकक्षा ।

—पार्श्वनाथचरित्र

सत लोग स्वभाव से ही परहित करने के लिए तत्पर रहते हैं ।

९ श्रेय कुर्वन्ति भूतानां, साधवो दुस्त्यजासुभि ।

—श्रीमद्भागवत ८।२०।७

साधुजन अपने दुस्त्यज प्राणों को देकर भी प्राणियों का कल्याण करते हैं ।

१० साधूना च परोपकार-करणे तोषाध्यपेक्ष मन ।

परोपकार करने के समय साधुओं का मन कष्टों की परवाह नहीं करता ।

११ यथा चित्त तथा वाचो, यथा वाचस्तथा क्रिया ।

चित्ते वाचि क्रियाया च, साधूनामेकरूपता ।

—सुभाषितरत्न भाण्डागार

जैसा मन होता है, वैसा ही वचन बोलते हैं और वचन के अनुसार ही क्रिया करते हैं, क्योंकि साधुओं के मन-वचन-क्रिया में एकरूपता होती है ।

१२. युगान्ते प्रचलेद मेरु, कल्पान्ते सप्त सागरा ।

साधव. प्रतिपन्नार्थाद्, न चलन्ति कदाचन ।

—चाणक्य . १३।१६

युग के अन्त में मेरु और कल्प के अन्त में नातों समुद्र चल जाते हैं, किन्तु नन्त पुरुष स्वीकृत-मिद्धान्त से कभी विचलित नहीं होते ।

१३ तप्यते लोकतापेन, साधव प्रायशो जना ।  
परमाराधन हृद्धि, पुरुषस्थाखिलात्मन ।

—श्रीमद्भागवत ८।७।७४

साधुजन प्राय ससार के ताप में सतप्त-खिन्न रहते हैं । उनके लिए यही विश्वपावन भगवान की उत्कृष्ट-आराधना है ।

१४ या निशा सर्वभूताना, तस्या जागर्ति सयमी ।  
यस्या जागर्ति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुनेः ।

—गीता २।६६

जो आत्मविषयक-बुद्धि समारी जीवों के के लिए रात है, उसमें सयमी साधु जागता है—आत्म-साक्षात् करता है । जिस शब्दादि विषयों में लगी हुई बुद्धि में समारी जीव जागते हैं—सावधान रहते हैं, वह आत्मार्थिमुनि के लिए रात है ।

१५ चक्षुमास्स यथा अन्धो, सोतवा वधिरो यथा ।

—थेरगाथा ८।५०१

साधक चक्षुष्मान् होने पर भी अन्धे की भाँति रहे, श्रोत्रवान् होने पर भी वधिर की भाँति आचरण करे ।

१६ साधवो हृदय मह्य, साधूना हृदय त्वहम् ।  
मदन्यत्ते न जानन्ति, नाह तेभ्यो मनागपि ।

—श्रीमद्भागवत ६।४।६८

भगवान् कहते हैं कि साधु मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय हूँ । वे मेरे सिवाय किसी को नहीं जानते और मैं उनके सिवा किसी को नहीं जानता ।

१७ पूजा-मान-बडाइया आदर मागे मन ।

राम गहे सब परिहरे, सोही साधुजन ॥ —दाहूजी



राजा और गरीब को, समझे एक समान ।

तिनको साधु कहत है, गुरु नानक निरवान ॥

साधु सत का सूपड़ा, सत ही सत भाखत ।

पकड़ पछाड़ै तू तड़ा, कण ही कण राखत ॥

गाठ दाम बाधे नहीं, नहि नारी से नेह ।

कहे कबीर वा साधु के, हम चरनन की खेह । —कबीर

साधु भूखा भाव का, धन का भूखा नाहि ।

जो धन का भूखा बने, वो फिर साधु नाहि ।

साधु ह्वै सो साधै काया, कोडी एक न राखै माया ।

ल्यावै सो देवे चुकाय, वासी रहै न कुत्ता खाय ।

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान ।

मोल करो तलवार का, पडा रहन दो म्यान ।

—कबीर

१८. सूफी साधु कौन ?

सूफी वह है, जिसके दिल में सच्चाई और अमल में

इखलास हा ।

—अब्दुलहसन

१९. शैले-शैले न माणिक्य, मौक्तिक न गजे-गजे ।

साधवो नहि सर्वत्र, चन्दन न बने-बने ।

—चाणक्यनीति २।६

जैसे हर एक पर्वत पर माणिक्य नहीं होते, हर एक हाथी के सिर में मोती नहीं होते और हर एक वन में चन्दन नहीं होते । वैसे सभी जगह मच्चे माधु भी नहीं होते ।

१. वीतराग-भय-क्रोधः, स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।

—गीता २।५६

जिसने राग, भय और क्रोध को जीत लिया एव जो निश्चल-बुद्धिवाला है, उसे 'मुनि' कहा जाता है ।

२. णाणेण य मुणी होई ।

—उत्तराध्ययन २५।३२

ज्ञान में मुनि होता है ।

३. न मुणी रन्नवासण ।

—उत्तराध्ययन २५।३१

जगल में निवास करने मात्र में मुनि नहीं होता ।

४. पुढवीसमो मुणी ह्विज्जा ।

—दशर्वकालिक १०।१३

मुनि को पृथ्वी के समान धैर्यवान होना चाहिये ।

५. महप्पमाया एसिणो भवति ।

—उत्तराध्ययन १२।३१

अपि महान् प्रमादगुणवान् होते हैं ।

६. मौन मुनीना प्रथमञ्च धर्म ।

मौन और वैराग्य मुनियों के मुख्य धर्म हैं ।

७. तैलपात्रधरो यद्वद् राधावेधोऽत्रतो यथा ।

क्रियान्वनन्यचित्त स्याद भवमीतस्तथा मुनि ॥

जैसे—तेलभूत पात्र से तेल चलेनेवाला और राधावेध करने में अक्षत व्यक्ति अपनी श्रियाओं में अनन्यचित्त-तन्वीन रहना

है, उसी प्रकार भवभ्रमण से डरा हुआ आत्मार्थी-मुनि अपने समय की क्रियाओं में अनन्यचित्त रहता है ।

- ८ णिम्ममो णिरहकारो, णिस्सगो चत्तगारवो ।  
समो य सव्व भूएसु, तसेसु थावरेसु य ॥६०॥  
लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा ।  
समो णिन्दा-पससासु, तहा माणावमाणओ ॥६१॥  
गारवेसु कसाएसु दड-सल्ल-भएसु य ।  
णियत्तो हास-सोगाओ, अणियाणो अवधणो ॥६२॥  
अणिस्सिओ इह लोए, परलोए अणिस्सिओ ।  
वासी-चदणकप्पो य, असणे अणसण तहा ॥६३॥  
अप्पसत्थेहि दारेहि, सव्वओ पिहियासवो ।  
अज्झप्पज्झाणजोगेहि, पसत्थदमसासणो ॥६४॥

—उत्तराध्ययन १६

मुनि निर्मम, निरहकार, नि सग और गवंरहित होता है तथा ब्रह्म-स्थावररूप समस्त जीवों पर समभाव रखता है ॥६०॥

मुनि लाभ, अलाभ, सुख-दुख, जीवन-मरण, निन्दा-प्रशंसा तथा मान-अपमान में नमान वृत्तियुक्त होता है ॥६१॥

मुनि गारव, कपाय, दण्ड, शल्य, भय, हास्य और शोक में निवृत्त होता है तथा निदान एव वधन से मुक्त होता है ॥६२॥

- ९ मुनि इहलोक-परलोक के सुखों की इच्छा नहीं करता । उसे चाहे बसोले से काटा जाय या चदन से चर्चा जाय तथा आहार मिले या न मिले, वह समानवृत्ति रखता है ॥६३॥

मुनि मभी अप्रशस्त द्वारों और मभी आश्रवों का निरोध कर

आध्यात्मिक-शुभ ध्यान के योग से प्रशस्तसयमवाला होता है ॥६४॥<sup>१</sup>

६ नाभिनन्देत मरण, नाभिनन्देत जीवितम् ॥४५॥

दृष्टिपूत न्यसेत्पाद, वस्त्रपूत जल पिवेत् ।

सत्यपूता वदेद्वाच, मन पूत समाचरेत् ॥४६॥

क्रुद्ध्यन्त नप्रतिक्रुद्ध्ये-दाक्रुष्ट कुशल वदेत् ।

सप्तद्वारावकीर्णा च, न वाचमनृता वदेत् ॥४८॥

—मनुस्मृति अ० ६

मुनि न तो जीने की अभिलाषा करे और न मरने की ॥४५॥

मुनि देख-देखकर पैर रक्वे, वस्त्र से छानकर जल पीवे, सत्य से पवित्र वाणी बोले और मन से पवित्र विचार करे ॥४६॥

क्रोध करनेवाले पर क्रोध न करे, आफ्रोश करनेवाले के प्रति भी अच्छे वचन बोले तथा पाँच इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि— इन सातों से व्याप्त-वाणी बोले एव अमत्य वाणी न बोले ॥४८॥

१०. मही शय्या रम्या विपुलमुपधान भुजलता,

वितान चाकाश व्यजनमनुकूलोयमनिल ।

स्फुरद्दीपश्चन्द्रौ विरतिवनिता सङ्गमुदिता,

सुख शान्त शैते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव ॥

—मर्तृहरि-धराम्यशतक ७६

भूमि सुन्दरशय्या है भुजा तकिया है, आकाश चद्रवा है, अनुकूल हवा पता है और चन्द्रमा प्रकाशमान दीपक है । इन

१ गीता के १२वे अध्याय में कहा हुआ भक्त का वर्णन भी इससे काफी कुछ मिलता-जुलता है ।

सब सामग्रियों से युक्त शान्त मुनि महान् ऋद्धिशाली राजा की तरह विरक्तारूप रानी के साथ आनन्दपूर्वक सोता है ।

११. धीरज-तात क्षमा-जननी,  
परमारथ-मीत महारुचि-मांसी ।  
ज्ञान-मुपुत्र सुता-करुणा,  
मति-पुत्रवधू समता प्रतिभासी ॥  
उद्यम-दास विवेक-सहोदर,  
बुद्धि-कलत्र शुभोदय दासी ।  
भाव-कुटुम्ब सदा जिनके ढिग,  
यो मुनि को कहिए गृहवासी ॥

—बनारसीदास

१२. वेदान्तविज्ञान - सुनिश्चितार्था.,  
सन्यासयोगाद् यतय शुद्ध सत्त्वा ।  
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले,  
परामृता परिमुच्यन्ति सर्वे ॥

—मुण्डकोपनिषद् ३।२।६

वेदान्तरहस्य से जिन यतिजनो ने तत्त्व का निश्चय कर लिया है, सन्यास-योग से जो शुद्ध भक्त करण हो गये हैं, वे अन्तिम देहावसान होने पर ब्रह्मलोको में अमरत्व को भोगते हुए पूर्णरूप से छूट जाते हैं ।

- १ न विद्यते अगार-गृह यस्य स. अनगार. ।  
जिसने घर का त्याग कर दिया, वह अनगार है ।
२. समणस्स भगवओ महावीरस्स अतेवासी वहवे अणगारा  
भगवन्तो इरियासमिया अममा, अकिचणा  
छिण्णग्गथा छिण्णसोया निरुवलेवा, १ कसपाईव  
मुक्कतोया, २ सख इव निरगणा, ३ जीवो इव अप्पडि-  
ह्यगई, ४ जच्चकणमिव जायरूवा, ५ (आदरिसफलगा  
इव पायडभावा) कुम्मो इव गुत्तिदिया, ६ पुक्खरपत्त व  
निरुवलेवा, ७ गगणमिव निरालवणा, ८ अणिलो इव  
निरालया, ९ चदो इव सोमलेस्सा, १० सूरो इव दित्त-  
तेया, ११ सागरो इव गभीरा, १२ विहग इव सव्वओ  
विप्पमुक्का, १३ मदर इव अप्पकपा, १४ मारयसलिल  
व मुद्धहियया, १५ खग्गविसाण व एगजाया, १६ भारड-  
पक्खी व अप्पमत्ता, १७ कुजरो इव मोडीरा,  
१८ वसभोइव जायत्थामा, १९ सिहो इव दुद्धरिसा, २०  
वसु धरा इव सव्वफासविसहा, २१ मुट्ठयहुयामणो इव  
तेयसा जलता, नत्थिण तेसिण भगवताण कत्थइ पडिदधे

भवइ । \*\*\*तेण भगवतो \*\* वासीचदणसमाणकप्पा  
समलेट्ठुकचणा समसुह-दुक्खा इहलोग परलोगअप्पडि-  
बद्धा ससारपारगामो कम्मणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठया  
विहरति । — औपपातिक-समवसरणाधिकार

श्रमण भगवान् महावीर के बहुत से अनगार भगवत ईर्यासमित्तियुक्त हैं, ममत्वरहित हैं, अकिंचन हैं, छिन्नग्रन्थ द्वै, छिन्नश्रोत है, निरुपलेप हैं एव इक्कीस उपमाओ से उपमित हैं । १ वे कास्यपात्रवत् स्नेहमुक्त हैं, २ शख के समान उज्ज्वल (रागादिरगरहित) हैं, ३ जीव के समान अप्रतिहत-गतिवाले हैं, ४ अन्य कुधातुओ के मिश्रण से रहित सोने के समान जातरूप लिए हुए चारित्र को निरतिचार रखनेवाले हैं, ५ (दर्पणपट्ट के समान निर्मलभाववाले हैं), कच्छप के समान गुप्तेन्द्रिय हैं, ६ कमलपत्रवत् निर्लेप हैं, ७ आकाश के समान निरालवन हैं, ८ वायु के समान निरालय (अप्रतिवद्धविहारी) हैं, ९ चन्द्रमावत् सौम्यकान्तिवाले हैं, १० सूर्य के समान दीप्ततेजवाले हैं, ११ सागरवत् गभीर हैं, १२ पक्षी के समान पूर्णत विप्रमुक्त हैं, १३ मेरुपर्वत के समान अडोल हैं, १४ शरद्ऋतु के जल के समान शुद्धहृदयवाले हैं, १५ गेडे के सींग के समान एकजात अर्थात् रागादिभावरहित एकाकी हैं, १६ भाण्डपक्षी के समान अप्रमत्त हैं, १७ हाथी के समान शून्य-कामादि भावशत्रुओ को जीतने में समर्थ हैं १८ वृषभ के समान जातस्थाम-धैर्यवान हैं, १९ सिंह के समान दुर्घर्ष-परीपहादिमृगा से नहीं हारनेवाले हैं, २० पृथ्वी के समान शीत-उष्ण आदि सभी स्पर्श को महन करनेवाले हैं, २१ घृत आदि से अच्छी तरह दहन की हुई अग्नि के समान (ज्ञान और तपरूप) तेज में जाज्वल्यमान हैं । उनके कही प्रतिबन्ध नहीं होता\*\*\*।

वे अनगर भगवत चाहे वसोले ने काटे जाएँ, चाहे चन्दन से चर्चे जाएँ, समभाव रहते हैं। मिट्टी के ढेले एव कचन के प्रति समानवृत्ति रखते हैं। सुख-दुःख में समान रहते हैं। इहलोक-परलोक के विषय में प्रतिबन्धरहित हैं। ससार के पारगामी हैं एव कर्मों को क्षय करने के लिए उद्यत होकर विहार करते हैं।



भवइ । \*\*\*तेण भगवतो वासीचदणसमाणकप्पा  
समलेट्ठुकचणा समसुह-दुक्खा इहलोग परलोगअप्पडि-  
वद्धा ससारपारगामी कम्मणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिया  
विहरति । — औपपातिक-समवसरणाधिकार

श्रमण भगवान् महावीर के बहुत से अनगार भगवत ईर्यासमिति-  
युक्त है, ममत्वरहित हैं, अकिंचन हैं, छिन्नग्रन्थ है, छिन्नश्रोत  
है, निरुपलेप हैं एव इक्कीस उपमाओ से उपमित हैं । १ वे  
कास्यपात्रवत् स्नेहमुक्त हैं, २ शख के समान उज्ज्वल (रागा-  
दिरगरहित) है, ३ जीव के समान अप्रतिहत-गतिवाले हैं, ४ अन्य  
कुधातुओ के मिश्रण से रहित सोने के समान जातरूप लिए  
हुए चारित्र को निरतिचार रखनेवाले हैं, ५ (दर्पणपट्ट के  
समान निर्मलभाववाले है), कच्छप के समान गुप्तेन्द्रिय हैं,  
६ कमलपत्रवत् निर्लेप हैं, ७ आकाश के समान निरालवन हैं,  
८ वायु के समान निरालय (अप्रतिवद्धविहारी) हैं, ९ चन्द्रमा-  
वत् सौम्यकान्तिवाले है, १० सूर्य के समान दीप्ततेजवाले हैं,  
११ सागरवत् गभीर हैं, १२ पक्षी के समान पूर्णत विप्रमुक्त हैं,  
१३ मेरुपर्वत के समान अडोल हैं, १४ शरद्ऋतु के जल के  
समान शुद्धहृदयवाले हैं, १५ गेडे के सींग के समान एकजात  
अर्थात् रागादिभावरहित एकाकी हैं, १६ भारण्डपक्षी के समान  
अप्रमत्त है, १७ हाथी के समान घूर-कामादि भावशत्रुओ को  
जीतने में समर्थ है १८ वृषभ के समान जातस्याम-धैर्यवान है,  
१९ सिंह के समान दुर्धर्ष-परीपहादिमृगो में नहीं हारनेवाले है,  
२० पृथ्वी के समान शीत-उष्ण आदि सभी स्पर्श को सहन  
करनेवाले हैं, २१ घृत आदि में अच्छी तरह हवन की हुई  
अग्नि के समान (ज्ञान और तपस्वरूप) तेज में जाज्वल्यमान हैं ।  
उनके कही प्रतिबन्ध नहीं होता\*\*\*।

मुमुक्षु—क्रोध-मान-माया-लोभ का वमन-त्याग करनेवाला होता है, यह सर्वज्ञ-भगवान् की मान्यता है ।

- ४ खतो अ मद्दवऽज्जव-विमुत्तया तह अदीणया-तित्तिक्खा ।  
 आवस्सगपरिसुद्धि अ, होति भिक्खुस्स लिंगाइ ॥  
 —दशवैकालिक-नियुक्ति ३४६

क्षमा, विनम्रता, मरलता, निर्लोभता, अदीनता, तित्तिका और आवश्यकक्रियाओं की परिशुद्धि—ये सब भिक्षु के वास्तविक चिन्ह हैं ।

- ५ इह खलु थेरेहि भगवतेहि वारस भिक्खुपडिमाओ,  
 पन्नत्ताओ ।  
 —सगवतो २।१

स्वविर-भगवन्तो ने वारह भिक्षुप्रतिमायें—साधुओ की प्रतिज्ञायें कही हैं—१ मामिकी, २ द्विमासिकी, ३ त्रिमासिकी, ४ चातुर्मासिकी, ५ पचमासिकी, ६ षणमासिकी, ७ सप्तमासिकी, ८ प्रथमासप्तरात्रिदिवा, ९ द्वितीया सप्तरात्रिदिवा, १० तृतीयामप्तरात्रिदिवा, ११ अहोरात्रिदिवा, १२ एक रात्रि की ।



१. ससारे भय इक्खतीति-भिक्षु ।

—विसुद्धिमग्गो १।७

जो समार मे भय देखता है—वह भिक्षु है ।

क. पच य फासे मह्व्वयाइ, पचासवसवरे जे स भिक्षू ।  
(५)

जो पाच महाव्रतो का पालन करता है एव मिथ्यात्व आदि पाँच आस्रवो को रोकता है 'वह भिक्षु' है ।

ख. सच्चित्त नाहारए जे स भिक्षू । (३)

जो कभी बीजादि सच्चित्त वा आहार नहीं करता, वह 'भिक्षु' है ।

ग. समसुह-दुक्खसहे य जे स भिक्षू । (११)

जो सुख-दुख को समभाव मे सहन करता है, वह 'भिक्षु' है ।

घ. तवे रए सामणिए जे स भिक्षू । (१४)

—दशर्वकालिक १०

जो तप और सयम मे रक्त होता है, वह 'भिक्षु' है ।

२. मणवयकायसुसवुडे स भिक्षू ।

—उत्तराध्ययन १५।१२

मन-वचन-काया से जो सवृत है, वह 'भिक्षु' है ।

३. से वता कोह च माण च, माय च, एय पासगस्स दसण ।

—आचाराग ३।४

मुमुक्षु—क्रोध-मान-माया-लोभ का वमन-त्याग करनेवाला होता है, यह सर्वज्ञ-भगवान् की मान्यता है ।

४. खतो अ मद्दवऽज्जव-विमुत्तया तह अदीणया-तित्तिक्खा ।  
आवस्सगपरिसुद्धि अ, होति भिक्खुस्स लिंगाइ ॥  
—दससकालिक-नियुक्ति ३४६

क्षमा, विनम्रता, मरनता, निर्लोभता, अदीनता, तित्तिका और आवश्यकक्रियाओं की परिशुद्धि—ये नव भिक्षु के वास्तविक चिन्ह हैं ।

५. इह खलु थेरेहि भगवतेहि वारस भिक्खुपडिमाओ,  
पन्नत्ताओ ।  
—भगवती २।१

स्वविर-भगवन्तो ने वारह भिक्षुप्रतिमायें—माधुओ की प्रतिजायें नहीं हैं—१ मागिकी, २ द्विमागिकी, ३ त्रिमागिकी, ४ चातुर्मागिकी, ५ पचमागिकी, ६ षणमासिकी, ७ नप्त-मासिकी, ८ प्रथमासपतरात्रिदिवा, ९ द्वितीया नपतरात्रिदिवा, १० तृतीयामपतरात्रिदिवा, ११ अहोरात्रिदिवा, १२ एक रात्रि की ।

- १ श्राम्यतीति श्रमणस्तथा सम इति शत्रु-मित्रादिषु प्रवर्तते  
इति समण (अण् प्रत्यय)

—स्थानाग ४।४ टीका

श्रम-तपस्या करता है अतः वह 'श्रमण' है। तथा शत्रु-मित्रा-  
दिक पर समभाव रखता है, इसलिए वह 'समण' है यहा अण्  
प्रत्यय हुआ है।

२. तो समणो जइ सुमणो, भावेण य जइ ण होइ पावमणो ।  
सयणे असयणे अ समो, समो अ माणावमाणे सु ॥

—अनुयोगद्वार १३२

जो मन से सु-मन (निर्मल मनवाला) है, सकल्प से भी कभी  
पापोन्मुख नहीं होता, स्वजन तथा अस्वजन में, मान एव अप-  
मान में सदा सम रहता है, वह समण होता है।

- ३ जह मम ण पिय दुक्ख, जाणिअ एमेव सच्चजीवाण' ।  
न हणइ न हणावेइ, सममणइ तेन सो समणो ॥

—अनुयोगद्वार १२६

- जैसे—मुझे दुःख प्रिय नहीं लगता, वैसे दूसरों को भी नहीं  
लगता। यो जानकर जो किसी भी जीव को न मारता है, न  
मरवाता है एव समभाव से रहता है, वह श्रमण है।

चौथा भाग चौथा कोष्ठक

४ उरग-गिरि-जलण-सागर-नहतल-तरुण-समो यजो होइ।  
भमर-मिय-धरणि-जलरुह-रवि-पवणसमो यसो समणो॥  
—अनुयोगद्वार ५

श्रमण वह है, जो सर्पवत् परकृत निवास में रहता है, पर्वतपथों में पर्वतवत् निष्प्रकम्प रहता है। अग्निवत् तप के तेज से युक्त होता है एवं सूत्रार्थरूप ईंधन से तृप्त नहीं होता। समुद्रवत् गम्भीर, ज्ञानादि रत्नों का घर एवं अपनी मर्यादा को नहीं तोड़नेवाला है। आकाशवत् निरालम्बी होता है। वृक्षसमूहवत्-मुख-दुःख में समभाव होता है। भ्रमरवत् अनियतवृत्ति से जीवननिर्वाह करता है। मृगवत् ममार में भयभीत रहता है। पृथ्वीवत् सब कुछ सहन करता है। सूर्यवत् सबको समानरूप से प्रकाश देता है। कमलवत् निर्लेप रहता है एवं पवनवत् अप्रतिवद्धविहारी होता है।

✽

१. ग्रन्थः कर्माष्टविधः, मिथ्यात्वाविरतिदुष्टयोगाश्च ।  
तज्जयहेतोरशठः, सयतते यः स निर्ग्रन्थः ॥

—प्रश्नमरति १४२

आठ कर्म, मिथ्यात्व, अव्रत और दुष्टयोग—ये ग्रन्थ कहलाते हैं । जो इन्हें जीतने के लिए सरलभाव से प्रयत्न करता है, वह निर्ग्रन्थ है ।

२. आगमवलिया समणा निग्गथा ।

—ध्ववहारसूत्र १०

श्रमण-निर्ग्रन्थों का वल 'आगम' (शास्त्र) ही है ।

३. पचासवपरिण्णाया, तिगुत्ता छमु सजया ।  
पचनिग्गहणा धीरा, निग्गथा उज्जुदसिणो ॥११॥  
आयावयति गिम्हेसु, हेमन्तेमु अवाउडा ।  
वासामु पडिमलोणा, सजया सुसमाहिया ॥१२॥  
परीसहरिऊद्धता, धयमोहा जिडं दिया ।  
मव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमत्ति महेसिणो ॥१३॥

—दशवैकालिक अ० ३

निर्ग्रन्थ नुनि पांच आन्त्रकों को त्यागनेवाले, तीन गुप्तियों में गुप्त, छ काय के जीवों के प्रति मयमी, पांच इन्द्रियों का

निग्रह करनेवाले, धीर एव मरलदृष्टि द्वारा देखनेवाले होते हैं ॥११॥

सुसमाधिस्थ समयी मुनि ग्रीष्मकाल में सूर्य की आतापना लेते हैं । शीतकाल में अल्पवस्त्रधारी होते हैं । वर्षाश्रुतु में प्रतिसलीन-इन्द्रियो को यश करके एक स्थान पर रहते हैं ॥१२॥

मर्हपि निर्ग्रन्ध परीपह-शत्रुओं को जीतनेवाले, धूतमोह एव जितेन्द्रिय होते हैं तथा सर्वदुःखों के विनाशार्थं पराश्रम करते हैं ॥१३॥

- ४ समणस्स भगवओ महावीरस्स अतेवासी ब्रह्मे निग्गथा भगवतो अप्पेगइया आभिणिबोहियणाणी जाव केवल-णाणी, अप्पेगइया मणवलिया व्यवलिया कायवलिया, अप्पेगइया मणेण सावाणुग्गहत्तमत्था ३, अप्पेगइया तेलो-सहिपत्ता एव जल्लोत्तहि०, विप्पोसहि, आमोसहि०, मच्चो-सहिपत्ता अप्पेगइया कोट्ठवुद्धो एव वीयवुद्धो पडवुद्धो, अप्पेगइया पयाणुसारी अप्पेगइया सभिन्नसोया, अप्पेगइया खीरासवा, अप्पेगइया महुत्तासवा, अप्पेगइया सप्पिआसवा, अप्पेगइया अक्खीणमहाणसिया एव उज्जुमई, अप्पेगइया विउल्लमई विउल्लवणिट्ठिपत्ता चारणा विज्जाहरा आगामाड्ढाड्ढो ॥ अप्पेगइया कणगावाल तवोकम्म पडिवण्णा एव एणावलि खुट्ठान्नीहनिक्कीलिय तवो-कम्म पडिवण्णा. नजमेण तवमा अप्पाण भावेमाणा विहरति ।
- औपपातिक समयसरणाधिपार



श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी अनेक निर्ग्रन्थ भगवन्त, जिनमे कई एक मतिज्ञानी हैं यावत् कई केवलज्ञानी हैं । कई मनोवली, वचनवली एव कायवली हैं, तो कई मन, वचन एव काया से शाप और अनुग्रह की क्रिया करने मे समर्थ हैं । कई खेल्लोपधिलब्धिवाले हैं तो कई जलमोपधि, विप्रुडोपधि, आमर्षोपधि, और मर्षोपधिलब्धिवाले हैं । कई कोष्ठक बुद्धिवाले हैं तो कई बीजबुद्धि और पटबुद्धिवाले हैं । कई पदानुसारिणी लब्धिवाले हैं तो कई मभिन्नश्रोतलब्धिवाले हैं । कई क्षीरमद्युसर्पिराश्रवलब्धिवाले हैं; तो कई ऋजुमति, विपुलमति एव विकुर्पणाऋद्धियुक्त हैं । कई चारण एव विद्याधर हैं तो कई आकाश मे गमन करनेवाले हैं । कई कनकावली तप कर रहे हैं तो कई एकावली, लघुसिह-निष्क्रीडित आदि तप मे लीन हैं । इम प्रकार मयम-तप मे आत्मा को भावित करते हुए विहार कर रहे हैं ।

५. पच णियठा, पणत्ता, त जहा—

पुलाए, वउसे, कुसीले, नियठे, सिणाए ।

—स्यानाग ५।३।४४५

निर्ग्रन्थ पांच प्रकार के होते हैं—

(१) पुलाक—साररहित धान्य को पुलाक कहते हैं । तप और ज्ञान मे प्राप्त लब्धि के प्रयोग द्वारा बल-वाहन नहित चक्रवर्ती आदि का मानमर्दन करने मे तथा जानादि के अतिचारो का सेवन करने से जिनका मयम पुलाकवत् साररहित हो, वे पुलाकनिर्ग्रन्थ कहलाते हैं ।

(२) दकुश—दकुश शब्द का अर्थ चित्र (चीते जैमा) वर्ण हैं । शरीर एव उपकरणों की शोभा-विभूषा करके उत्तमगुणो

मे दोष लगाने से जिनका चारित्र्य चित्रवर्ण (दोषो के दाग-वाला) होगया है, वे वकुशनिर्ग्रन्थ कहलाते हैं ।

(३) कुशील—मूल व उत्तर गुणो मे दोष लगाने मे तथा सज्वलन कपाय के उदय से जिनका शील-चारित्र्य कुत्सित व दूषित हो गया है, वे साधु कुशीलनिर्ग्रन्थ कहलाते हैं । ये दो प्रकार के होते हैं—प्रतिसेवनाकुशील और कपायकुशील ।

(४) निर्ग्रन्थ—ग्रन्थ का अर्थ यहाँ मोह है । जो साधु मोह से रहित हैं, उन्हे निर्ग्रन्थ कहते हैं । ये दो प्रकार के होते हैं—उपशान्तमोहवाले एव क्षीणमोहवाले । दोनों क्रमश ग्यारहवे-वारहवे गुणस्यान मे निवास करते हैं ।

(५) स्नातक—स्नान किये हुए को स्नात या स्नातक कहते है । शुक्लव्यान द्वारा नमस्त धातिककर्मो को खपाकर जो शुद्ध हो गये हैं (नहालिये हैं), वे मुनि स्नातक-निर्ग्रन्थ कहलाते हैं ।



१. सन्मार्ग से गिरते हुए मनुष्य को स्थिर करनेवाले व्यक्ति स्थविर कहलाते हैं ।
२. दसविहा थेरा पणत्ता, तं जहा—गामथेरा, णगरथेरा, रट्ठथेरा, पसत्थथेरा, कुलथेरा, गणथेरा, सघथेरा, जाइथेरा, सुयथेरा, परियायथेरा ।

—स्यानांग १०।७६१ तथा समवायाङ्ग १०

स्थविर दस प्रकार के कहे हैं—(१) ग्रामस्थविर, (२) नगरस्थविर, (३) राष्ट्रस्थविर, (४) प्रशास्तस्थविर, (५) कुलस्थविर, (६) गणस्थविर, (७) सघस्थविर, (८) जातिस्थविर, (९) श्रुतस्थविर, (१०) पर्यायस्थविर ।

३. समणस्स भगवओ महावीरस्स अतेवासी वहवे थेरा भगवतो जाइसपण्णा कुलसपण्णा वलसपण्णा रूवसंपण्णा विणयसपण्णा णाणसपण्णा दसणसपण्णा चरित्तसपण्णा लज्जासपण्णा लाघवसपण्णा, ओयसी तेयसी वच्चसी जससी, जियकोहा जियमागा जियमाया जियलोभा जियड दिया जियणिट्ठा जियपरीसहा, जीवियासमरणभयविप्पमुक्का, वयप्पहाणा “ मत्तप्पहाणा वेयप्पहाणा वभ-

प्पहाणा नयप्पहाणा नियमप्पहाणा सच्चप्पहाणा सोय-  
 प्पहाणा... . सुसामण्णरया दत्ता इणमेव णिग्गथ पाव-  
 यण पुरओ काउ विहरति । तेसि ण भगवताणं आया-  
 वायाविविदिता भवति, परवाया विदिता भवति, आयावाय  
 जमइत्ता नलवणमिव मत्तमायगा अच्छिद्दपसिणवागरणा  
 रयणकरडगसमाणा कुत्तियावणभूया परवादियपमद्दणा  
 दुवालसगिणो समत्तगणिपिडगघरा . . . . अजिणा  
 जिणसकासा, जिणा इव अवितहं वागरमाणा सजमेण  
 तवसा अप्पाण भावेमाणा विहरति ।

श्रमण भगवान् महावीर के अतेवासी बहुत से स्वविर भगवत  
 जातिमपन्न हैं तथा कुल, बल, रूप, विनय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य  
 लज्जा, एव लाघवनपन्न हैं । ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी और  
 यशस्वी हैं एव क्रोध-मान आदि को जीतनेवाले हैं । वे जीवि-  
 ताशा और मरणभय से विप्रमुक्त हैं । व्रत, गुण, करण, चरण, निग्रह,  
 निश्चय, आर्जव, मार्दव, लाघव, धान्ति, मुक्ति, विद्या, मन्त्र,  
 वेद, ब्रह्म, नय, नियम, नत्य और शीघ्र में प्रधान-श्रेष्ठ हैं । ..  
 वे श्रमणत्व में रक्त हैं, दान्त हैं और इस निरग्रन्थप्रवचन को  
 आगे करके विनर रहे हैं । जिन्हें आत्मवाद (न्यनिद्धान्त) और  
 परवाद (जन्ममत्त ते सिद्धान्त) विदित हैं आत्मवाद को  
 हृदय में अगाध नदयत्त में मन्त्र हाथी की तन्त्र ज्ञानयत्त में  
 रमण कर रहे हैं, जटिल में जटिल प्रश्नों का उत्तरना में उत्तर  
 देने में समर्थ हैं । वे रत्नकरण के समान हैं, कुप्रियागत

जैसे हैं, परवादियों का प्रमर्दन करनेवाले हैं। द्वादशाङ्ग के ज्ञाता हैं, समस्त गणिपिटक के धारक हैं। . . . जिन न होकर भी जिन के समान है और जिनके तुल्य अवितथ-सत्यवाणी वागरते हुए सयम-तप से आत्मा को भावित करते हुए विहार कर रहे हैं।

- 
- १ कु-पृथ्वी, त्रिक-तीन, व्यापण-दुकान अर्थात् स्वर्ग, मर्त्य, पातालरूप तीनों पृथ्वियों में उपलब्ध होनेवाली सब वस्तुएँ जिसे दुकान में मिल सकती हो, उस दुकान को कुत्रिकापण कहते हैं। पुराने जमाने में ऐसी देवाधिष्ठित दुकानें बड़े शहरों में हुआ करती थीं। यहाँ स्थिरी को कुत्रिकापण की उपमा देने का मतलब यह है कि उनके पास कुत्रिकापण की तरह हर एक प्रकार के ज्ञान का अद्भुत सग्रह होता है।

- १ स तापसो यो परतापकर्षण ।  
वास्तव मे तापस-वही है, जो दूसरो का मताप दूर करे ।
२. तवेण होइ तावसो । —उत्तराध्ययन २५।३२  
तप करने से तापस होता है ।
३. कुसचीरेण न तावसो । — उत्तराध्ययन २५।३१  
वल्कलादि वस्त्रमात्र पहनने से तापस नहीं होता ।



जैसे हैं<sup>१</sup>, परवादियों का प्रमर्दन करनेवाले हैं। द्वादशाङ्ग के ज्ञाता हैं, समस्त गणिपिटक के धारक हैं।.. जिन न होकर भी जिन के समान है और जिनके तुल्य अविद्य-सत्यवाणी वागरते हुए समय-तप में आत्मा को भावित करते हुए विहार कर रहे हैं।

- 
- १ कु-पृथ्वी, त्रिक-तीन-आपण-दुकान अर्थात् स्वर्ग, मर्त्य, पातालरूप तीनों पृथ्वियों में उपलब्ध होनेवाली सब वस्तुएँ जिस दुकान में मिल सकती हों, उस दुकान को कुत्रिकापण कहते हैं। पुराने जमाने में ऐसी देवाधिष्ठित दुकानें बड़े शहरों में हुआ करती थी। यहाँ स्थविरों को कुत्रिकापण की उपमा देने का मतलब यह है कि उनके पास कुत्रिकापण की तरह हर एक प्रकार के ज्ञान का अद्भुत संचय होता है।

- १ स तापसो यो परतापकर्षण ।  
वास्तव मे तापस-वही है, जो दूसरो का सताप दूर करे ।  
—उत्तराध्ययन २५।३२
- २ तवेण होइ तावसो ।  
तप करने से तापस होता है ।  
— उत्तराध्ययन २५।३१
- ३ कुसचीरेण न तावसो ।  
बल्कलादि वस्त्रमात्र पहनने से तापस नहीं होता ।



१. फकीर का अर्थ—

फे-फाका(तपस्या),काफ-कनायत(फाके पर भरोसा),इये-याद डलाही, (पल-पल में प्रभु का स्मरण), रे-रियायत-सयम में रहना । (फे-काफ-इये-रे = फकीर) तत्त्व यह है कि जो तपस्या करता है एवं उसमें भरोसा रखता है तथा प्रभु का स्मरण करता हुआ सयम में रहता है, वह फकीर है ।

२. फिक्र छाड़ फराकमल धर चित्त आतम धीर,  
दया कपन पहने फिरे, ताको नाम फकीर ।

३. फिकर फिकर को खात है, फिकर फिकर का पीर,  
फिकर का जो फाका करे, ताको नाम फकीर ॥

४. फकीर सोही फरक्क रहे, नहिं संग करे विषयी-जन केरा,  
आप हवाल में मस्त रहे,वाड़ी वाग बजार मसीत में डेरा ।  
आप उपाय न छावत छप्पर, होत खुशी जहा लेत वसेरा,  
'रामचरण' खुदा भख भजन,वार गिने नहिं साझ-सवेरा ॥

५. मेडिय मदिर छाड़ के क्यू वन,  
वाघत झूपड़ी फूस-तटिदा,  
लूखड़ी-सूकड़ी खाय रहो,  
काला मुँह करो तुम खाट मटिदा ।

रूप उन्हो कू हि लोडिए जो कोई,  
 नारी का आसक होय लटिदा ।  
 फकीरी का राह कठिन है,  
 उली पग धरता निकले दूध छटिदा ।

—भाषाश्लोकसागर

६ गिह न छाए णपि छायाएज्जा । —सूत्रकृतांग १०।१५  
 साधु स्वय न छप्पर छाए और न दूसरे से छवाए ।

७ आरा गहर मे मुहम्मद अलतवी कलेक्टर ने एक फकीर  
 से पूछा—अच्छे साधु कहां देखे ?

फकीर - कु भ के मेले मे ।

कलेक्टर—मुसलमान होकर कु भ का नाम कैसे ?

फकीर—जैसे ऊपर चढे व्यक्ति की दृष्टि मे छोटे-बडे  
 सभी वृक्ष एक समान होते हैं, उसी प्रकार जिसका मन  
 ससार से ऊपर उठ गया है, उसके दिल मे हिन्दु-  
 मुसलमान का भेद नही रहता ।



१. वदन प्रसादसदन, सदय हृदय सुधामुचो वाचः ।  
करणं परोपकरण, येषा केषा न ते वन्द्या !

जिनका वदन आनन्द का सदन है, हृदय दयासहित है, वाणी अमृतवर्षिणी है और इन्द्रियाँ परोपकारिणी हैं—ऐसे सन्त पुरुष किसके वन्दनीय नहीं होते ।

२. सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ता, प्रणताः समदर्शिनः ।  
निर्ममा निरहकारा, निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥

—सागवत ११।२६।२७

सत जब किसी प्रकार की इच्छा नहीं करते, वे मुझमें ही चित्त लगाए रहते हैं तथा अतिनम्र, समदर्शी, ममत्वरहित, अहकाररहित, निर्द्वन्द्व एव निष्परिग्रह होते हैं ।

३. मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-  
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्त ।  
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्य,  
निजहृदि विकसन्त सन्ति सन्तः कियन्त ॥

- भर्तृहरि-नीतिशतक ६६

जिन के मन-वचन-जाया धर्म-अमृत में पूर्ण है, जो तीनों ही लोको को अपने उपकार में तृप्त कर रहे हैं तथा जो दूमरों के परमाणु जितने छोटे गुणों को भी पर्वत जितना बड़ा करके मन में खुश हो रहे हैं, ऐसे-मन्त कितने-क हैं ?

४ स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः । —श्रीमद्भागवत १।१६।८  
साधु स्वयं तीर्थों को पवित्र करते हैं ।

५ सत हृदय नवनीत समाना,  
कहा कविन्ह पै कहै न जाना ।  
निज परिताप द्रवइ नवनीता,  
पर दुख द्रवाहि सत सुपुनीता ॥

—रामचरितमानस

६. गङ्गा पाप शशी ताप, दैन्य कल्पतरुयथा ।  
पाप ताप च दैन्य च, हन्ति सन्तो महाशयाः ॥

—चदचरित्र, पृ० १०६

गंगा पाप का, चन्द्रमा ताप का और कल्पवृक्ष दीनता का नाश करता है, किन्तु महामना सतपुरुष पाप, ताप एवं दीनता—इन तीनों का ही नाश करते हैं ।

७ कोउक निन्दत कोउक वन्दत,  
कोउक भावसो देत है भच्छन ।  
कोउ कहत ये मूरख दीसत,  
कोउ कहत ये चतुर-विचच्छन ।  
कोउक आय लगावत चन्दन,  
कोउक डारत है तन तच्छन ।  
सुन्दर ! काहू पै राग न रोप सो,  
ये सब जानिये मन्त के लच्छन ।

८ सज्जन ऐसा होइए, जैसा वन का कैर ।  
ना कहूँ सो दोस्ती, ना काहूँ सो वैर ॥

८. सता ! हेत जु राखिये, पातलवाली प्रीति ।  
जीम्यां पाछै फेंक दे, या सन्तन की रीत ॥
- १० भावे लवे केश रख, भावे मुड मुडाव ।  
साहिव से सच्चे रहो, वन्दे से सदभाव ॥

—नानक

- ११ जैसे—सत्ताधारी पुरुषो की वाणी से सत्ता एव गृहिणियों की वाणी से प्रेम झलकता है । उसी प्रकार सन्तों की वाणी से त्याग-वैराग्य-पवित्रता एवं आत्मबल प्रकट होता है और श्रोताओ पर अवश्य प्रभाव पडता है ।



# कतिपय जगत्प्रसिद्ध संत-महात्मा

श्रमण भगवान महावीर—

जैन-सिद्धान्तानुसार आप चौबीस तीर्थङ्करो मे मे अतिम तीर्थंकर थे । इस समय आपका ही शासन चल रहा है ।

आप का जन्म क्षत्रियकुड नगर मे चैत्र शुक्ला १३ को हुआ था । माता का नाम त्रिशला और पिता का नाम सिद्धार्थ था । जबसे आप गर्भ मे आये तभी से उत्तरोत्तर अन्न-घनादि की वृद्धि होने लगी । अत पिता ने आपका नाम वर्द्धमान रखा । युवावस्था प्राप्त होने पर, यशोदा नाम की राजकन्या से आपका विवाह हुआ ।

जब आप तपस्यार्थ वन की ओर जाने लगे, तब इन्द्र ने आपको छत्रस्य-अवस्था मे उपसर्गों से सुरक्षित रहने मे सहायता देना चाहा, पर आपने कहा—मुझे किसी दूसरे का सहारा नहीं चाहिए । सुनकर इन्द्र चकित हुआ और आपको 'महावीर' के नाम के संबोधित किया ।

आपका तपस्याकाल बहुत लम्बा चला—१२ वर्ष १३ पक्षो मे आपने केवल ११ मास २० दिन बाहार लिया । आपके तपस्याकाल मे बड़े-बड़े उपसर्ग आए, परन्तु आप मेग्बत् अचन रहे । आखिर कर्म-शत्रु हारे और वैशाख शुक्ला १० को आप केवलज्ञानी बने ।

अपने आपको धर्म की वेदी पर चढ़ाते हुए विरोधियों से कहा—‘होरमज्द’ (ईश्वर) तुम्हें क्षमा करे। पारसीधर्म में वैदिकधर्म की तरह ज्ञान, भक्ति और कर्म-तीनों मार्ग अपनाये गये हैं, पर विशेषतः कर्म-मार्ग पर दिया गया है। यदि एक ही शब्द में कहें तो इस धर्म का सार है परोपकार।

—कल्याण सतबक तथा  
‘पारसीधर्म क्या कहता है?’ के आधार से।

#### ४. महात्मा ईसामसीह :—

इनका जन्म वि० स० ५७ में फिलस्तीन की राजधानी यरूसलम से ६ मील दूर बेथलेहम नगर के एक बड़े परिवार में हुआ था। माता का नाम मरियम और पिता का नाम यूसुफ था। बचपन से ही ईसा में अनेक दैविकगुणप्रकट हो गये थे। १२ वर्ष की आयु में तो ये यरूसलम के बड़े-बड़े विद्वानों से ज्ञान-वर्चा करने लग गये थे।

३० साल की आयु में ये जोर्डन नदी के किनारे यूहन्ना (जॉन) नामक एक महात्मा के पास उपदेश सुनने गये। यूहन्ना का उपदेश था—सबके साथ प्रेम से रहो। दूसरों का माल मत छीनो। जो कुछ मिला है, उमी में सन्तुष्ट रहो। गरीबों को मत सताओ। यदि तुम्हारे पास दो बाँट है तो एक उसे दे दो, जिसके पास न हो। अगर तुम्हारे पास खाने को है तो उसे खिलाओ, जिसके पास खाने को कुछ भी नहीं है। अच्छी करनी करो और अपना जीवन बदलो।

ईसा को यूहन्ना का उपदेश बहुत पसंद आया और ये उनके शिष्य बन गये। फिर ये समाज में फैली हुई गलत प्रथाओं का विरोध करते हुए सत्य, दया, दान, क्षमा आदि मानव-

धर्मों का प्रचार करने लगे । यह प्रचार कतिपय रूढ़िवादी यहूदियों को असह्य हो गया । उन्होंने इन पर ऐमे मिथ्या अभियोग लगाये जिसके कारण इन्हे प्राणदण्ड दिया गया । सूली पर चढ़ने से पूर्व इनकी प्रार्थना थी—“प्रभो ! इन लोगों को क्षमा कीजिए, ये बेचारे नहीं जानते कि हम क्या कर रहे हैं ?”

ईसा के साइमन (पीटर) आदि १२ मुख्य शिष्य थे । ईसाई-धर्म और इस्वी सन् के प्रवर्तक ईसा ही थे । ईसाई धर्म का मुख्य तत्त्व है —

Love is God, God is Love

अर्थात् प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है ।

— कल्याण संतअफ, तथा  
'ईसाईधर्म क्या कहता है ?' के आधार से ।

## ५. सुकरात—

ईसा से पूर्व पाँचवीं सदी के उत्तरार्ध में यूनान में इनका जन्म हुआ । पिता सिलावट थे एवं माता दाई का काम करती थी । बचपन से ही वे पढ़ने में तेज थे । उन्होंने महात्माओं से ज्ञान एवं जजो-बकीनो में तर्क-शक्ति बढाई । क्रोध को विशेषरूप से पीता और राजधानी एथेंस में धर्म-प्रचार करने लगे ।

उन समय नृपीनतो का वहाँ बड़ा जोर था । वे लौकिक-प्रेम की गाथाओं के माध्यम से लोगों को ईश्वर-प्रेम की ओर आकृष्ट करने का न्याय रचते थे । परन्तु वस्तुतः परमार्थनत्ता के वास्तविक ज्ञान का उनमें अभाव ही था । सुकरात के प्रभाव में उन लोगों का प्रभाव घटने-घटने क्षीण होने लगा ।



सुकरात को मनुष्य की अल्पज्ञता का भी पूरा भान हो चुका था। उनका यह प्रसिद्ध वाक्य था—*I Know that I Know nothing* अर्थात् मेरा ज्ञान तो यही बतलाता है कि मैं कुछ नहीं जानता। इनके आत्मवाद का युवको पर अत्यधिक प्रभाव पडा, किन्तु राज्याधिकारी विरुद्ध हो गये और उन्होंने इन पर निरीश्वरवादिता का अभियोग लगाकर इन्हें मृत्युदण्ड के रूप में जहर का प्याला दे दिया, जिसे ये हँसते-हँसते पी गए।

—कल्याण संतअंक के आधार से।

## ६ महात्मा डायोजिनीज—

डायोजिनीज ग्रीस के एक महान् तत्त्ववेत्ता सत थे। जीवन के बाह्यव्यवहारो के प्रति लापरवाह होकर ये बाजार में पड़े हुए एक काठ के पीपे में ही मस्त पड़े रहते थे। शाह सिकन्दर एकवार इनके दर्शनार्थ आया और अपनी महानता दिखलाता हुआ बोला.—

सिकन्दर— मैं महान विजेता सिकन्दर हूँ।

महात्मा— मैं मिनिक (अवधूत) डायोजिनीज हूँ।

सिकन्दर— मैं सारी दुनियाँ को मुट्ठी में रखता हूँ।

महात्मा— मैं सारी दुनियाँ के नात मारता हूँ।

सिकन्दर— आप, मैं चाहूँ उससे ज्यादा नहीं जी सकते।

महात्मा— तू चाहे या न चाहे, मुझे अवश्य मरना है।

सिकन्दर— आप चाहे तो मार्ग सकते हैं।

महात्मा— मेरे मामने को धूप छोडकर दूर हो जाओ।

महात्मा की निःस्पृहता से प्रभावित होकर सिकन्दर ने कहा—“अगर सिकन्दर-सिकन्दर न होता ना ग्रीस का तत्त्व-वेत्ता डायोजिनीज होता।”

—कल्याण संतअंक एवं श्रुति के आधार से।

### ७. मार्टिन लूथर—

जर्मनी (यूरोप) में एक किसान के घर सन् १४८३ ई० में इनका जन्म हुआ। बचालत पढ़े। धर्म की तरफ झुकाव अधिक था।

उन दिनों रोम के पोप (धर्मगुरु) सारे यूरोप में ईश्वरवत् पूजे जाते थे। उनका यह कहना था कि बड़े से बड़ा पापी भी हमारा सर्टीफिकेट (मुक्तिपत्र) लेने से स्वर्ग-गामी बन जाता है। श्रद्धालु लोग धन देकर पोपों ने 'मुक्ति-पत्र' लेने लगे। पाप-अत्याचार की वृद्धि होने लगी। लूथर ने लोगों को पोपलीला का रहस्य समझाते हुए कहा—सत्य, अहिंसा आदि के बिना इन कागज के टुकड़ों में कल्याण कभी नहीं होगा। लोग नमते एव 'प्रोटेस्टेंट' मत चला। पोप क्रुद्ध हुए तथा इन्हें जीवन जला देने की आज्ञा दी। लूथर बच निकले और प्रोटेस्टेंट धर्म का प्रचार करते हुए ६० वर्ष की आयु में परलोकगामी हुए।

—अध्ययन के आधार पर।

### ८. महर्षि वाल्मीकि—

एनका सून नाम अग्निशर्मा था। शकुओं के मनन में रहकर ये मटमार जीन रच्यार करने लगे। एक दिन इन्होंने सप्त-ऋषियों पर भी आश्रमण कर दिया। ऋषियों ने पूछा भाई! यह पाप निम्नके लिए कर रहे हो? इन्होंने कहा—धरानों के लिए। ऋषि बोले—क्या ये पाप के फल भोगने के लिम्मा ने लगे? इन्होंने माता-पिता, स्त्री आदि ने पूछा तो

उन सबने इन्कार कर दिया । तब ये रोते-रोते आकर ऋषियों के चरणों में पड़ गये और उनके उपदेश से इनके ज्ञान-नेत्र खुल गये । मत्तऋषियों ने रामनाम का मंत्र दिया । ये एक ही जगह खूँवैठकर रामराम जपते रहे । इनका शरीर दीमको का घर बन गया । (दीमको के घर को वल्मीक कहते हैं) तेरह वर्ष बाद, ऋषि वहाँ वापिस आये और इनको वल्मीक से निकाला । वल्मीक से निकलने के कारण इनका नाम वाल्मीकि हुआ । ये ही वाल्मीकिऋषि आदिकवि के नाम से प्रख्यात हैं ।

(स्कंदपुराण पाँचवाँ अवतिखंड, अवतिक्षेत्र माहात्म्य अ० २४)

#### ६. जगद्गुरु-आदिशंकराचार्य—

इनका जन्म मम्बत् ८३५, कोचीन (केरल), माता सती, पिता शिवगुरु एव जन्म का नाम शंकर था । शंकर प्रथमवर्ष में मातृभाषा पढ़े एव दूसरे वर्ष में १८ पुराण पढ़े । तीन वर्ष की आयु में पंडित बने एव पाँचवें वर्ष उन्हें जनेऊ दी गई । उनके विषय में यह भी कहा जाता है—

अष्टवर्षे चतुर्वेदी, द्वादशे सर्वशास्त्रवित् ।

षोडशे कृतवान् भाष्य, द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात् ॥

ये आठ वर्ष की आयु में चारों वेद और चारह वर्ष की आयु में अन्य सभी शास्त्र पढ़ चुके थे । सोलह वर्ष की आयु में उन्होंने ब्रह्मसूत्र एव उपनिषदों के भाष्य बनाए और बत्तीसवें वर्ष में ये दिवंगत हो गये ।

वैदिकधर्म का मटन करना उनको वचन से ही अभीष्ट था । वेदपारंगत कुमारिलभट्ट ने प्रयाग में मिने ।

उन्होंने शकर से मडनमिश्र को अपनी ओर खींचने की सलाह दी। नर्मदातट पर माहिष्मतीनगरी गये। मडन से १६ दिन चर्चा हुई। (उभयभारती उनकी पत्नी मध्यस्थ थी) मडनमिश्र हारे। फिर उभयभारती अर्द्धांगिनी के नाते चर्चा में आ बैठी। कामशास्त्र-सम्बन्धी प्रश्न चलाए। शकर ने समय मांगकर परदेह-प्रवेशिनी विद्या से मृत राजा के शरीर में प्रवेश किया और कामशास्त्र पढा। तत्पश्चात् उभय-भारती से १७ दिन चर्चा करके विजय प्राप्त की। दोनों (पति-पत्नी) शकर के शिष्य-शिष्या बने एवं उनका सहयोग पाकर इन्होंने, वैदिकधर्म का अत्यधिक प्रचार किया। मन्वत् ८६७ में शकराचार्य दिवगत हो गये।

—शंकरदिग्विजय के आधार से।

## १०. महात्मा कबीर—

इनका जन्म वि० सं० १४५५ जेठसुदी पूनम को हुआ था। माता का नाम नीमा और पिता का नाम नीरू था। ये जुलाहे का धंधा करते थे। एक बार वे एक पहिर-गत रहते गंगाघाट की नीटियों पर जा पड़े। उधर ने गंगा-नाना रुकके नीटते समय स्वामी रामानन्दजी का पैर इनके निर पर पड़ गया। नाशचर्य रामानन्दजी के मुँह ने 'राम-राम' शब्द निकला। इन्होंने एसी नामराम को गुरुभय मान लिया और रामानन्दजी ने भी इन्हें शिष्यत्व में स्वीकार कर लिया। (यं शूद्र को शिष्य नहीं बनाते थे।)

कबीर पढ़े-लिखे न होने पर भी मामूिल कवि थे। उनको माननेवाले हिन्दू-मुस्लिम दोनों ही थे। एक बार झंडा रोजा, झूठी ईद फर्र देते पर उन्हें वादनाह दिगन्तर लोधी दाना गंगा में बहा दिया गया। तब इन्होंने कहा—

गग लहर मेरी टूटी जजीर,

मृगछाला पर बैठ कवीर ।

कह कवीर कोउ सङ्ग न साथ ।

जिसको राखत है रघुनाथ ॥

इस चिन्तन के साथ ही इनके वधन खुल गये और ये कुछ ही क्षणों में तट पर आ खड़े हुए । इनकी रचनाओं में बीजक, आदिग्रन्थ, सागी, शब्दावली, अखरावटी, ज्ञान-गुदडी आदि मुख्य हैं । कवीर अहिंसा, सत्य और सदाचार के प्रचारक थे और इन्हें बाह्याडम्बर से बड़ी चिढ़ थी । इस समय इनके पथ (कवीरपथ) को माननेवाले ८-९ लाख बताए जाते हैं ।

—कल्याण सतअंक एवं श्रुति के आधार से ।

## ११. महात्मा तुलसीदास—

इनका जन्म राजापुर गाँव में आत्माराम ब्राह्मण के घर, माता हुलसी के गर्भ से मूलनक्षत्र में हुआ । मूलनक्षत्र में जन्म के कारण इनको माता-पिता ने छोड़ दिया । ये छटपटा रहे थे । नयोग-वश वहाँ साधु नरहरिदासजी आगये और इन्हें ले गये, पाल-पोषकर वेद-पुराण, रामायण आदि पढाया । बाद में इनका विवाह हुआ । स्त्री पर ये इतने मुग्ध हो गये कि उन्हें कभी पीहर नहीं भेजते थे । एकवार इनका साना आया और उनको विना पूछे ही अपनी बहन को ले गया । पता चलते ही समुगल के लिए जमुना की तेजघाट में कूद पड़े । तैन्त-तैन्ते थक गये । तत्र एक मुर्दे की टाँग पकड़कर पार पहुँचे । अंधेरी रात थी । समुगल का दरवाजा बन्द था । अतः ये दीवार पर लटकते हुए एक सर्प को रस्सी गमक कर उनके

सहारे स्त्री के पास जा चटके । भय, लज्जा और क्रोध से कांपती हुई स्त्री ने कहा :—

हाड-मांस को देह मम, ता पर जितनी प्रीति ।  
तिसु आधी जो राम-प्रति, अवसि मिटहि भव-भीति ॥

उन्हे ज्ञान हो गया एव साधु बनकर तीर्थों में सत्संग करते हुए घूमने लगे । वि० न० १६३१ में, अयोध्या में रामायण की रचना आरम्भ की फिर उच्चकोटि के २१ ग्रन्थ और बनाये जिसमें से १२ ग्रन्थवर्तमानमें मिलते हैं । इन्हें हिन्दी का शेक्सपियर और कानिदाम कहा जाता है ।

एक बार अकबर ने इन्हे चमत्कार दिखाने के लिए कहा और न दिखाने पर लालकिले में बन्द करवा दिया । अचानक बन्दरो की सेना ने आकर किले में ग्राहि-ग्राहि मचादी, (हनुमान का इष्ट था) अकबर ने माफी मांगी :

एक बार एक स्त्री का पति मर गया था । श्मशान जाते समय उसकी स्त्री ने कुटिया में आकर इन्हे प्रणाम किया । इन्होंने सहजभाव में कह दिया । 'नौभाग्यवती हो ।' चिल्लाकर स्त्री ने कहा—

पति हमारा चल बसा, हम भी चालनहार ।  
तुलसी तुम्हारे वचन का, होगा कवन हवान ॥

तुलसीदास जी ने मुर्दा मंगवाकर उसके सिर पर हाथ रखा और राम का ध्यान किया—

तुलसी मटा मगाव के, दिया घोडा पर हाव ।  
हमतो कष्ट जाने नहीं, तुम जानो रघुनाथ ॥

कहा जाता है कि इतना कहते ही मुर्दा जीवित होगया । राम-भक्ति में लीन महात्मा तुलसीदासजी का देहावसान वि० संवत् १६८०, श्रावण शुक्ल सप्तमी को काशी के (असीघाट) गंगातट पर हुआ, जिसके विषय में यह दोहा प्रसिद्ध है—

संवत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर ।  
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो सरीर ॥

—कल्याण संतअंक एवं श्रुति के आधार से ।

## १२. सिखगुरु नानकदेवजी—

सिखों के दस गुरु हुए हैं । उनमें प्रथम गुरु नानक-देवजी थे । इनका जन्म 'राइभोई की तलवडी' (ननकाणा-साहिब) में वेदी कानूचन्द पटवारी के घर माता तृप्ताजी के उदर से वैशाख सुदी ३ सं० १५२६ को हुआ । गुरु नानक वचन में ही बड़े शान्त-स्वभाव के थे । एक दिन माता के आग्रह पर ये बच्चों में खेलने गये । वहाँ इन्होंने बच्चों को पद्या-मन से बैठा दिया और कहा—“सत्यकृत्तरि” कहते जाओ । पिता ने इन्हें पढ़ने के लिए दो पड़ितों और एक मौलवी के पास भेजा, किन्तु इन्होंने अपने आत्मबल से तीनों उस्तादों को शिष्य बना लिया । एक बार पिता ने इन्हें कुछ सोदा नाने को कहा । इन्होंने नारे रुपये भूने सतों को खिलाने में लक्ष्ण कर दिये । घर आकर अपने पिता ने इस सोदे को मञ्चा नौदा बनाया । पिता को बड़ा क्रोध आया और इन्हें काफी मारा-पीटा । इनकी बहिन 'नानकी' से यह नहीं देखा गया और वह उन्हें अपने घर (नूनानापुर) ने गई । वहाँ ये सोदीचाने में काम करने लगे ।

सम्बत् १५४४ मे २४ जेठ को इनका विवाह मूलचदजी की सुपुत्री सुलक्षणा के साथ हुआ, जिमने इनके दो पुत्र (बाबा श्रीचन्द्र और बाबा लक्ष्मीदाम) हुए।

मोदीखाने ने एक दिन आटा तोलते समय एक-दो-तीन आदि कहते-कहते जब तेरह का नाम आया तो "तेरा-तेरा" ही कहते गये (हे प्रभो ! मैं तेरह हूँ) और सारा आटा तोल दिया। मोदीखाने का कार्य छोड़कर धर्मप्रचार में लग गये।

स० १६५४ मे इन्होंने देशाटन प्रारम्भ किया। इनकी चार यात्राएँ विशेष प्रसिद्ध हैं—

(१) पूर्व में हरिद्वार, देहली, नैमिषारण्य, अयोध्या, प्रयाग, काशी यावत् जगन्नाथपुरी। (२) दक्षिण में मेलुबन्ध-रामेश्वर एव सिंहलद्वीप। (३) उत्तर में मिषिकम, भूटान और तिब्बत। (४) पश्चिम में रुम, बगदाद, ईरान, काबुल तथा विलोचिस्तान होते हुए मुसलमानों के प्रतिद्ध तीर्थ मक्का पहुँचे। नभी जगह बाहेगुरु (परमात्मा) की अनन्य उपासना का उपदेश दिया। मक्के में एक दिन ये कावे की तरफ पैर करके सो गये। जब काजी क्रुद्ध, हुआ तो ये बोले—जिधर, बल्लाह न हो, मेरे पैर उधर कर दीजिए। काजी ने जिधर को इनके पैर फेरे गाथा भी उधर ही फिर गया। २५ वर्ष भ्रमण करने के बाद गुरु नानक कर्तारपुर में रहकर धर्म-प्रचार करने लगे।

स० १५६६ जामोज सुयी १० मे इनका परलोकगमन हुआ। उन समय इनकी आयु लगभग ७० वर्ष की थी।

अन्तिम-समय के समय हिन्दू और मुसलमानों में विवाद घटा हो गया। जब बल्लु उठानकर देखा तो इनका



शरीर ही नहीं मिला। अस्तु, आधा-आधा वस्त्र लेकर हिन्दुओं और मुसलमानों ने अपनी-अपनी विधि से अतिम-सस्कार किया।

—कल्याण, संतअक तथा 'सिखधर्म क्या कहता है?' के आधार से।

### १३. संत श्रीतुकारामजी चैतन्य—

इनका जन्म स० १६६५ में पूना के पास देहू नामक ग्राम में हुआ। इनकी माता का नाम कनकवाई और पिता का नाम बोलोजी था। इनके दो विवाह हुए। पहली स्त्री का नाम रक्खूवाई और दूसरी का जीजीवाई था। जीजीवाई का स्वभाव बड़ा चिड़चिड़ा था। माता-पिता के वियोग के कारण १७ वर्ष की अवस्था में ही इनको घर का मारा भार सभालना पड़ा। दुकान में घाटे पर घाटा लगता गया और आखिर दीवाला निकल गया। इधर पहली स्त्री और पुत्र मर गये। अब इनका चित्त गृहस्थ-जीवन में बिलकुल उचट गया और ये विरक्त होकर कभी पहाड़ों पर, कभी मंदिरों में भजन-कीर्तन करने लगे। कीर्तन करते समय इनके मुख में अभगवाणी निकलने लगी। बड़े-बड़े विद्वान् इनके भक्त बन गये, लेकिन वेदान्त के एक प्रकाण्ड पंडित को एक शूद्र के मुख से श्रुत्यर्थबोधक अभग का निकलना बहुत अखरा।

आखिर पंडित रामेश्वर भट्ट के दबाव में इन्होंने अपने अभगों की सारी बहियाँ इन्द्रायणी नदी के दह में टाल दी और खुद अन्न-जल त्यागकर, विद्वन्नाथ के मंदिर के सामने ध्यान-मग्न होकर बैठ गये। कहा जाता है कि १३ दिन बाद भगवान ने दर्शन देकर कहा—“उठो और धर्म प्रचार करो।

भाग : चौथा कोष्ठक

तुम्हारे सारे अभग भक्तों के पाम सुरक्षित हैं।" (ये अभग आज भी सत साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है) इधर पंडित रामेश्वर भट्ट के मारे शरीर में जलन पैदा हो गई। वह इनकी शरण में आया और भक्त बना। तुकारामजी का धर्म प्रचार बढ़ा। कई बार छत्रपति शिवाजी भी इनके सत्संग में आये थे। स० १७०६ चैत्र कृष्ण २ को इनका स्वर्गवास हुआ जनश्रुति के अनुसार देहावसान के बाद इनका शरीर नजर नहीं आया।

— कल्याण सतअफ के आधार पर।

१४ संत दादूदयालजी—

वि० स० १६०१ में अहमदाबाद के लोदीगम नामक एक ब्राह्मण को सावरमती नदी में तैरता हुआ एक सडूक मिला और उसमें से एक हस्तता हुआ बालक निकला। यही बालक आगे जाकर सत दादूजी कहलाया। कहा जाता है कि ११ वर्ष की आयु में श्रीकृष्ण ने इन्हें दर्शन और तत्त्वज्ञान दिया था। एक बार ये घर से निकल गये परन्तु घरवालों ने इन्हें वापस लाकर विवाह-व्रधन में जकड़ दिया। १६ वर्ष की आयु में ये फिर निकल पड़े। इस व्रधन में नामर (जयपुर) में जा छिपे और रुई धुनने का धंधा करते हुए १२ वर्ष तक कठिन तपस्या में मग्न रहे। ये मुद्यतया "लय-योग" में लीन रहने से अंतः 'निरजन-निराकार' पर जोर देते थे।

दादूजी के रज्जव्रजनजी-मुन्दरदासजी आदि १५२ शिष्य हुए जिनमें से १०० तो विरक्त रहे और जैन या भाषाजी कहलाने लगे। ५२ स्थानों में उनके दादू द्वारे बने हुए हैं। दादूजी ने अपने नाम में कोई पय या सम्प्रदाय प्रसिद्ध

नहीं किया। लेकिन पीछे से दादूजी के अनुयायी 'दादूपथी' कहलाने लगे।

दादूजी का प्रयाण स० १६६० में नारायणा नामक स्थान में हुआ। यह स्थान दादूपथियों का प्रधान तीर्थ स्थान कहलाता है।

—कल्याणः 'सतभक्त' के आधार पर।

### ७ कृष्ण की परमभक्त मीरावाई—

ये मेडतिया राजपूत राठोड जोधा जी की प्रपौत्री, दूदाजी की पौत्री एवं रतनसी की पुत्री थी।

इनका जन्म स० १५७३ के लगभग चौकडी (मारवाड) में हुआ। इनके ताऊ के लडके भाई वीर जयमल कृष्ण-भक्त थे। बहिन-भाई वचन से ही कृष्ण-भक्ति में विशेष रुचि लेते थे। एक साधु के पास कृष्ण की सुन्दर मूर्ति देखकर मीरा ने बाल-हठ किया और उससे मूर्ति प्राप्त करली।

मीरा का विवाह महाराणा सागा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ। किन्तु कुछ समय बाद उनका देहान्त हो गया। अब तो कृष्ण ही मीरा के एक मात्र प्राणाधार रह गये। मीरा कृष्ण-प्रेम में लीन होकर मन्दिरों में कीर्तन और नृत्य करने लगी। इनके देवर राणा रतनसिंह को मीरा का इस प्रकार स्वतन्त्र रूप में घूमना बहुत अनुचित लगा। उन्होंने इनको बहुत कहा-सुना और डराया-धमकाया भी, लेकिन जब ये किसी तरह नहीं मानी तब इनको जहर का प्याला दिया गया। जिसे ये भगवान् का चरणामृत मानकर पी गई। फिर पिटारे में एक साँप भेजा गया जो इनके लिए सालिषाम की

मूर्ति बन गया। आखिर मीरा एकदिन घर से निकल गई और वृंदावन आदि स्थानों में घूमती हुई द्वारका पहुँच गई। कहा जाता है कि वही न० १६६० में मीरा रणछोडदासजी की मूर्ति में विलीन हो गई।

‘नरसी जी का मायरा’ और ‘गीतगोविंद—टीका’ आदि मीरा की रचनाएँ मानी जाती हैं। मीरा के भजन बहुत ही लोकप्रिय हैं।

—‘पल्याण’ सतअक्ष के आधार पर।

### १५. आर्यसमाज के सत्यापक स्वामीदयानंद सरस्वती—

स्वामीजी का जन्म स० १८८२ में, टकारा (गुजरात) में हुआ। इनका जन्म-नाम मूलदाकर था।

कहा जाता है कि १४ वर्ष की आयु में एक बार ये शिवरात्रि का व्रत रखकर शिवमंदिर में रात्रि-जागरण कर रहे थे। शिवलिङ्ग पर चढ़ाई हुई नामश्री को चूहे खाने लगे एवं जम पर मल-मूत्र करने लगे। यह देखकर इनकी मूर्ति-पूजा में श्रद्धा उठ गई और उनके मन में यह विचार हुआ कि जब यह शिवमूर्ति स्वयं अपनी रक्षा ही नहीं कर पा रही है तो अपने भक्तों की क्या रक्षा करेगी! अन्तु, उसी क्षण उन्होंने मन्त्रों की शक्ति को जोड़ करके ता निश्चय कर लिया। अब वे विरक्त होने लगे। फिर भी माता-पिता ने इनका जवईस्त्री विवाह रचाया। विवाह के तत्पश्चात् इनकी १४ वर्ष की ब्रह्मिण मर गई। इस घटना ने इनका चरित्रभाव एकदम बट गया और विवाह ही छोड़कर घर में निकल गए। पूजाकारों के पास जाकर नव्यान के लिये और दूसरे-दूसरे भजन करने हुए इन्होंने गीतियों और मन्त्रों के अनेक विधान प्राप्त की।

मथुरा में प्रज्ञाचक्षु स्वामी विवेकानंदजी के पास वेदाध्ययन किया फिर उनकी आज्ञानुसार भारत भर में घूमकर वेदों का खूब प्रचार किया एवं 'वम्बई में आर्यसमाज' की स्थापना की।

इनकी निर्भीकता अद्भुत थी। उपदेश के समय हर एक सत्य बात वे घड़क होकर कह डालते थे। कहा जाता है कि इसी कारण जोधपुर में इन्हें विष दिया गया था। असह्य-वेदना हुई, फिर भी ये समभाव में रहे और सन् १८८३ दीवानी की रात को समाधि-मरण प्राप्त किया।

—कल्याण संतअंक तथा अध्ययन के आधार से।



## साधुओं के गुण

२०

### १. चरण गुण—

वय-समणधम्म-सजम, वेयावच्च च वभगुत्तीओ ।

नाणाडतिय तव, कोहनिग्गहाइ चरणमेय ।

—ओघनियुक्ति-भाष्य गाथा २

साधुओं द्वारा निरन्तर मेवन करने योग्य चारित्रसम्बन्धी नियमों को चरणगुण कहते हैं। चरणगुण मत्तर माने गये हैं। (ये चरणसत्तरी के नाम से प्रसिद्ध हैं) यथा—५ महाव्रत, १० प्रकार का श्रमणधर्म, १७ प्रकार का समय, १० प्रकार की वयावृत्त्य, ब्रह्मचर्य की ६ गुप्तियाँ, ज्ञानादिरत्तग्रिक, १२ प्रकार का तप और ४ कपाय का निग्रह ।

### २. करण गुण—

पिडविसोही समिई, भावण-पडिमा य इन्दियनिरोही ।

पडिलेहण-गुत्तीओ, अभिग्गहा चैव करण तु ॥

—ओघनियुक्ति-भाष्यगाथा ३

प्रयोजन उत्पन्न होने पर साधुओं द्वारा जिनका मेवन किया जाय, वे करणगुण कहनाते हैं। करणगुण भी ७० हैं। (ये करण-सत्तरी के नाम से प्रसिद्ध हैं) यथा—४ प्रकार की पिण्डविमुक्ति ५ नमितियाँ, १२ भावनाएँ, १२ प्रतिमाएँ ५ उन्द्रियों का निग्रह, २५ प्रकार की पडिलेहणा, ३ गुप्तियाँ और, ४ अभिग्रह ।<sup>१</sup>

१ इसका विस्तृत विवेचन चारित्र-प्रसंग पु ६ में देखिए।

मथुरा में प्रज्ञाचक्षु स्वामी विवेकानंदजी के पास वेदाध्ययन किया फिर उनकी आज्ञानुसार भारत भर में घूमकर वेदों का खूब प्रचार किया एवं 'वम्बई में आर्यसमाज' की स्थापना की।

इनकी निर्भीकता अद्भुत थी। उपदेश के समय हर एक सत्य बात वे घडक होंकर कह डालते थे। कहा जाता है कि इसी कारण जोधपुर में इन्हें विष दिया गया था। असह्य-वेदना हुई, फिर भी ये समभाव में रहे और सन् १८८३ दीवाली की रात को समाधि-मरण प्राप्त किया।

—कल्याण संतअक तथा अध्ययन के आधार से।



## साधुओं के गुण

### चरण गुण—

वय-समणधम्म-सजम, वेयावच्च च वभगुत्तीओ ।  
नाणाइतिय तव, कोहनिग्गहाइ चरणमेय ।

—ओघनियुक्ति-भाष्य गाथा २

साधुओं द्वारा निरन्तर सेवन करने योग्य चारिअमम्बन्धी नियमों को चरणगुण कहते हैं। चरणगुण सत्तर माने गये हैं। (ये चरणसत्तरी के नाम से प्रसिद्ध हैं) यथा—५ महाव्रत, १० प्रकार का श्रमणधर्म, १७ प्रकार का समय, १० प्रकार की वयावृत्त्य, ब्रह्मचर्य की ६ गुप्तियाँ, ज्ञानादिरत्नत्रिक, १२ प्रकार का तप और ४ कषाय का निग्रह।

### २. करण गुण—

पिडविसोही समिई, भावण-पडिमा य इन्द्रियनिरोही ।  
पडिलेहण-गुत्तीओ, अभिग्गहा चैव करण तु ॥

—ओघनियुक्ति-भाष्यगाथा ३

प्रयोजन उत्पन्न होने पर साधुओं द्वारा जिनका सेवन किया जाय, वे करणगुण कहलाते हैं। करणगुण भी ७० हैं। (ये करणसत्तरी के नाम से प्रसिद्ध हैं) यथा—४ प्रकार की पिण्डविमुद्धि ५ नमित्तियाँ, १२ भावनाएँ, १२ प्रतिमाएँ ५ इन्द्रियों का निग्रह, २५ प्रकार की पडिलेहणा, ३ गुप्तियाँ और, ४ अभिग्रह।<sup>१</sup>

१ इसका विस्तृत विवेचन चारिअ-प्रवचन पुज ६ में देखिए।



## ३. साधुदर्शन—

(क) साधूना दर्शन पुण्य, तीर्थभूता हि साधव,  
तीर्थं पुनाति कालेन, सद्यः साधुसमागमः ।

—चाणक्यनीति १२।७

साधुओं का दर्शन पवित्र है क्योंकि साधु तीर्थरूप होते हैं । तीर्थ तो कालान्तर में पवित्र करता है, किन्तु साधुओं का समागम तत्काल ही तार देता है ।

(ख) न ह्यवमयानि तीर्थानि, न देवा मृच्छिलामयाः ।

ते पुनन्त्युरुकालेन, दर्शनादेव साधवः ॥

—श्रीमद्भागवत १०।४८।२१

वास्तव में न तो नदी आदि के जल से युक्त तीर्थ हैं, न मिट्टी-पत्थर से बनी हुई मूर्तियाँ देवता हैं । वे बहुत काल के पश्चात् पवित्र करते हैं, किन्तु साधुजन दर्शन-मात्र से पावन कर देते हैं ।

(ग) तनकर मनकर वचनकर, देत न काहू दुःख ।

तुलसी पातक झडत है, देखत उनका मुख ॥

मुख देखत पातक झडे, पाप विलय हो जाय ।

तुलसी ऐसे सन्तजन, पूर्व भाग्य मिल जाय ॥

—तुलसी दोहावली

(घ) साधु-दर्शन लाभ है, बडभागी दरमाय ।

जिनरग शूली की सजा, काटे ही टल जाय ।

—हिन्दी दोहा

## साधु-संगति

२१

- १ चन्दन शीतल लोके, चन्दनादपि चन्द्रमा ।  
चन्द्र-चन्दनयोर्मध्ये, शीतला साधुसंगति . ।  
चन्दन जगत मे शीतल है और चन्दन से भी चन्द्रमा शीतल है । चन्द्र और चन्दन-इन दोनों से भी साधुओं की संगति अत्यधिक शीतल है ।
- २ ना सुख पटिया पडिता, ना सुख भूप भया ।  
सुख है बीच विचार दे, साधुसंग पया ॥  
ना सुख बीच गृहस्थ दे, ना सुख छोड गया ।  
सुख है बीच विचार दे, साधु संग पया ॥  
—पजाबी पद्य
३. सुत दारा अरु लक्ष्मी, पापिहु के घर होय ।  
सत समागम हरिकथा, तुलसी दुर्लभ दोय ॥
- ४ तात मिले पुनि मात मिले,  
नुत भ्रान मिले युवती सुखदाई ।  
राज मिले गज-राज मिले,  
सब माज मिले मन ब्रह्मिण बाई ।  
लोक मिले परलोक मिले,  
मुरलोक मिले वैकुण्ठ मे जाई ।

सुन्दर आय मिले सबही,

इक दुर्लभ - सतसमागम भाई ।

५. कौटि जन्म की पुण्यकमाई तव सन्तन की संगति पाई ।  
सतसगति जन पावे जबही, आवागमन मिटावे तवही ॥
६. सवणे नाणे य विन्नाणे, पच्चक्खाणे य सजमे ।  
अणण्हए तवे चैव, वोदाणे अकिरिया सिद्धी ॥

—भगवती २।५

साधुसग से धर्मश्रवण, धर्मश्रवण से तत्त्वज्ञान, तत्त्वज्ञान से विज्ञान-विशिष्ट तत्त्वबोध, विज्ञान से प्रत्याख्यान-मासारिक पदार्थों से विरक्ति, प्रत्याख्यान से सयम, सयम से अनाश्रव-नवीन कर्म का अभाव, अनाश्रव से तप, तप से व्यवदान (पूर्व-वद्ध कर्मों का नाश,) व्यवदान से निष्कर्मता-सर्वथा कर्मरहित स्थिति और निष्कर्मता से सिद्धि—अर्थात् मुक्तस्थिति प्राप्त होती है ।

७. गिहिसंथव न कुज्जा, कुज्जा साहूहि संथव ।

—दशर्वफालिफ ८।५३

गृहस्थो-ससारियो का परिचय नहीं करना चाहिए, किन्तु साधुओं का सत्सग करना चाहिए ।

८. संगति साधुन की करिये, कपटी लोगन ने डरिये ।

—निपट निरंजन



१ मत सताया सतदास, तेण सताया दीन ।  
गुप्तमार अतीन की, हो जाये तेरा-तीन ।

—मतदास

२ एक भक्त रामायण पढ रहा था । पढने में स्थलना होने ली हनुमान ने (जो रामकथा में सदा उपस्थित रहते हैं) उनके मुँह पर जोर में तप्पड़ मार दिया । फिर राम के दरवार में गये ता मुँह सूजा हुआ देखा । पूछने पर राम ने कहा, तूने ही तो मारा है ।

—पंडित रामक

३ मत सताया जान है, नाम राम अरु वज,  
षोषा । अस्तव देख लो । जादव-नीरव-कस ।

४ ध्यान था के एकाउट जनरल के पान योगी ने भिन्ना मारी । उत्तर में कहा—विण्डा खागे । योगी बोला—  
जा तुझे विण्डा ही मिलेगी । वन, उमा दिन ने खाते-  
पीते सब मोले नमक विण्डा दग्गने लगी ।

५ ध्यान था के जयचन्द-कालीदास में विनी योगी ने कमवल मारी । उमने कहा 'आग लेले' वन जाद ही आग

वरसने लगी एव वारह महीनो तक बहुत हैरान होना पडा ।

६. एग ईसि हणामाणे अणते जीवे हणइ ।

—भगवती ६।३४

एक अहिंसक ऋषि की हत्या करनेवाला एक प्रकार से अतन्त जीवो की हिंसा करनेवाला होता है ।



१ भिक्षावित्ती मुहावहा । —उत्तराध्ययन ३५।१५  
भिक्षावृत्ति मुख देनेवाली है ।

२. उपवासात् पर भैक्ष्यम् । —वशिष्ठस्मृति  
मर्यादानुसार की हुई भिक्षा से जीवन का निर्वाह करना  
उपवास से भी बढकर है ।

३. धीरा ह्य भिक्षायरिय चरति ।  
—उत्तराध्ययन १४।३५

धीर पुन्य ही भिक्षाचर्या का अनुसरण करते हैं ।

४ सव्व मे जाड्य होई, णत्थि किञ्चि अजाइय ।  
—उत्तराध्ययन २।२८

साधु की हृत् एत वस्तु मानी हुई होती है, बिना मानी कुछ  
भी नहीं होती ।

५. अहो ! जिणेहि असावज्जा, वित्ति साहूण देमिना ।  
—दशरत्नान्दि ५।१।६८

आश्चर्य है कि भगवान ने साधुओं की भिक्षावृत्ति पापग्रहित  
कही है ।

८ अणवज्जेसणिज्जस्स, गिण्हणा अवि दुक्कर ।

—उत्तराध्ययन १६।२७

निरवद्य एव निर्दोष भिक्षा का ग्रहण करना भी दुष्कर है ।

७ अकप्पिय न गिण्हज्जा, पडिगाहिज्ज क्कणिय ।

—दशवैकालिक ५।२।२७

साधु आत्मनोप-सदोष वस्तु नहीं ले एव कल्याणीय ग्रहण करे ।

८ एकान्न नैव भोक्तव्य, बृहस्पतिसमादपि ।

—अग्निस्मृति

साधु को मदा एक ही कुल का भोजन नहीं लेना चाहिए, चाहे वह कुल बृहस्पति जैसों का भी क्यों न हो ।

९. अनग्निरनिकेत स्याद्, ग्राममन्तार्थमाश्रयेत् ।

—मनुस्मृति ६।४३

मुनि अग्नि का स्पर्श न करे, घर में न रहे, मात्र भिक्षा के लिए ग्राम में जाये ।

१०. समणेण भगवया महावीरेण, समणाण निग्गयाण

नवकोडीपरिनुद्धे भिव्वे पण्णत्ते, तं जट्टा—न हण्णइ,

न ह्ण्णवेड, ह्ण त नाणुजाणेड । न पयड, न पयावेड

पयत नाणुजाणइ । न किणइ, न किणावेड, किणन

नाणुजाणइ ।

—त्थानाग ६।६८१

समण भगवात् प्रतापीर ने श्रमण-निर्णयो के लिए नवकोडि-  
परिनुद्ध भिक्षा नहीं ले—साधु आहार जादि के लिए न वो  
हिंसा करता, न कल्याण और न करने हुए का अनुमान

भाग तीशा झोठक

करना । न स्वयं बाहार आदि पकाना, न पकवाना और न पकानेवाले का अनुमोदन करता, न स्वयं भोजन आदि खरीदता, न खरीदवाता और न खरीदनेवाले का अनुमोदन करता ।

११ उच्च-नीच-मज्जिमकुले अडमाणे ।

—अतष्टुद्दशावर्ग ६, अ० १५

इन्द्रभूति मुनि ऊँच-नीच-मध्यम कुल में परीक्षण करते हुए ।

१२ जायाए घाममेमिज्जा, रमगिद्धे न मिया भिदजाए ।

—उत्तराध्ययन ८।११

नयमयाग तो निभाने के लिए मुनि को जाहान की गवेपणा नहीं करनी चाहिए ।

१३ अदीणो वित्तिमेसिज्जा ।

—इज्जतानिक ५।२।२६

नाहु हा निद्वृत्ति में आवश्यक वस्तुजा की गवेपणा करनी चाहिए ।

१४ नाभुत्ति न मज्जिजा, अलाभुत्ति न मोएज्जा ।

—आचाराग २।१।१४-११५

नाहु तो उष्टवन्तु के निभाने पर इन्निमान नहीं करना चाहिए और न निभाने पर जोर नहीं करना चाहिए ।

१५. अलाभे न विपादी न्या-त्ताभे चैव न हूपेत्तु ।

—मनुस्मृति ६।१७

निष्ठा न निभाने पर विपाद न करे एवं निभाने पर हर्ष न मनाये ।



१६. लद्धे पिण्डे अलद्धे वा, णाणुत्तप्पेज्ज पडिए ।

—उत्तराध्ययन २।३०

आहार मिलने या न मिलने पर बुद्धिमान साधु सेद न करे ।

१७. अज्जे वाह ण लब्भामि, अवि लाभो सुए सिया ।

—उत्तराध्ययन २।३१

आहार आदि न मिलने पर साधु विचार करे की मुझे आज  
आहार नहीं मिला तो सभवत कल मिल जायेगा ।

★

१. छव्विहा गोयरचरिया पण्णत्ता, त जहा—पेडा, अद्धपेडा, गोमुत्तिया, पतगवीहिया, सबुक्कवट्टा, गतुपच्चागया ।

—त्थानाग ६।५१४

छ प्रकार की गोचरी कही है—(१) पेडा (२) अर्धपेडा, (३) गोमूत्रिका, (४) पतङ्गवीथिका, (५) शम्बुनावता, (६) गतप्रत्यागता ।

(उत्तराध्ययन ३०।१६ में भी यह वर्णन है)

२. त्रिधा भिक्षपि तत्राद्या, सर्वमपत्करी मता ।

द्वितीया पौरुषघ्नीस्याद्, वृत्तिभिक्षा तथान्तिमा ॥

—हितोपदेश २।२०

भिक्षा तीन तरह की होती है—

(१) सवनपत्करी—साधु को निदोष वस्तु देना ।

(२) पौरुषघ्नी—साधु को नदोषवस्तु देना ।

(३) वृत्ति—अन्धे, बहरे आदि को कुछ देना ।

★

१. पुरथो जुगमायाए, पेहमाणो महि चरे ।

वज्जतो वीयहरियाइ, पाणे य दगमट्टिय ॥

—दशवैकालिक ५।१।३

मुनि युगमात्र भूमि को देखता हुआ मचित्तबीज, हरित, द्वीन्द्रियादि प्राणी, जल और मिट्टी से वचता हुआ चले ।

२. दवदव्वस न गच्छेज्जा, भासमाणो य गोयरे ।

हसतो नाभिगच्छेज्जा, कुल उच्चावयं सया ।

—दशवैकालिक ५।१।४

दवदवाहट करता हुआ, दातें करता हुआ एव हसता हुआ न चले ।

३. तहेवुच्चावया पाणा, भत्ताट्ठाए समागया ।

त उज्जुय न गच्छिज्जा, जयमेव परवकमे ॥

—दशवैकालिक ५।१।७

हन-वाय आदि पक्षी दान चुरा रहे हो तो मुनि उनके बीच में से न निकले । उन्हें भय न हो, उम प्रकार नरनपूर्यंक्त जाये ।

४. न चरेज्ज वाने वासते, महियाए वा पउत्तिए ।

महावाए व वायन्ते, तिरिन्धि सपाउमेणु वा ॥

—दशवैकालिक ५।१।८

मुनि वृष्टि वरसते समय, ओम पडते समय, जोर से हवा—  
आधी चलते समय एव अल आदि नूटम जीव गिरते समय  
गोचरी न जाय ।

५. समण माहण वावि, किविण वा वणीमग ।  
उवसकमत भत्ताटठा, पाणट्ठाए व मजए ।  
तमइवकमित्तु न पविसे, न चिट्ठे चक्खुगोवरे ।  
एगतमवडकमिन्ना, तत्थ चिट्ठिज्ज मजए ॥

—दशवर्षातिक ५।२।१०-११

धमण—ग्राहण, कृपण एव निम्नी जादि वस्र-पानी की  
प्राप्ति के निम पत्ते गृह्ण के घर में जौ हौ तो उन्हें लाय  
कर घर में प्रवेश न करे तथा दाना जीव भिक्षुओ की दृष्टि  
पटे, बरौ घण न रहकर एतान्त में टहने ।

६. गोवरगपविट्ठो य, न निसोड्ज्ज कत्थउ ।  
कह च न पवचिज्जा चिट्ठिजाण व मजए ॥

—दशवर्षातिक ५।२।१०

गोचरी गत हुए मुनि (विशेष कारण के निम्ना) गृह्ण के  
घर में न के जोर न गत गत धमकता रहे ।

७. नवणानणत्थ वा, भन्न पाण व मजए ।  
वदिस्सम न कुप्पिजा, पच्चकमे विव दीनओ ॥

—दशवर्षातिक ५।२।१०

पाण, जामन, पण्य, अन्न जीव पानी प्रायश्च नामक पने दीय  
रहते, फिर भी यदि गता न रहे तो नाहु उन पर पाण  
न रहे ।

८ निट्ठाण रसनिज्जूढ, भद्दग पावग ति वा ।  
पुट्ठो वा वि अपुट्ठो वा, लाभालाभ न निद्दिसे ॥

—दशवैकालिक ८।२२

आहार मरल मिला या नीरस मिला, अच्छा मिला या बुरा मिला तथा मिला या नहीं मिला । माधु को यह आहार सम्बन्धी बात पूछने पर या बिना पूछे गृहस्थ के आगे नहीं कहनी चाहिए ।

९. कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे ।  
अकाल च विवज्जित्ता, काले काल समायरे ॥४॥  
अकाले चरसी भिक्खु, काल न पडिलेहसि ।  
अप्पाणं च किलामेसि, सनिवेस च गरिहसि ॥५॥

—दशवैकालिक ५।१

माधु भोजन बनने के समय गोचरी जाए एव व्यतसर वापिस आ जाए । अकाल का त्याग करके सारा काम यथा-समय करे । हे मुन ! यदि तू असमय भिक्षा के लिए जायेगा एव समय का ध्यान न रखेगा तो आहार आदि न मिलने से दुखी होगा एव द्वेषवश गाव के लोगों की निन्दा करेगा ।

१० अप्पे सिया भोयणजाए, बहुउज्झयधम्मिए ।  
दित्थिय पडियाडक्खे, न मे कप्पई ताग्गि ।

—दशवैकालिक ५।१।७४

(नीताफल—इक्षुगुण्ड आदि) जिन फलों में म्यान योग्य वस्तु थोड़ी हो और फेंकने मात्रक अधिक हो, ऐसे फल दत्तार देना चाहे दो माधु कर कि तमी वस्तु मुझे नहीं कल्पती ।

११ विणएण पविसित्ता, सगाने गुरुणो मुणी ।  
हरियावहियमायाय, आगओ य पडियकमे ।

—दशवैकालिक ५।१।८८

गोचरी करके अपने स्थान में प्रवेश करते समय मुनि "मत्यएण वदामि निमहिया—निनहिया" ऐसे सविनय बोले । फिर गुरु के समीप आकर इरियावहिय पढिक्कमे एव गोचरी में लगे हुए दोषों की आलोचना करे ।

१२. एककाल चरेद्धूक्ष, न प्रसज्जेत विस्तरे ।

भैक्षे प्रसक्तो हि यति-विषयेष्वपि सज्जति ।

विधूमे सन्नमुसले, व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ।

वृत्ते शरावसपाते, भिक्षा नित्य यतिश्चेरत् ।

—मनुस्मृति ६।१५-१६

एक बार भिक्षा करे, अधिक न करे । अधिक खाने में लीन साधु स्त्री आदि के विषयों में आसक्त हो जाता है ।

रसोई का घर्षा एव मुमलों में अन्न कूटने का शब्द बन्द हो जाने पर चूल्हे की आग गुप्त जाने पर, गृहस्थों के भोजन कर चुजने पर तथा अवशिष्ट भोजन को पात्र में रख देने पर मुनि भिक्षा ग्रहण करें ।

१३ गोचरी सम्बन्धी ४२ दोष—

आहाकम्मुट्टेसिय, पूडकम्मे य मीसजाए य ।

ठवणा पाहुडियाए, पाओदर कीत पामिच्चे ॥६२॥

परिसहिय अभिहूडे, उट्ठिभन्न मालोहूडे उ य ।

अच्छिज्जे अणिसिट्ठे, वज्जोवरए य सोलनमे ॥६३॥

धा ३ दुडे निमिन्ने, आजीव वणोमणे तिगिच्छा य ।

तोहे माणे माया, लोभे य हवति दन एए ॥४०८॥

पुत्तिपत्तानगए, विज्जा मने य चृण्ण-जोगे य ।

उप्पासणाउ-दासा, सोलनमे मूलकम्मे य ॥४०९॥

मकिय मन्निखय निखित्त, पिहिय साहरिय दायगुम्मिस्से ।

अपरिणय नित्त छड्डिय, एसणदोसा दस हवति ॥

—पिण्डनिर्गुत्ति

माद्यु को आहार-पानी को एषणा करते समय गवेपणा व ग्रहणपणा के ब्यानील दोषों का वर्जन करना चाहिए ।

गवेपणा के बलीम दोष उद्गम और उत्पादन की अपेक्षा में दो भागों में विभक्त है । उद्गम के सोलह दोषों का निमित्त गृहस्थ (बेनेवाला) होता है और उत्पादन के सोलह दोषों का निमित्त ग्राह्य (लेनेवाला) होता है ।

सोलह उद्गम दोष —

- |                 |                  |
|-----------------|------------------|
| (१) आधाकर्म,    | (२) औद्देशिक     |
| (३) पूतिकर्म,   | (४) मिश्रजात     |
| (५) स्थापना     | (६) प्राभृतिका   |
| (७) प्रादुर्करण | (८) क्रीत        |
| (९) प्रामित्यक  | (१०) परिवर्तित   |
| (११) बन्धादृत   | (१२) उद्भित      |
| (१३) मालापहृत   | (१४) आच्छेद्य    |
| (१५) अनिमृष्ट   | (१६) अध्यवपूरक । |

सोलह उत्पादनदोष—

- |                             |                         |
|-----------------------------|-------------------------|
| (१) धात्रीपिण्ड             | (२) दूतीपिण्ड           |
| (३) निमित्तपिण्ड            | (४) आजीवित्तपिण्ड       |
| (५) वर्नापण पिण्ड           | (६) निमित्तपिण्ड        |
| (७) क्रोधपिण्ड              | (८) मानपिण्ड            |
| (९) मायापिण्ड               | (१०) लोभपिण्ड           |
| (११) इर्दपण्थात् मन्तवपिण्ड | (१२) विज्ञाप्रयोग       |
| (१३) मन्त्रप्रयोग           | (१४) पूर्णप्रयोग        |
| (१५) योगप्रयोग              | (१६) मूर्तरुमं प्रयोग । |

ग्रहणवर्षणा के दस दोष —

गवेषणा के अनन्तर आहार आदि ग्रहण करते समय माधु को निम्नोक्त दस दोषों का परिहार करना आवश्यक है—

(१) णकित, (२) त्रक्षित, (३) निक्षिप्त (४) पिहित, (५) नहत,  
(६) दातृकर्म, (७) उन्मिश्र, (८) क्षपणित, (९) लिप्त,  
(१०) छदित ।

(दयालील दोषों का विवेचन “चारित्रप्रकाश पु ज २, प्रश्न १५” में किया गया है ।)

✽



१ पंत लूह सेवति, वीरा सम्मतदसिणो ।

—आचाराग २।६

सम्यग्दर्शी वीरपुरुष नीरस और सूक्ष्म आहार का सेवन करते हैं ।

२. तित्ताग व कडुअ व कसाय, अविल व महुर लवण वा ।

एयलद्धमण्णत्थपउत्ता, महुघय व भु जिज्ज मजए ॥

—दशर्वकलिफ ५।१।६७

तीखा, कडुवा, खट्टा, मीठा तथा घारा किसी भी प्रकार का आहार जो शान्त्रोक्त विधि से प्राप्त हुआ है, उसे मधु-वृत के समान मानकर नाधु को नमभाव से खाना चाहिये ।

३. सेभिकखु वा भिकखूणी वा असण वा पाण वा खाडमं वा

साडम वा आहारेमाणे णो वामाओ हणुयाओ दाहिण

हणुय सचारेज्जा आसाएमाणे । दाहिणाओ वा हणुयाओ

वाम हणुय णो सच्चारेज्जा आमायमाणे । ने अणामाय-

माणे लाघविय आगममाणे तवे से अभिसमन्नागाभवत् ।

—आचाराग ८।६

नाधु अथवा साधु की अगनादिक का आहार करने नमय न्याय लेने के लिए उस आहार को बायी दाह से दाहिनी दाह की ओर न ले जाये और दाहिनी दाह में बायी दाह की ओर न

ने जाये । स्याद न लेने से कर्मों का हल्कापन होता है एव तपस्या होती है ।

४ अप्यपिडासि पाणामि, अप्य भासेज्ज सुव्वए ।

—सूत्रकृताग ८।२५

सुव्रती मुनि अल्प खाए, अल्प पीये और अल्प बोले ।

५. मिय कालेण भवच्चए ।

—उत्तराध्ययन १।३२

समय होने पर भी नाशु को परिमित भोजन करना चाहिए ।

६ तथा भोत्तव्व जहा से जायामाता य भवति,

न य भवति विव्वभमो, न भसणा य धम्मस्स ।

—प्रश्नव्याकरण २।४

ऐसा हित-मित भोजन करना चाहिए, जो जीवनयात्रा एव नयमयात्रा के लिए उपयोगी हो सके और जिसमें न किनी प्रकार का विश्रम हो और न धर्म की उन्नति हो ।

७ जे भिवग्गू आयरिय-उव्वज्जाएहि अदिन्न आहार आहारेउ

वाट्ठारत्त वा साउज्जइ ।

—नीशीय ४।२२

जो नाशु, जानाव-उपाध्याय का बिना दिया अर्थात् उन्हें पूरे बिना व्यस्त जे ना करते हुए वा नमस्त करे तो उसे अनुमानित प्रायश्चित्त वाता है ।

८ अमविभागी न हु तस्म मोक्खो ।

—दशर्यकानिक ६।२।२३

नाशी मुनियों को किन्मा दिते बिना पाहोगः का उपयोग करनेवाले मुक्ति का मोक्ष नहीं मिलता ।

९ इणरत्त एवाहिम ने एक फकीर ने पूछा—सच्चा मत कौन है ?

फकीर—मिला तो खाया, नही तो मतोप ।

इब्राहिम—ऐसे तो कुत्ते भी होते हैं ।

फकीर—तो ?

इब्राहिम—मिला तो वाट खाया, नही तो मतोप ।

१० जे भित्खू अन्नउत्थिय वा गारत्थिय वा असण पाण खाइम वेड, देयत वा साइज्जड ।

—निसीत्र १५।७८

जो माघु अन्यतीथिक वा गृहस्थ को असन आदि दे या देते हुए को अच्छा समझे तो उने चातुर्मानिक प्रायश्चित्त आता है ।



## आहार किसलिए ?

१७

१. वायुगुत्ते सया वीरे, जायामायाड जावए ।

—आचागग ३।३

आन्मगुप्प वीरपुरुष नयमयाथा के निर्वाहार्थ आवश्यकता-  
मान आहार से जीवन वापन करे ।

२. भारस्स जाया मुणि भु जएज्जा ।

—सूत्रकृताग ७।२६

मुनि को केवल नयमयाथा से निभाने के लिए आहार करना  
चाहिए ।

३. अलोल न रसे गिद्धे, जिब्भादने अमुच्छिण्ण ।

न रमट्ठाए भु जिज्जा, जवणट्ठाए महामुणी ॥

—उत्तराध्ययन ३५।१७

बोधुपत्तारहित, रसगृद्धिरहित, जिह्वेन्द्रिय को दमन करने-  
वाला एक भोजन-रसह की मूर्च्छा में रहित महामुनि स्वाद  
के लिए भोजन न करे, किन्तु नयमयाथा का निर्वाह करने  
के लिए णरे ।

४. नयम भान-वहणट्ठाए चित्तमिद पन्नगभूएण ।

अप्पाणेण आहारमाहारेड ।

—मगवनी ७।१

नाशु-माधवी नयमभार का निर्वाह करने के लिए चित्त के  
नश की तरह उदरकाश को प्रयोग न्याए ।

५. अक्खोवजणाणुलेवणभूयं सजमजायामायणिमित्त,  
सजमभारवहणट्ठयाए भुज्जेजा पाणधारणट्ठाए ।

— प्रश्नव्याकरण २।१

जैसे-गाडी चलाने के लिए पहियो के अजन (स्निग्ध-तेलादि) लगाया जाता है, घाव को ठीक करने के लिए उस पर लेप-मरहम लगाया जाता है, उसी प्रकार साधु को समययात्रा निभाने के लिए समय-भार को वहने के लिए तथा प्राणो को धारण करने के लिए भोजन करना चाहिए ।

६. शरीरं व्रणवद् ज्ञेय-मन्त च व्रणलेपनम् ।

व्रणशोधनवत् स्नान, वस्त्रं च व्रणपट्टवत् ॥

— चतुर्थ महाप्रश्न

शरीर व्रण-घाव के समान है, अतः उस पर मरहम का लेप है । स्नान व्रण को साफ करनेवाला है और वस्त्र व्रणपट्टी के तुल्य है ।

७. छहिं ठाणेहिं समणे निग्गथे आहारमाहारेमाणे णाड-  
वकमड, तं जहा—

वेयण - वेयावच्चे, इरियट्ठाए य सजमट्ठाए ।

तह पाणवत्तियाए, छट्ठ पुण धम्मचित्ताए ।

— स्यानाग ६ तथा उत्तराध्ययन २६।३३

छ कारणो मे आहार करता हुआ माधु प्रभु-आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता । वे कारण ये हैं— १. क्षुधात्रेदनीय को शान्त करने के लिये, २. वेयावृत्त्व-मेवा करने के लिये, ३. ईर्ष्यामिमांसा का पालन करने के लिए, ४. स्वयं पालन के लिये, ५. प्राण-रक्षा के लिए, ६. धर्म का निर्वहन करने के लिए ।

८ छहिठानोहि समणे निग्गथे आहार वोच्छिदे माणे  
गाडवकमई, त जहा—

आयके उवसग्गे, तितिकखणे वभचरेगुत्तीसु ।

पाणीदया तवेहेउ, सरीरवोच्छेयणट्ठाए ।

—स्यानाग ६ तथा उत्तराध्ययन २६।३५

छ कारणी से श्रमण-निग्रन्थ आहार का त्याग करता हुआ ।  
प्रभुआज्ञा का उल्लंघन नहीं करता । जैसे—१ रोग एवं  
उपमर्ग होने पर, २. ब्रह्मचर्य का पालन न कर सकने पर,  
३ जीवदया न पल सकने पर ४. तपस्या करने के लिए  
५ अनगनादि द्वारा शरीर छोड़ने के लिए ।

९. शरीर का परिवहन करने में ग्लानि होने लगे, तब साधु  
को चतुर्थ-पष्ठ आदि तप करके आहार को घटाने लग  
जाना चाहिए, अर्थात् सलेखना करनी चाहिए ।

—आचाराग ८।१



१. मुसाणे सुन्नगारे वा, ख्वखमूले व एगओ ।  
 पइरिक्के परकडे वा, वास तत्याऽभिरोयए ॥६॥  
 फासुयम्मि अणावाहे, इत्थीहि अणभिद्दुए ।  
 तत्थ सकप्पए वास, भिक्खू परमसजए ॥७॥  
 न सय गिहाइ कुविज्जा, नेव अन्नेहि कारए ।  
 गिहकम्मसमारम्भे, भूयाण दिस्सए वहो ॥८॥

—उत्तराध्ययन ३५

साधु श्मशान, सूनाघर, वृक्ष के नीचे अथवा परकृत (गृहम्य ने जो अपने लिए बनाया) एकान्तस्थान में एकाकी रहना पसंद करे ॥६॥

जो म्यान प्रामुक हो, किर्नी को पीडाकारी न हो, एव जहाँ मित्रयो का उपद्रव न हो, परम समयी साधु उम स्थान में निवास करे ॥७॥

साधु स्वयं घर आदि न बनाये और दूसरो में न बनवाये, क्योंकि गृह आदि कार्य के ममारम्भ में प्राणियों की हिंसा प्रत्यक्ष दिखाई देती है ॥८॥

भाग चौथा कोष्ठक

मणोहर चित्तहर, मल्लधूवेण वासिय ।  
सकवाड पडुसुल्लोय, मणसा वि न पत्यए ॥

—उत्तराध्ययन ३५।४

मुनि ऐसे आश्रय की मनसे इच्छा न करे, जो मनोहर हो,  
जिनमें घृणित निग्रह है, जो माना और धूप ने सुगन्धित हो,  
कवाड महित हो, व श्वेतचन्द्रवेवाला हो ।





१. तिहिं ठाणेहिं वत्य धारेज्जा, त जहा—हिरिवत्तिय दुगु छावत्तिय परीसहवत्तिय ।  
—स्वानांग ३।३।१७१

साधु को तीन कारणों से वस्त्र पहनने चाहिए—सयम लज्जा की रक्षा के लिए, लोगों की घृणा से बचने के लिए तथा शीत-उष्ण एवं दश-मशकादि के परीपह से आत्मरक्षा करने के लिए ।

२. कप्पइ निरगथाण वा निरगंथीण वा पच्च वत्थाडं धारेत्ताए वा परिहरित्ताए वा, त० जगिए, भंगिए, साणए, पोत्तिए, तिरीडपट्टए ।

—स्वानांग ५।३।४४५

साधु-साध्वी पांच प्रकार के वस्त्र धार सकते हैं एवं पहन सकते हैं—(१) ऊन के (कबलादि) (२) रेशम के (३) सज के (४) कपास के (५) तृण-घास व वृक्ष की छान के ।

३. साधु-साध्वियों को महामूल्य वस्त्र नहीं कल्पता ।

—आचाराग धृत २ अ० ५ उ० १

४. साधु-साध्वियों को वस्त्र लेने के लिए अर्घ्ययोजन से आगे जाना नहीं कल्पता ।

—आचाराग धृत २ अ० ५ उ० १

५ कप्पड़ निग्गथाण वा निग्गथीणं वा पच्च रयहरणाइ  
धारित्तए वा परिहरित्तए, वा ।

—त्यानांग ५।३।४४६

साधु-साध्विया पाच प्रकार के रजोहरण (ओषा) रस सकते  
हैं—ऊन के, ऊँट के लोम के, सण के, नरम घास के और  
कूटी हुई मूज के ।



१. से भिक्खु वा भिक्खुणी वा अभिक्खेज्जा पायं एसित्ताए ।  
सेज पुणपायं जाणेज्जा, त जहा — अलावुयपाय वा, दारुपायं  
वा मट्टियापाय वा . . अयपायाणि वा तउयपायाणि  
वा . . . नो पडिग्गाहेज्जा ।

—आचारांग श्रुत २ अ० ६ उ० १

साधु-साध्विया यदि पात्र की गवेषणा करना चाहे तो वह तुवे के, काष्ठ के और मिट्टी के—ऐसे तीन प्रकार के पात्र ग्रहण करे। तथा लोह, तावा, मीना, चादी, मोना, पत्थर, रत्न आदि के पात्र ग्रहण न करे।

२. अलावु-दारुपात्रं च, मृन्मयं वै दल तथा ।  
एतानि यतिपात्राणि, मनु स्वायभुवोऽन्नवीत् ।

—मनुस्मृति ६।५४

स्वायभुव-मनु ने साधुओं के लिए निम्नलिखित पात्रों का विधान किया है—तुम्बी का पात्र, लकड़ी का पात्र, मिट्टी का पात्र और वृक्ष की छाल का पात्र ।

३. परमद्भजोवण-मेराए पायपडियाए णो अभिघारेज्जा  
गमणाए ।

—आचारांग श्रुत २ अ० ६ उ० १

पात्र लेने के लिए साधु आधा योजन से आगे जाने की इच्छा न करे ।

चौथा भाग चौथा कोष्ठक

४ तेषामद्भिः स्मृतं शौचम् ।

—मनुस्मृति ६।५३

तुवा आदि के पात्रों की शुद्धि जल से मानी गई है ।

५. सौवर्ण-मणिपात्रेषु, कास्य-रौप्यायसेषु च ।

भिक्षा दद्यान्न सर्वज्ञो, ग्रहीता नरक व्रजेत् ॥

—विष्णुपुराण खण्ड २ अ० १३२

मोना, रत्न, कासी, चादी और लोहे के पात्रों में साधु को भिक्षा नहीं देनी चाहिए—इन पात्रों में भिक्षा लेनेवाला नरक में जाता है ।



- १ वहता पाणी निरमला, पडा गँधीला होय ।  
साधु तो रमता भला, दाग न लागे कोय ॥  
— राजस्थानी दोहा
२. ए रोलिंग स्टोन गेदर्स नो मोस । —अंग्रेजी कहावत  
♦ वरे सगे गर्दा नरोयद नवात । —पारसी कहावत  
रमता राम साधु वदनाम नहीं होता ।
- ३ ग्रीष्म-हेमन्तकान् मासा-नष्टौ प्रायेण पर्यटेत् ।  
दयायै सर्वभूताना, वर्षास्वेकत्र सवसेत् ॥  
—मनुस्मृति  
गर्मी-सर्दी के आठ महीनों में साधु प्रायः पर्यटन करे एवं  
जीवों की दया के लिए वर्षा-ऋतु में एक ही स्थान पर रहे ।
४. अष्टौ मासा विहारस्य, यत्तीना सयतात्मनाम् ।  
एकत्र चतुरोमासान्, वार्षिकान्निवसेत् पुनः ॥  
—मत्स्यपुराण  
नवमी साधुओं के लिए आठ महीने विहार के हैं एवं वर्षाऋतु  
के चार महीने एक स्थान में निवास करने योग्य हैं अतः  
उम समय उन्हें एक ही स्थान में रहना चाहिए ।

५. जीवमालाकुले लोके, वर्षास्वेकत्र सवसेत् ।

—अग्निस्मृति

वर्षा-ऋतु में पृथ्वी नाना प्रकार के जीवों में परिपूर्ण हो जाती अतः साधु उम समय एक जगह ही रहें ।

६. नोकप्पइ निग्गयाण वा निग्गयीणं वा ।

वासावासासु चरित्तए ।

—आधाराग श्रुत २ अ० ३ उ० १

साधु-साध्वी को वर्षा-ऋतु में विहार करना नहीं कल्पता । विशेष कारणों की स्थिति में कर भी सकते हैं । वे कारण निम्नलिखित हैं—

७. असिवे ओमोयरिए, रायदुट्ठे भए व गेलन्ते ।

आवाहादिएसु व, पचसु ठाणेषु रीएज्जा ॥

—अग्निघान राजेन्द्रकोष भाग ६, पृष्ठ १२६०

(१) शत्रु राजा का उपद्रव होने पर, (२) आहार न मिलने पर (३) राजा का द्वेष होने पर, (४) चोर आदि के भय से, (५) ग्लान साधु-साध्वी की सेवा करने के लिए—इन पाँच कारणों से साधुवर्षा ऋतु में विहार कर सकता है ।

८. नो कप्पइ निग्गयाण वा निग्गयीण वा पढमपाउसंसि

गामाणुगाम दुइज्जित्तए । पंचहि ठाणैहि कप्पइ, त०

णाणट्ठयाए, दत्तणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए, आयरिय-

उवज्जाए वा मे विनु भेज्जा, आयरिय-उवज्जायाण वा

वहिया वेयावच्चकरणयाए । —स्यानाग ५।२।४१३

साधु-साध्वी प्रथम वर्षाकाल में एक गाँव में दृमरे गाँव को

विहार नहीं कर सकते, किन्तु पाँच कारणों में विहार कर

सकते हैं—ज्ञान के लिए, वर्शन के लिए, चारित्र्य के लिए, आचार्य-उपाध्याय के मरणासन्न होने पर तथा रोग आदि की परिस्थिति में उनकी सेवा करने के लिए ।

६. जहाँ स्वाध्याय-भूमि एवं स्यडिल-भूमि आदि शुद्ध न हो, वहाँ साधु चातुर्मास न करे ।

—आचाराग श्रुत अ० ३ उ-१



- १ चउण्हं खलु भासाण, परिमखाय पण्णव ।  
 दुण्ह तु विणय सिक्खे, दो न भासिज्ज सव्वसो ॥१॥  
 बुद्धिमान मुनि सत्य, असत्य, मिश्र, व्यवहार—इन चारों भाषाओं को जानकर दो—सत्य एव व्यवहार द्वारा तो विनय नीके किन्तु असत्य और मिश्र—ये दोनों भाषाएँ सर्वथा न बोले ।
२. असच्चमोन सच्च च, अणवज्जमकककस ।  
 समुप्पेहमसंदिद्ध, गिर भासिज्ज पण्णव ॥३॥  
 प्रज्ञावान् मुनि व्यवहार एव सत्य भाषा भी निरवद्य, कोमल एव सदेह रहित हो, वही सोच-विचार कर बोले ।
- ३ तम्हा गच्छामो वक्खामो, अमुग वा ण भविस्सड ।  
 अह वा ण करिस्सामि, एसो वा ण करिस्सइ ॥ ॥  
 हम जाएंगे, हम बोलेंगे हमारा बमुक्त द्वारं हो जायेगा, मैं वह फरौंगा, वह व्यक्ति यह काम करेगा—इन प्रकार निश्चय-चारिणी भाषाएँ साधु न बोले ।
- ४ जमट्ठं तु न जाणिज्जा, एवमेय ति नो वए ॥५॥  
 भूत-भविष्यत् एव वर्तमान राज-मन्त्रिणी जिम जर्द को न जानता हो, उसे यह 'दस प्रकार ही है,' ऐसा न बरै ।
५. जग्घ मंता भवे न तु. एवमेय ति नो वए ॥६॥



भूत-भविष्यत् एव वर्तमानकाल-सम्बन्धी जिस विषय में शका हो जाये, उसे 'ऐसा ही है' ऐसा न कहे ।

६. सच्चा वि स न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो ॥११॥  
जिस से पाप लगता हो, ऐसी सत्यभाषा भी नहीं बोलनी चाहिए ।

७. तहेव काण काणत्ति, पडग पडगे त्ति वा ।  
वाहियं वावि रोगत्ति, तेण चोरे त्ति नो वए ॥१२॥  
इसी प्रकार काने को काना, नपु मक कां नपु सक, रोगी को रोगी एव चोर को चोर नहीं कहना चाहिए क्योंकि इस से सुननेवाले को दुःख होता है ।

८. अज्जिए पज्जिए वावि, अम्मो माउस्सियत्ति य ।  
पिउस्सिए भाइणेज्जत्ति, धूए णत्तु णिअत्ति य ॥  
हे दादी ! हे नानी ! हे परदादी ! हे परनानी ! हे मां !  
हे मौमी ! हे बुआ ! हे भानजी ! हे पुत्री ! हे पोती ! (रिश्तियों को इस प्रकार सांसारिक नामों से आमन्त्रित न करे, किन्तु उनके नाम-गोत्रादिक से बुलावे ।) इसी प्रकार पुरुषों को दादा ! नाना आदि नाम से न बुलावे ।

९. पंचिदिआण पाणाण, एस इत्थी अय पुम ।  
जाव ण न वियाणिज्जा, ताव जाउत्ति आलवे ॥१३॥  
पञ्चेन्द्रिय जीवों से दारे में—वह स्थी है—वह पुंस्य है—ऐसे जहाँ तक न जान लिया जाये, वहाँ तक यह कृत्ते गी जाति है, गाय की जाति है—ऐसे जानि शब्द का प्रयोग करना चाहिए ।

१०. नुकडित्ति मुपविकत्ति, मुच्छिण्णे मुह्ठे मटे ।  
सुनिट्ठिए सुलट्ठित्ति, सायज्ज वज्जए मुणी ॥१४॥

भोजनादि अच्छा बनाया, धेवर अच्छा पकाया, शाक आदि अच्छा छेदा, करेला आदि की कडवास का अच्छा हरण किया, मत्तु आदि में घी अच्छा भरा, बहुत अच्छा रस निष्पन्न हुआ तथा चावल आदि बहुत इष्ट हैं, मुनि ऐसी सावद्यभाषा न बोलें।

११. सुक्कीय वा सुक्कीय, अकिज्ज किज्जमेव वा ।

इम गिण्ह इम मु च्च, पणीय नो वियागरे ॥४५॥

यह माल अच्छा (मस्ता) खरीदा, यह अच्छा (नफे में) बेचा, यह बेचने योग्य है। इस माल को ले लो (महंगा होनेवाला है) और इसको बेच डालो (सस्ता हो जायेगा) ब्यापक के बारे में साधु इस प्रकार न बोलें।

१२. देवाण मणुयाण च, तिरियाण च वुग्गहे ।

अमुयाण जओ होउ, मा वा होउत्ति नो वए ॥५०॥

देवों, मनुष्यों एवं तिर्यञ्चों (पणु-पक्षियों) का आपस में विग्रह होने पर 'अमुक विजयी हो, अमुक की विजय न हो'—ऐसा वचन साधु न बोलें।

१३. वाओ वुट्ठ च सीउण्हं, खेम घाय मिवत्ति वा ।

कयाणु हुज्ज एयाणि, मा वा होउ त्ति नो वए ॥५१॥

वानु, वस्त्रात्, गर्दी-गर्मी, धौन (मनुष्यता के उपद्रव की शान्ति) नुभिध मिव (मर्दी लोग आदि की शान्ति)—ये सब होंगे सर्वात् सन्धी हों तो ठीक जसदा के सत्य न हो तो ठीक। ऐसा वचन साधु न बोलें।

१४. नरेव नावज्जणुसोगणी गिरा,

नरेव नावज्जणुसोगणी गिरा,

भूत-भविष्यत् एव वर्तमानकाल-सम्बन्धी जिस विषय में शका हो जाये, उसे 'ऐसा ही है' ऐसा न कहे ।

६. सच्चा वि स न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो ॥११॥  
जिस से पाप लगता हो, ऐसी सत्यभाषा भी नहीं बोलनी चाहिए ।

७. तहेव काण काणत्ति, पडग पडगे त्ति वा ।  
वाहिय वावि रोगत्ति, तेण चोरे त्ति नो वए ॥१२॥  
इसी प्रकार काने को काना, नपुसक को नपुसक, रोगी को रोगी एव चोर को चोर नहीं कहना चाहिए क्योंकि इस से सुननेवाले को दुःख होता है ।

८. अज्जिए पज्जिए वावि, अम्मो माउस्मियत्ति य ।  
पिउस्सिए भाडणेज्जत्ति, धूए णत्तु णिअत्ति य ॥  
हे दादी ! हे नानी ! हे परदादी ! हे परनानी ! हे माँ !  
हे मौसी ! हे बुआ ! हे भानजी ! हे पुत्री ! हे पोती ! (स्त्रियों को इस प्रकार सामाजिक नामों से आमन्त्रित न करे, किन्तु उनके नाम-गोत्रादिक से बुलावे ।) इसी प्रकार पुरुषों को दादा ! नाना आदि नाम से न बुलावे ।

९. पंचिदिआण पाणाण, एस इत्थी अय पुम ।  
जाव ण न वियाणिज्जा, ताव जाडत्ति आलवे ॥१३॥  
पञ्चेन्द्रिय जीवों के बारे में—यह स्त्री है—यह पुरुष है—इन्ने जहाँ तब न जान लिया जाये, यहा तक यह मुझे की जानि है, गान की जाति है—इन्ने जाति शब्द का प्रयोग करना चाहिए ।

१०. सुकटित्ति सुपयिकत्ति, सुच्छिण्णे मुह्डे मटे ।  
नृनिट्ठिए सुलट्ठित्ति, मावज्जं वज्जए मुणी ॥१४॥

भोजनादि अच्छा बनाया, घेवर अच्छा पकाया, शाक आदि अच्छा छेदा, करेला आदि की कडवास का अच्छा हरण किया, सत्तु आदि में घी अच्छा भरा, बहुत अच्छा रस निष्पन्न हुआ तथा चावल आदि बहुत इष्ट हैं, मुनि ऐसी सावद्यभाषा न बोले ।

११. सुक्कीय वा सुविककीय, अकिज्ज किज्जमेव वा ।

इम गिण्ह इम मुंच, पणीय नो वियागरे ॥४५॥

यह माल अच्छा (मन्ता) खरीदा, यह अच्छा (नफे से) बेचा, यह बेचने योग्य है । इस माल को ले लो (महंगा होनेवाला है) और इसको बेच डालो (सस्ता हो जायेगा) क्रयाणे के बारे में साधु इस प्रकार न बोले ।

१२. देवाण मणुयाण च, तिरियाण च वुग्गहे ।

अमुयाण जओ होउ, मा वा होउत्ति नो वए ॥५०॥

देवो, मनुष्यो एव तिर्यञ्चो (पशु-पक्षियो) का आपस में विग्रह होने पर 'अमुक विजयी हो, अमुक की विजय न हो'—ऐसा वचन साधु न बोले ।

१३. वाओ वूट्ठ च सीउण्ह, खेम धाय सिवत्ति वा ।

कयाणु हुज्ज एयाणि, मा वा होउ त्ति नो वए ॥५१॥

वायु, चरमात, सर्दी-गर्मी, क्षेम (शत्रुमेना के उपद्रव की शान्ति) मुभिक्ष शिव (मरी रोग आदि की शान्ति)—ये कब ऐति अर्यान् जल्दी हों तो ठीक अथवा ये नव न हो तो ठीक । ऐसा वचन साधु न बोले ।

से कोह-लोह-भय-हास - माणवो,  
न हासमाणे वि गिर वडज्जा ॥५४॥

—दशवैकालिक अध्ययन ७

उसी प्रकार सावद्य का अनुमोदन करनेवाले मदेह-गुक्त अर्ध-वाली, जांबोपघात करनेवाली—ऐसी भाषा साधु क्रोध, लोभ भ्रमवश अथवा डूमरो का हास्य करता हुआ भी न बोले ।

१५. ण लविज्ज पुट्ठो सावज्ज-ण गिरट्ठ ण मम्मय ।

—उत्तराध्ययन १।२५

साधु पूछने पर भी सावद्य निरर्थक वचन न बोले ।

१६. नक्खत्त सुमिण जोग, निमित्त मत्त-भेसज ।

गिहिणो त न आडक्खे, भूयाहिगरण पय ॥

—दशवैकालिक ८।५१

नक्षत्र, स्वप्नफल, वशीकरणादि योग निमित्त, मन्त्र और भेषज ये जीवहिंसा के अधिकरण हैं । अतः साधु इन सबका फलाफल गृहस्थ को न बताए ।

१७. तुम तुमंति अमणुन्न, सव्वसो त न वत्तए ।

—सूत्रकृतांग १।६।२७

'तू-तू'—जैसे अभद्र शब्द कभी नहीं बोलने चाहिए ।

१८. नो वयण फहस वडज्जा ।

—वाचारांग २।१।१६

कठोर-कटु-वचन न बोलें ।

१९. अणुचित्तिय वियागरे ।

—सूत्रकृतांग २।६।२५

जो कुछ बोलें—पहले विचार कर बोलें ।

२०. ज छन्न त न वत्तव्व ।

—सूत्रकृतांग १।६।२६

फिमी की कोई गोपनीय जैसी बात हो, तो वह नहीं कहनी चाहिए ।

ग भाग चौथा कोष्ठक

१ नो तुच्छए नो य विकत्यइज्जा ।

—सूत्रकृतांग १।१४।२१

साधक न किसी को तुच्छ (हलका) बताए और न किसी की झूठी प्रशंसा करे ।

२ निरुद्धग वावि न दीहइज्जा ।

—सूत्रकृतांग १।१४।२३

थोड़े से से कही जानेवाली बात को व्यर्थ ही लम्बी न करे ।

३ नाइवेल वएज्जा ।

—सूत्रकृतांग १।१४।२५

साधक आवश्यकता से अधिक न बोले ।

४ नो छायए नो वि य लूसएज्जा ।

—सूत्रकृतांग २।२४।१६

उपदेशक सत्य को कभी छिपाए नहीं, और न ही उसे तोड़-मरोड़ कर उपस्थित करे ।

## साधुओं के लिए कल्प-अकल्प

१. यज्ज्ञानशीलतपसा - मुपग्रहं च दोषाणाम् ।  
 कल्पयति निश्चयेन, यत्तत्कल्प्यमकल्पमवशेषम् ॥१४३॥  
 यत्पुनरुपघातकरं, सम्यक्त्वज्ञानशीलयोगानाम् ।  
 तत्कल्प्यमप्यकल्प्य, प्रवचनकुत्साकरं यच्च ॥१४४॥  
 किञ्चिच्छुद्ध कल्प्य, मकल्प्य स्यादकल्प्यमपि कल्प्यम् ।  
 पिण्ड. शय्या वस्त्रं, पात्र वा भेषजाद्य वा ॥१४५॥  
 देश कालं पुरुष-मवस्थानुपयोगशुद्धिपरिणामान् ।  
 प्रसमीक्ष्य भवति कल्प्य, नैकान्तात्कल्पते कल्प्यम् ॥१४६॥  
 तच्चिन्त्य तद्भाष्य, तत्कार्यं भवति सर्वथा यतिना ।  
 नात्मपरोभयबाधक-मिह यत्परतश्च सर्वाद्विम् ॥१४७॥

—प्रशमरति

जो ज्ञान, शील एव तप को पुष्ट करता हुआ दोषों का निग्रह करता है, निश्चय-दृष्टि में साधु के लिए वही कार्य कल्प्य (करने योग्य) है, शेष अकल्प्य है ॥ १४३ ॥

जो सम्यक्त्व, ज्ञान, शील एव योग का नाश करता है और वीतरागवाणी की निन्दा करनेवाला है, वह कार्य कल्प्य होने पर भी अकल्पनीय है ॥ १४४ ॥

साहचर-शय्या-वस्त्र-पात्र-औषधि आदि द्रव्य भी देण, माल, पुरुष, अयन्या, उपयोग, शुद्धि और परिणाम की अपेक्षा में ही कल्प के योग्य होने हैं, एतन्मदप ये नहीं ॥१४५-१४६॥

नाथु को वही सोचना चाहिए, वही बोलना चाहिए और वही काम करना चाहिए, जो इहलोक-परलोक में सदा स्व-पर-उभय बाधक न हो । ॥ १४७ ॥

२. आचेलवकुट्टे सिय, सिज्जायर-रायपिंड-किडकम्मे ।  
वयजेट्ठ-पडिक्कमणे, मास - पज्जोसवण - कप्पो ॥

—पंचास्तिफाय-विवरण १७ गाथा, ८-१०

शास्त्रोक्त आचार एव अनुष्ठानविशेष का नाम कल्प है । कल्प दस माने गए हैं—१ अचेतक, २ औट्टे गिक, ३ शय्यातरपिण्ड, ४ राजपिण्ड, ५ कृत्तिकर्म, ६ व्रतकल्प, ७ ज्येष्ठकल्प ८ प्रति-श्रमणकल्प, ९ मासकल्प, १० पर्युषणकल्प, इन दसों कल्पों को निश्चितरूप में पालनेवाले नाथु स्थितकल्पिक कहलाते हैं । ये प्रथम-अन्तिम तीर्थंकरों के समय में होते हैं । शय्यातर-पिण्ड, २ कृत्तिकर्म, ३ व्रत, ४ ज्येष्ठ—इन चार कल्पों को नियमितरूप में और दोष छ हो को दयानभव पालनेवाले नाथु अस्थितकल्पिक कहलाते हैं—ये महाविदेहक्षेत्र में तथा वार्त्त तीर्थंकरों के समय भग्न-ऐरावत क्षेत्रों में होते हैं ।

- ३ छ काप्परस पन्निमयू पण्णत्ता, त जहा—कुवकइए नजमन्म  
पन्निमयू १, मोह्निए सच्चवयणरत्त पन्निमयू २, चक्क-  
लीलए उत्तिवान्हियम्म पन्निमयू ३, तित्तपाए एणणा-  
गोवरम्म पन्निमयू ४, उच्छान्तिणए मुत्तिमन्म पन्निमयू  
५, भुज्जो-भुज्जो नियागज्जणे मोत्तवन्म पन्निमयू  
६, मन्थत्तव भगवत्ता अनियापत्ता पन्निमयू ।

—शुद्धकल्प ६।१२ तथा म्पानांग ६।५२६

नाथु के आचार का कल्प है अन्तेवाले नाथु अस्थितकल्पिक कहलाते हैं । इनमें छ कल्प हैं—१ मोहन्तिक, २ मोहन्तिक, ३, चक्कलील, ४ तीर्थंकर, ५, इत्यादिवाचिक, ६ विमानवाचिक ।



- (१) कौकुचिक—(शरीर,स्थान एवं भाषा द्वारा कुचेष्टा करने-  
वाना) साधु उग्रम का पलिमन्थु होता है ।
- (२) मौखरिक—(वाचाल एवं कटुभाषी) साधु मत्यवचन का  
पलिमन्थु होता है ।
- (३) चक्षुलोलुप—(चलते समय इधर-उधर देखनेवाला,  
स्वाध्याय या चिन्तन करनेवाला) साधु ईर्यासमिति का पलिमन्थु  
होता है ।
- (४) तित्तिणिक—(यथेष्ट आहारादि न मिलने पर टनटनाट  
करनेवाला) साधु एपणासमिति का पलिमन्थु होता है ।
- (५) इच्छालोभिक—(लोभवश वस्त्र-पत्रादि का सग्रह करने-  
वाला) निर्लोभितारूप मुक्तिमार्ग का पलिमन्थु होता है ।
- (६) निदानकर्ता—(चक्रवर्ती आदि की ऋद्धि का निदान करने-  
वाला) साधु सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र्यरूप मुक्तिमार्ग का  
पलिमन्थु होता है ।



१. एगमास परियाए समणे निग्गथे वाणमंतराण देवाण तेयलेस्स वीडवयइ ... .. वारसमासपरियाए समणे निग्गथे अणुत्तरोवाइयाण देवाण तेयलेस्स वीडवयई ।

—भगवती १४।६

एक मास का दीक्षित साधु व्यन्तर देवों के सुखों का व्यवश्रमण करता है अर्थात् उन से अधिक सुखी होता है । दो मास का दीक्षित अगुरेन्द्रवज्रित-भवनपतिदेवों के सुखों का, तीन मास का दीक्षित असुरशुमारदेवों के सुखों का, चार मास का दीक्षित ग्रह-नक्षत्रनाराक्षों के सुखों का, पाच मास का दीक्षित चन्द्र-सूर्य के सुखों का, छ मास का दीक्षित त्रयम स्वर्ग के सुखों का, सात मास का दीक्षित तीनरे-चौथे स्वर्ग के सुखों का, आठ मास का दीक्षित पाँचवे-छठे स्वर्ग के सुखों का, नवमास का दीक्षित सातवे-आठवे स्वर्ग के सुखों का, दस मास का दीक्षित न्यानरुदे-नानरुवे स्वर्ग के सुखों का, ग्यारहमास का दीक्षित छत्रेण (१३ वे २६ वे स्वर्ग तक) देवों के सुखों का और बारहमास का दीक्षित साधु अगुन्तरविमान—(२० व २६ वे स्वर्ग तक) निजामी देवों के सुखों का व्यवश्रमण करता है ।

२. साधु के लिए चार सुखशय्याएँ कही हैं—(१) शुद्धसयम पालना, (२) दूसरे की लट्ठि का न लेना, (३) काम-भोग का सर्वथा स्वाद न लेना, (४) वेदना को समभाव से सहना ।  
—स्थानांग ४।३।३२५

३. सन्यासी ने गरीब ब्राह्मण को पारस दिया । विस्मित लोगो ने पूछा, यह अमूल्य चीज आपने इसे कैसे दे दी ? ऋषि ने कहा—यह तो पारस (पावरस) है, मेरे पास तो साधुत्व का पूरा रस है ।



# साधुओं के वारह संभोग और उनका विच्छेद

दुबालसविहे नभोगे पणत्ते, त जहा—  
 उवही-मुय-भत्तपाणे, अजलीपग्गहे त्ति य ।  
 दायणे य निकाय य, अट्ठमुट्ठारोत्ति आवरे ?  
 किडकम्मस्स करणे, वेयावच्चकरणे उय ?  
 समोसरण मनिमिज्जा य, कहाए य पवघणे ?

—समवायाङ्ग १२

साधुओं के सम्मिलित अहार आदि व्यवहार को संभोग कहते हैं । वारह प्रकार के संभोग कहे हैं—१. उपधि-वस्त्र-पात्रादि माय लेना, २. विधियुक्त नृप पदना-पदाना, ३. आहार-पानी आदि का निमग्न्यन देना, ४. अपने वस्त्रादि देना, ५. पाया करना, ६. सेवा करना, ७. आने पर राज होना, ८. गदना ११. एक जानन पर माय बंटना, १२. विधियुक्त पान प्रहार तो तथा करना । पूर्वोक्तमयं साधुगिक साधु के नाम ही विष्णु आ नन्ते हैं ।

२. निहि टाणेहि नमणे निग्गधे माहम्मिय सभोड्यं  
 विमभोड्य कन्नेमाणे णात्तवत्तत्त जहा—तय वा दिट्ठ,  
 मड्ढस्स वा निग्गन्म, तन्न मोन आउट्टट्ठ, नउत्तं नो  
 आउट्टट्ठ ।  
 मोन ताणो ने माणु न सेगी माधम्मिय तो निग्गधोमी करया  
 दुय पदु-जाहा वा उत्तपत्त मही कन्ता । उय-उय दोय  
 वेया कन्ता उय-उय, विद्यवासी माणु ने गुणस्स गो-मोर्ष  
 वार सुय-वासी वर ।

—समाना ३१२

१. मग्ग कुसीलाण जहाय सव्वं, महानियंठाण वए पहेणं ।  
—उत्तराध्ययन २०।५१  
मुमुक्षु को कुशीलपुरुषों के मार्ग को छोड़कर महानिर्ग्रन्थों के मार्ग पर चलना चाहिए ।
२. एगओ निव्वर्ति कुज्जा, एगओ य पवत्तण ।  
—ऋषिभाषित १७  
साधक को चाहिए कि वह एक (असुभयोग) में निवृत्ति करे एवं एक (शुभयोग) में प्रवृत्ति करे ।
३. पहाय रांग च तहेव दोसं, मोह च भिक्खु सयय विववखणो ।  
मेरुव्व वाएण अकपमाणो, परीसहे आयगुत्ते महिज्जा ।  
—उत्तराध्ययन २१।२६  
विचक्षण एवं आत्मगुप्त साधु को राग, द्वेष एवं मोह को त्याग कर वायु में अकम्पित मेरु की तरह अग्लेन बनकर परिपक्वों को सहन करना चाहिए ।
४. तिहि ठाणेहि समणे णिग्गथे महानिज्जरे महापज्जवमाणे  
भवइ, तं कयाण अह अप्प वा वहु वा सुय अहिज्जिस्सामि ।  
कया णं अह एकल्लविहारपट्ठिम उवसपज्जिन्ताण विहार-  
त्तामि । कयाण अह अपच्छिममारणतियरात्तेहणा  
सूत्तणा झूसिए भत्त-पाणपडियाडक्खिए पादओवगए

कालमणवकखमाणे विहरिस्सामि । एव समणसा सवयसा  
सकायसा, पगडेमाणे निग्गथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे  
भवइ ।

—स्यानाग ३।४।२१०

तीन मनोरथों का चिन्तन करता हुआ ध्रमण-निर्ग्रन्थ महानिर्जरा-  
महापर्ययसान करता है । यथा—कव में थोड़ा-बहुत ध्रुत (ज्ञान)  
पखूं ? कव में एकलविहारी की प्रतिमा त्वीवार कर विचरु ?  
तथा कव में मारणन्तिक मलेग्रना-नयारा करके मरणकाल की  
इच्छा न करता हुआ स्थिरतापूर्वक विहार कर ?



- १ छती ऋद्धि तज निकले, धरे वैराग विशेष ।  
जोग तिका ही पालसी, अन्तर ऊँडो देख ॥ १ ॥  
काल-दुकाले वेचिया-भूख भखा लै भेख ।  
तिके जोग किम पालसी, अन्तर ऊँडो देख ॥ २ ॥
२. खावण मिलगई खीचडी, ओढण मिलगई सोड ।  
चेलो पूछे गुराजो ने, मोख आही के और ॥
- ३ साध-साध कहावे सहु, ज्यां घर वेटा ज्या घर वह ।  
ज्या घर ढाढा ज्यां घर ढोर, वै ही वोलावा वै ही चोर ॥
४. भेख लियो जग देखन कू पर,  
भेख की टेक सकै नहिं पाली ।  
किसीका रमावत छोकरा-छोकरी,  
किसी का चरावत केरडा-छानो ।  
जान-वरात मे सग चने जव,  
भात मे खात मगन की गाली ।  
नरसिंह के द्वारे पे बावो रह्यो,  
पर, बावो को बावो न हाली को हाली ।

—मायास्तोकसागर

५. मुनि मीन फारमी भणे, हुकारे खटकाया हूण ।  
अणवोल्या ही उद्यम करे, वोल्या तो वै जुल्म करे ।

- ६ वहन न मागै कापडों, डाण न मागे राज ।  
झोली टक्का न्यु भरी, लोक कहें महाराज ।
- ७ नाथा रै कित्ता सवाद, विलोया नही तो अण विलोया  
ही सही । —राजस्थानी पहावन
- ८ मन्चे सत अमली शीशे के समान आत्मिकरूप दिखा-  
कर कल्याण कर देते हैं और डोगी नाधु नाई की तरह  
नकली शीशा दिखाकर हजामत कर देते हैं ।
- ९ एक योगी योगविद्या से पानी पर चल कर आया । लोगों  
ने पूजा की । ज्ञानी-भक्त ने कहा—महाराज ! १२ वर्ष  
में आप ने सिर्फ दो आने की कमाई की है । नाव्याला  
नदी पार करने का दो आना किराया नेता है ।
१०. बुद्धिया के घर में विल्ली मर गई । टोकरी में रखकर  
चुपके में डालने गई । पीछे ने एक बीमार ऊट घर में  
आ घुना एव मर कर गिर पडा । उगी प्रकार गृहस्था-  
श्रम में धन-संपत्ति आदि का विल्ली जितना अभिमान है,  
उसे ढोउने के लिए नाधु देने, कितु वहाँ ऊट जितना  
ज्ञानादि का अभिमान आ गया । उन कण दिया  
जाए ?



१. संथार फलगं पीढ, निसिज्ज पायकवल ।

अप्पमज्जियमारुहइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥७॥

संस्तारक, फलक, आसन, निपद्या-स्वाध्यायभूमि आदि और पादपुच्छन—इन सब पर जो बिना प्रमार्जन किए बैठता है, वह पापीसाधु कहलाता है ।

पडिलेहइ पमत्ते, अवज्झइ पायकवल ।

पडिलेहणअणउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥६॥

जो वेपरवाही से पडिलेहन करता है, पाद-कवल को कहीं-कहीं रख देता है एवं पडिलेहन में वेपन्वाह रहता है, वह पापी-साधु कहलाता है ।

वहुमाई पमुहरी, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ।

असविभागी अचियत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥११॥

जो छल करनेवाला है, बिना बिनारे बोलनेवाला है, अहंकारी है, लोभी है, इन्द्रियो को बश में न रखनेवाला है, ममविभाग न करनेवाला है एवं अश्रीतिकारी-श्रोधी है, वह पापीसाधु कहलाता है ।

दुद्धदहीविगईओ, आहारेइ अभिक्खण ।

अराए य तत्रोकम्मे, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१५॥

—उत्तराध्ययन अध्यायन १७

जो दूध-दहीरूप विषय बार-बार खाता है एवं तपस्या में अरुचि रखता है, वह पापीमायु कहलाता है ।

२ जो पव्वइत्ताण महव्वयाइ,  
सम्म च नो फात्तयई पमाया ।

अणिग्गहप्पा य रसेमु गिद्धे,  
न मूलओ छिदड वघण से । ३६॥

जो माध बनकर महाव्रतो को अच्छी तरह नहीं पालता, इन्द्रियो को चम नहीं करता तथा रसों में मूढ़ रहता है, वह मूल में कर्म बन्धनों को नहीं छेद सकता ।

आउत्तया जस्म न अत्थिय कावि,  
इरियाइ भात्ताइ तहेमणाए ।

आयाणनिवगेव-दुगच्छणाए,  
न वीरजाय अणुजाइ कम्म ॥४०॥

जिनकी ईर्ष्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप और उत्सर्गमिति में किंचित् मात्र यत्ना नहीं है, वह मुक्ति कीरमार्ग का अनुसरण नहीं कर पाता ।

पुत्ते य मुट्ठी जह ने वानारे,  
अयत्तिए कूडकहावणे वा ।

रादासणी वेरत्तियण्णाने,  
अमहत्तए होड ह जाणएनु ॥४२॥

यमछात्री मुक्ति मार्ग में मुट्ठी एवं मोठों मोहन की तरह निर्यात होता है, वह ईश्वर के मार्ग में यत्ना करनेवाला वात्सल्य के बन्धन होता है जो यमराजों के मार्ग में जीवन्तोत्तरी मार्ग है। यमराज यमकी समस्त प्रजा ही हैं वे हैं ।

जे लक्षण सुविण पउंजमाणे,  
निमित्त - कोऊहलसपगाढे ।

कुहेडविज्जासवदारजीवी,  
न गच्छइ सरण तमि काले ॥४५॥

जो माधु लक्षण और म्रप्लो का शुभाशुभ फल बताना है, निमित्त-भूकपादि द्वारा भविष्य कहता है कौतूहल-मनान के लिए अभिमन्त्रित जल से स्नान करवाता है, तथा इन अस्त्य एव आश्चर्यकारिणी विद्याओं में अथवा हिंसादि आश्रवा से अपना जीवन बिनाता है, वह कर्म भोगने के समय किमी की धरण को प्राप्त नहीं होता ।

उद्देसियं कोयगड नियाग,  
न मुचड किचि अणेसणिज्ज ।

अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता,  
इहो चुओ गच्छइ कट्टु पाव ॥४७॥

—उत्तराध्ययन २०

जो साधु औद्देशिक, क्रीतकृत, नियतपिण्ड और अनेपणीय किचिन्मात्र भी पदार्यं नहीं छोड़ता, वह अग्निवत् मयभर्था होकर पापकर्म करने नरकादि गतिर्या में जाता है ।



## ३६ कंदर्पादि से लीन साधुओं की गति

१ कदप्प-कुक्कुर्याड, तह सील-महाव-हाम विगहाहि ।  
विम्हावेतो य पर, कदप्पभावण कुण्ड ॥२६४॥

जो साधु कदप-कामक्या की कुक्कुरा—भावभंगी और वाग्-  
विन्यास द्वारा हान्य उत्पन्न करना है तथा शील-निर्गम  
चेष्टा, स्वभाव, हास्य और विन्यासों द्वारा दूसरों को विमिश्र  
करता है, वह कदपी-भावना का आचरण करता है कदपी  
मरकर कदपी देवता (न्यग का भाग) होता है ।

२. मता जोग काउ, भूर्द्धकम्म च जे पउ जति ।

साय-रत्त-इद्धिहेउ, अभियोग भाटण कुण्ड ॥२६५॥

जो साधु माता, रत्त और इद्धि के लिए मत्प्रयोग एवं धर्म-रत्त  
(मन्त्रित भस्मादि का प्रयोग) करता है, वह अभियोगी  
भावना का आचरण करता है मता मरकर इन्द्र के या सौर  
देवता मरकर पत्नी का विन्यास का सुख मत्प्रयोग है ।

३ पाणस्त केवलीण, धम्ममायस्सिन्ध मघ-माहण ।

माउ अवन्नवाउ, किच्चिमिय भावण कुण्ड ॥२६६॥

जो साधु पाणस्त, केवलीण, धर्ममात्र, मघ की-  
साधुओं की निम्न करता है, वह किच्चिमिय-भावना का आचरण  
करता है अर्थात् मरकर किच्चिमिय देवता (मत्प्रयोग का  
से इच्छित सुख) प्राप्त है ।

४. अणुवद्धरोसपसरो, तह य निमित्त मि होइ पडिसेवी ।  
एएहि कारणेहि, आसुरिय भावण कुणइ ॥२६७॥

— उत्तराख्ययन ३६

जो साधु निरन्तर गोप का प्रसार करता है एव निमित्त का सेवन करता है, वह आमुरी-भावना का आचरण करता है यानी मरकर असुरकुमार देवता बनता है। (यह वर्णन स्वानांग ४।४ में भी है)

५. तवतेणे वयतेणे, रुवतेणे य जे नरे ।

आयार-भावतेणे य कुव्वइ देवकिव्विस ॥

— दशवर्षकालिक ५।२।४६

जो मुनि तपचोर, वचनचोर, रूपचोर, आचारचोर एव भाव का चोर है, वह किल्बिपी देवता में उत्पन्न होता है। जैसे-ठोई पूछता है कि महाराज ! आप लोगो में एक तपस्वी साधु सुने थे, क्या वे आप ही हैं ? ऐसे पूछने पर "साधु-तपस्वी होते ही हैं" इस प्रकार कपटपूर्ण उत्तर दे, वह तपचोर कहनाता है। ऐसे ही वचनचोर आदि भी ममत्त लेना चाहिए।



# परिशिष्ट

---

समस्तव्यपत्ता के बीच  
भाग ६ से ५ तक के  
उद्धृत प्रश्नों व व्यक्तियों की नामावली

# १ ग्रन्थ सूची

अङ्गुत्तर निकाय	आगम और त्रिपिटक एक अ
अगिरास्मृति	आचाराङ्ग सूत्र
अग्निपुराण	आर्थिक व व्यापारिक भूगोः
अथर्ववेद	आप्त-मीमांसा
अर्थशास्त्र	आत्मानुशासन
अध्यात्मसार	आवश्यकनिर्युक्ति
अध्यात्मोपनिषद्	आवश्यक मलयगिरि
अन्ययोगव्यवच्छेद द्वारिगिका	आवश्यक सूत्र
अनुयोग द्वार	आत्म-पुराण
अपरोक्षानुभूति	आत्मविकास
अभिधम्मपिटक	आतुर प्रत्यान्यान
अभियानराजेन्द्र	आपस्तम्बस्मृति
अभियानचिन्तामणि	आत्रा अद्वी गुर्यशत
अभिज्ञान शाकुन्तल	औपपातिक सूत्र
अमितिगति थावकाचार	इतिहास समुच्चय
अमृतत्वनि	ईशोपनिषद्
अमर भारती (मासिक)	इस्लामधर्म
अवेन्ना	इष्टोपदेश
अथिन्मृनि	ईश्वरगीता
अष्टांग हृदय-निदान	उत्तरराम चरित्र

उन्नतगच्छयत नून  
 उन्नतगच्छयत वृद्धवृत्ति  
 उद्धान  
 उपदेशे तरङ्गिणी  
 उददेशप्रसाद  
 उपदेशमाना  
 उपदेशानुगममाना  
 उपानत दशा  
 उन्मोद  
 अग्निभानिन  
 अनेनेन वा प्रण  
 कलौतनिपद्  
 कलामन्त्रिभागर  
 कल्पता (नानिर)  
 कल्पितायमी  
 कल्प्यागन स्मृति  
 किञ्चन श्रावणी  
 किञ्चनार्जुनीम  
 कीर्तिकेयलपरे म  
 कुम्भार वा इतिनि  
 कुम्भार मन्त्रय  
 कुम्भारपरीक  
 कुम्भे व  
 कुम्भारगण  
 कुम्भे

केतोतनिपद्  
 कौटिलीय अर्थशास्त्र  
 कुने आराग मे  
 गच्छाचार प्रकीर्णक  
 गच्छ पुराण  
 गृह्यसूत्रम्  
 गीता  
 गीता भाष्य  
 गुर्जरभजनपुष्पावली  
 गुण्यन्य नादि  
 गोमन्त्रयान  
 गीतमन्त्रि  
 गौरक्षा-जतप  
 घटचर्पटपत्रिज्ञ  
 चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र  
 चन्द्र-चरित्र  
 चरक चरित्रा  
 चरित्र नक्ष  
 चरकसूत्र  
 चापारणीति  
 चापारसूत्र  
 चित्तम दो चरिते  
 चीनी कुम्भारि  
 चान्द्रोक्त कानिपद्  
 चण्डी मन्त्रिद



जागृति (मासिक)

जातक

जावालश्रुति

जाह्नवी

जीतकल्प

जीवन-लक्ष्य

जीवन सौरभ

जीवाभिगम सूत्र

जैनभारती

जैनसिद्धान्त दीपिका

जैनसिद्धान्त बोलसंग्रह

टाँड राजस्थान इतिहास

टी वी हैण्डबुक

डिकेन्म

डेलीमिरर

तत्त्वामृत

तत्त्वार्थ-सूत्र

तन्दुलवैचारिकगाथा

तत्त्वानुशामन

ताओ-उपनिषद्

ताओ-नेह-फिंग

तान्त्रिक त्रिशती

तिनगुल्ल

तीन वान

तैत्तरीय उपनिषद्

दशाश्रुत-स्कन्ध

दशाश्रुत-स्कन्धवृत्ति

दक्षसहिता

दर्शनपाहुड

दान-चन्द्रिका

दिगम्बर प्रतिक्रमण त्रयी

दीर्घनिकाय

दोहा-सदोह

द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका

द्रव्य-संग्रह

धन-वावनी

व्यानाष्टक

धम्मपद

धर्मविन्दु

धर्मयुग

धर्मसंग्रह

धर्मरत्न प्रकरण

धर्मशास्त्र का इतिहास

धर्मों की फुलवारी

तैत्तिरीय ताण्ड्य महाब्राह्मण

नारा

थेरगाथा

दशवैकान्तिक सूत्र

दर्शन-गुर्द्ध

धर्म-सूत्र

न्याय दीप  
 नन्दो सूत्र  
 नयी  
 नविज्ञे  
 नवभारत टाइम्स (दैनिक)  
 नवनीत (मासिक)  
 नवीन राष्ट्र एटन्मन  
 नारद पुराण  
 नारद नीति  
 नारद पञ्चिवाजकोपनिषद्  
 निर्णयसिन्धु  
 नियमनार  
 निगत  
 निगीर चूर्ण  
 निगीर भाष्य  
 निरावर्ण्योपनिषद्  
 नीतिदाश्यासूत्र  
 निगमोपनिषद्  
 पनास  
 पनासिकास  
 पनासोपनिषद्  
 पञ्चपुराण  
 पञ्चमी टैम्स  
 पञ्चम्य नारद  
 पञ्चम्य नारद

प्रवचन गार  
 प्रवचन सारोद्धार  
 प्रवचन डायरी  
 प्रश्नव्याकरण सूत्र  
 प्रथमरति  
 प्रज्ञापना सूत्र  
 पातजल योगदर्शन  
 पारस्कर स्मृति  
 प्राग्नाविक न्नोक्तकम्  
 पुरानी वाश्विन  
 पुत्रपार्थ निद्विधुपाय  
 पुराण  
 पूर्व मीमाना  
 वृहत्सना भाष्य  
 वस्यग्रन्थावली  
 वस्यानन्द गीता  
 वृहदारण्यकोपनिषद्  
 वृहत्सनिस्मृति  
 वाश्विन  
 वृत्तान्त  
 वीरपद्  
 वृद्ध-चरित्र  
 वेदोदाह  
 वीर-साधन  
 वस्यंती

भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक  
 भक्ति-सूत्र  
 भगवती-सूत्र  
 भर्तृ हरि नीतिशतक  
 ,, वैराग्य शतक  
 ,, शृ गार शतक  
 भविष्य-पुराण  
 भावप्रकाश  
 भाषा श्लोकसागर  
 भामिनीविलास  
 भाल्लवीय श्रुति  
 भूदान पत्रिका  
 भोजप्रबन्ध  
 मज्झिमनिकाय  
 मन्थन  
 महाभारत  
 महानिदोस पालि  
 महानिशीथ भाष्य  
 महानिर्वाण तन्त्र  
 मनुस्मृति  
 मनोनुशाननम्  
 मन्व्यपुराण  
 मन्नाप्रत्यग्दान  
 मन्वन  
 मिनाप

मुण्डकोपनिषद्  
 मुस्लिम  
 मेडम द स्नाल  
 मेगजीन डाइजेस्ट  
 मांहमुद्गर  
 यश्न्  
 यश्त्  
 यशस्तिलकचम्पू  
 यजुर्वेद  
 याज्ञवल्क्य स्मृति  
 यूहना  
 योगवाणिष्ठ  
 यांगदृष्टि समुच्चय  
 यांगशास्त्र  
 योगविन्दु  
 रघुवश  
 रश्मिमाला  
 राजपश्नीय सूत्र  
 रामचरित मानस  
 राममतसई  
 रामायण  
 रोड मेगजीन  
 नूका  
 व्यवहार चृंगिका  
 व्यवहार-भाष्य

व्यवहार-सूत्र  
 व्यानस्मृति  
 व्यास-नहिता  
 बृहन्पाराणर नहिता  
 बृहद् द्रव्यनग्रह  
 धान्मोकि रामायण  
 वणिष्ट-स्मृति  
 विनिघ्ना (मानिक)  
 विवेकचूडामणि  
 विदुर नीति  
 विनयपिटक  
 विवेक विनाम  
 विनोपादयक भाष्य  
 विशेषारण्यक चर्षि  
 विश्वतोष  
 विज्ञान तेनार् आरिणत्तार  
 विगुदिसग्नां  
 विष्णुस्मृति  
 विष्णुमित्र (दैनिक)  
 वीतनाम स्तोत्र  
 वैदिक उप  
 वैदिक-शास्त्र  
 वैदिक स्मृतिसंग्रह  
 वैदिक-शास्त्र  
 वैदिक-शास्त्र

वैदिक-विचार विमर्शन  
 शतयथ ब्राह्मण  
 श्वेताश्वेतारोपनिषद्  
 शकरप्रश्नोत्तरी  
 शख स्मृति  
 शाङ्गवर  
 शान्त सुधारस  
 शान्तिगीता  
 श्राद्ध विधि  
 शास्त्रवार्ताममुच्चय  
 श्राव त्प्रतिक्रमण  
 शिशुपालवध  
 शिवपुराण  
 शिव-नहिता  
 श्रीमद्भागवत  
 शान्ति नी नवराट  
 सुक्यांध  
 शुभ न सुखवेद  
 सद्प्राभृत  
 सनध पुनाप  
 स्यानाम सूद  
 सभा सख  
 सन्धि-सन्धि-सन्धि  
 सन्धि-सन्धि-सन्धि  
 सन्धि-सन्धि-सन्धि

समवायाग सूत्र  
 सम्बोधमत्तरि  
 सप्तव्यसन सन्धान काव्य  
 सरिता  
 सर्जना  
 सर्वैया शतक  
 न्वप्न शास्त्र  
 स्वर-साधना  
 समाधिशतक  
 सन्मति तर्कप्रकरण  
 स्टडीज इन डिसीट  
 सरल मनोविज्ञान  
 मयुत्तनिकाय  
 सामायिक सूत्र  
 सामवेद  
 सावधानी रो समुद्र  
 सिद्धान्त कौमुदी  
 सिन्दूर प्रकरण  
 सुखमणि सहिता  
 मुन्ननिपात  
 मुभापिनावलि  
 मुभापितरत्न खण्ड-मजूपा  
 मुभापित रत्नभाण्डानार  
 मुभापित नंचय  
 मुत्तपाहृद

सुबोध पद्माकर  
 मुभापित रत्न सन्दोह  
 मुश्रुत शरीर-स्थान  
 सूत्रकृताग सूत्र  
 सूक्तरत्नानलि  
 सूक्तमुक्तावलि  
 मौर परिवार  
 हडण् मज्जा  
 हदीश शरीफ  
 हरिभद्रीयभावश्यक  
 हनुमान नाटक  
 हृदय प्रदीप  
 हृपिकेश  
 हितोपदेश  
 हिगुलप्रकरण  
 हिन्दुस्तान (दैनिक व माप्ताहि  
 हिन्दममाचार  
 क्षेमेन्द्र  
 त्रिपष्टि शलाकापुरुष चरित्र  
 ज्ञाना-सूत्र  
 ज्ञानाणव  
 ज्ञान-सार  
 ज्ञानप्रकाश

# व्यक्ति-नामावली २

अफलातून	एमर्गन	कैयरात
अबुमुताज	एडीनन	कोण्टन
अबोदाउद	एविड	नवील शिन्धान
अबूबकर केतानी	एनाव्हीतर	रघान कवि
अफान्नीकर	एलोनियम	गाभी
अरविन्द घोष	कविराज हरनामदान	गिबन
अरम्बू	कवीर	गुरु गोरखनाथ
आचार्य उपाध्याय हर	नग्युमियन	गुरु नानक
आचार्य श्रीनुननी	कष्टोर नेट	गेटे
आचार्य रजनील	कागकयुत्नी	गेविन
आरतिग	कालीएल	गेनविद
आरजू	कालेमारन	गोन्डिमिय
आग्निजीमले	रामवेन	गोन्टी जे
ओरीर पारकर	विप्रकृ	गोतम बुद्ध
एगिप्टेडून	कान्गपी	जगन्नाथ कवि
एवागिस विपन	गुन्दु-राचाय	जयचन्द्र
इमान्वाति	रूपर	जयचन्द्र पनाट
एन, मोर	जेडा	जयसिंह
एञ्जिना	जैने इमान्वात	जयशंकरनाथ शिखर
एनी कनेट	सैमिपन	जयसिंह

सत्यदेवनारायण सिन्हा	सुन्दरदास	हृद्यूम
सन्त आगस्तीन	सूरत कवि	हाफिज
सत ज्ञानेश्वर	सूरदास	हावेल
सत तुकाराम	मेलहास्ट	हालीवर्टन
सन्त निहालसिंह	सैनेका	हार्टले
सद्गुरुचरण अवस्थी	सेमुअल जानसन	हे एन भाग
समर्थगुरु रामदास	सोमदेव सूरि	हेनरी वार्ड वीचर
सायरम	हजरत अली	हैजलिट
सिगुरिनी	हजरत मुहम्मद	हैली वर्टन
स्विट	हरिभद्र सूरि	होमर
सिसरो	ह्लवर्ट	होरेण वाल पोल
सुकरात	हयहया	त्रायण्ट

# लेखकों की अहृत्यपूर्ण २

प्रकाशित

३

१. एक वादश आत्मा	०-४०	हरकचन्द इग माधोगन प्रकाशित (
२. नमस्ते चाद	०-५०	रतीराम रा पी० रियर प्रकाशित (
३. परिम-प्रकाश	२-५०	श्री जेन शे प्रकाशित (
४. भजनों की संद	०-६०	"
५. लोक प्रकाश	१-२५	"
६. चौक नियम	०-२०	धार्मिक साहित्य पी० एच (
७.		